भारतीय पुरालेखों का अध्ययन

(Studies in Ancient Indian Inscriptions)

(PART-02, Remaining 184 pages)

●

लेखक

डॉ० शिवस्वरूप सहाय

सुभाष नगर, बलिया (उ० प्र०)

(अवकाशप्राप्त रीडर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
श्री मुरली मनोहर टाउन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बलिया)

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली, मुम्बई, चेन्नई, कोलकाता, बंगलोर,
वाराणसी, पुणे, पटना

विषय-सूची

भाग – 1

भारतीय पुरालिपि

भाग – 2

अभिलेख

(मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अर्थान्तर और ऐतिहासिक महत्त्व)

●

गुप्त अभिलेख

1. समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ-अभिलेख
(Allahabad Pillar Inscription of Samudragupta)

स्थान : इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश (यह मूलतः कौशाम्बी में था जहाँ से इलाहाबाद किले में लाया गया)

भाषा : संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी

काल : समुद्रगुप्त (लगभग 335 - 76 ई०)

विषय : सिमुद्रगुप्त का जीवन चरित तथा उपलब्धियों का विवरण

मूल पाठ

1. [यः]—कुल्यैः (?)—स्वै......तस.........
2. [यस्य ?] ....(।।) [1]
3. —मुं (?) व......
4. [स्फु]रद्वं (?)......क्षः स्फुटोद्ध [ ]सित......प्रवितत......(।।) [2]
5. यस्य प्र[ज्ञानु]षङ्गोचित-सुख-मनसः शास्त्र-त[त्व]ार्थ-भर्त्तुः
——स्तब्धो — — नि * * * * — नोच्छृ ———— (।)
6. [स]त्काव्य-श्री-विरोधान्बुध-गुणित-गुणाज्ञाहतानेव कृत्वा
[वि]द्वल्लोके(ऽ)वि[ना] [शि( ] स्फुटबहु-कविता-कीर्त्ति-राज्यं भुनक्ति (।।) [3]
7. [आ] [र्य्यो]हीत्युपगुह्य भाव-पिशुनैरुत्कर्णीण्तै रोमभिः
सभ्येषूच्छृसितेषु तुल्य-कुलज-म्लानाननोद्वीक्षि[त]ः (।)
8. [स्ने]ह-व्यालुलितेन बाष्प-गुरुणा तत्त्वेक्षिणा चक्षुषा
यः पित्राभिहितो नि[रीक्ष्य] निखि[लां] [पाह्येव] [मुर्वी]मिति (।।) [4]
9. [दृ]ष्ट्रवा कर्माण्यनेकान्यमनुज-सदृशान्य[द्भु]तोद्भिन्न-हर्षा
भा[ा]वैरास्वादय[न्तः] * * * * * * —— ——[के]चित् (।)
10. वीर्योत्तप्ताश्च केचिच्छरणमुपगता यस्य वृत्ते(ऽ)प्रणामे-
(ऽ)प्य[र्त्ति ?]-[ग्रस्तेषु]—— —— —— ——(।।) [5]
11. संग्रामेषु स्व-भुज-विजिता नित्यमुच्चापकाराः
श्वः-श्वो मान-प्र—— —— —— —— ——(।)

12. तोषोतुङ्गैः स्फुट-बहु-रस-स्नेह-फुल्लैर्म्मनोभिः
पश्चात्तापं व ——————— म[?] स्य[ा]द्वसन्त[म् ?] (॥) [6]

13. उद्वेलोदित-बाहु-वीर्य्य-रभसादेकेन येन क्षणा-
दुन्मूल्याच्युत-नागसेन-ग[1] —————— (—)

14. दण्डैर्ग्राहयतैव कोतकुलजं पुष्पाह्वये क्रीडता[2]
सूर्य्ये (?) नित्य(?)— —— तट ———— (॥) [7]

15. धर्म्म-प्राचीर-बन्धः शशि-कर-शुचयः कीर्त्तयः स-प्रताना
वैदुष्यं तत्त्व-भेदि प्रशम ———, कु—यमु(सु ?)— तार्त्थम् (?) (।)

16. [अद्ध्येयः]सूक्त-मार्ग्गः कवि-मति-विभवोत्सारणं चापि काव्यं
को नु स्याद्यो (ऽ)स्य न स्याद्गुण-मति-[वि]दुषां ध्यानपात्रं य एकः (॥) [8]

17. तस्य विविध-समर शतावतरण-दक्षस्य स्वभुज-बल-पराक्क्रमैकबन्धोः पराक्क्रामाङ्कस्य परशु शर-शङ्कु-शक्ति-प्रासासि-तोमर-

18. भिन्दिपाल-न[ा]राच-वैतस्तिकाद्यनेक-प्रहरण-विरूढाकुल-व्रण-शताङ्क-शोभा-समुदयो-पचित-कान्ततर-वर्ष्मणः

19. कोसलमहेन्द्र-माह[ा]कान्तारकव्याघ्रराज-कौरालकमण्टराज-पैष्टपुरक-महेन्द्रगिरि-कौट्टूरक स्खामिदत्तैरण्डपल्लकदमन-काञ्चेयकविष्णुगोपावसमुक्तक-

20. नीलराज वैङ्गेयकहस्तिवर्म्म-पालक्ककोग्रसेन-दैवराष्ट्रकुबेर-कौस्थलपुरक-धनञ्जय-प्रभृति-सर्व्वदक्षिणापथराज-ग्रहण-मोक्षानुग्रह-जनित-प्रतापोन्मिश्र-माहाभाग्यस्य[3]

21. रुद्रदेव-मतिल-नागदत्त-चन्द्रवर्मा-गणपतिनाग-नागसेनाच्युत-नन्दि-बल-वर्म्मा-द्यनेकार्य्यावर्त्त-राज-प्रसभोद्धरणोद्धृत्त-प्रभाव-महतः[4] परिचारकीकृत-सर्व्वाटविक-राजस्य

22. समतट-डवाक-कामरूप-नेपाल-कर्त्तृपुरादि-प्रत्यन्त-नृपतिभिर्म्मालवार्जुनायन-यौधेय-माद्रकाभीर-प्रार्जून-सनकानीक-काक-खरपरिकादिभिश्च[5] सर्व्व-कर-दानाज्ञाकरण-प्रणामागमन-

---

1. सम्भवतः यह गणपति का पहला अक्षर है।
2. केत परिवार अपनी सेना द्वारा बन्दी बनाया गया जब वह पाटलिपुत्र में खेल रहा था।
3. कोशल = दक्षिणी कोशल (रायपुर, संभलपुर, विलासपुर), महाकान्तार = जंगली क्षेत्र, व्याघ्रराज = व्याघ्रदेव, कोरालक = कुणाल जल, (कोलार ताल एलौरा के पास), पैष्टिपुर = पीठापुरम्, महेन्द्रगिरि = महेन्द्र पर्वत, कौट्टूर = कोटूर महेन्द्रगिरि के पास, काञ्चेय = काञ्जीवरम्, अवमुक्त = अभी अज्ञात, वेंगी = आधुनिक वेंगी, पल्लक = पलक्कड, देवराष्ट्र = देवराठे गाँव खानपुर तालुका, कुस्थलपुर = कुशस्थलयु (द्वारका)
4. रुद्रदेव = रुद्रसेन वाकाटक या रुद्रसेन III (शुंगवंश का पश्चिमी भारत का शासक, मतिल = बुलन्दशहर का, चन्द्रवर्मा = सुसनिया पर्वत का चन्द्रवर्म, गणपति नाग, नागसेन = नाग शासक पद्मावती के, अच्युत = बरेकी के नन्दिन को अच्युत के साथ जोड़कर समास अच्युतनन्दिन बना है।
5. समतट = उत्तरी पूर्वी बंगाल आधुनिक बाद-कन्त जिला-तियेरा, डवाक = दबोक (नवगाँव, आसाम), कामरूप = गोहाटी (आसाम), करत्रिपुर = करतारपुर (जालंधर) तथा कदूरिया (गढ़वाल)।
मालव = राजस्थान का पश्चिमी मालवा के वासी, आर्जुन्यायन = मथुरा के पास से प्राप्त मुद्राएँ, यवधेय = जोहियावार वासी, प्रार्जुन = नरसिंहपुर, म० प्र० वासी, सनकानिक = पूर्वी मालवा, काक = कोकनाडवोट (सांची, म० प्र०) मद्रक = शाकल वासी (आधुनिक स्यालकोट पंजाब, पाकिस्तान), आमीर = अपन्त (उत्तरी कोंकण) वासी।

23. परितोषित-प्रचण्ड-शासनस्य अनेक-भ्रष्टराज्योत्सन्न-राजवंश-प्रतिष्ठापनोद्धूत-निखिल-भु[व]न-[विचरण-शा]न्त-यशसः दैवपुत्रषाहिषानुषाहि-शकमुरुंण्डैः सैंहळकादिभिश्च
24. सर्व्व-द्वीप-वासिभिरात्मनिवेदन[1]-कन्योपायनदान-गरुत्मदङ्कस्वविषयभुक्तिशासन-[य]ाचनाद्युपाय[2]-सेवा-कृत-बाहु-वीर्य्य-प्रसर-धरणि-बन्धस्य प्रिथिव्यामप्रतिरथस्य[3]
25. सुचरित-शतालङ्कृतानेक-गुण-गणोत्सिक्तिभिश्चरण-तल-प्रमृष्टान्य-नरपति-कीर्त्तेः साध्व-साधूदय-प्रलय-हेतु-पुरुषस्याचिन्त्यस्य[4] भक्तपवनति-मात्र-ग्राह्य-मृदुहृदयस्यानुकम्पावतो-(ऽ)नेक-गो-शतसहस्र-प्रदायिन[:]
26. [कृप]ण-दीनानाथातुर-जनोद्धरण-समन्त्रदीक्षाभ्युपगत-मनसः[5] समिद्धस्य विग्रहवतो लोकानुग्रहस्य धनद-वरुणेन्द्रान्तक-समस्य[6] स्वभुज-बल-विजितानेक-नरपति-विभव-प्रत्यर्प्पणा-नित्यव्यापृतायुक्तपुरुषस्य[7]
27. निशितविदग्धमति-गान्धर्व्वललितैर्व्रीडित-त्रिदशपतिगुरु-तुम्बुरुनारदादेर्व्विद्वज्जनोप[8]-जीव्यानेक-काव्य-विक्रयाभिः प्रतिष्ठित-कविराज-शब्दस्य सुचिर-स्तोतव्यानेकाद्भुतोदार-चरितस्य
28. लोकसमय-विक्रयानुविधान-मात्र-मानुषस्य लोक-धाम्नो देवस्य महराज-श्री-गुप्त[9]-प्रपौत्रस्य महाराज-श्री-घटोत्कच-पौत्रस्य महाराजाधिराज-श्री-चन्द्रगुप्त-पुत्रस्य
29. लिच्छवि-दौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य[10] महाराजाधिराज-श्री-समुद्रगुप्तस्य सर्व्व-पृथिवी-विजय-जनितोदय-व्याप्त-निखिलावनितलां कीर्त्तिमितस्त्रिदशपति-
30. भवन-गमनावाप्त-ललित-सुख-विचरणामचक्षाण इव भुवो बाहुरयमुच्छ्रितः स्तम्भः (।) यस्य।

प्रदान-भुजविक्क्रम-प्रशम-शास्त्रवाक्योदयै-
रुपर्य्युपरि-सञ्चयोच्छ्रितमनेकमार्ग्गं यशः (।)

---

1. दैवपुत्र = देवपुत्र कुषाण राजाओं की उपाधि. षाहि कुषाण सरदार होगा और षाहानुषाहि = उनका स्वामी किन्तु दैवपुत्रषाहिषाहानुषाहि का अभिप्राय कुषाण शासक से है। मुरुण्ड् सीथियन जनजाति होगी या शक-मुरुण्ड = शकों का स्वामी होगा। सैंहलक = सिंहल सिलोनवासी। यहाँ सर्वद्वीपवासी के तात्पर्य जावा सुमात्रा द्वीपों के वासी से है।
2. गरुत्मदङ्क-स्वविषयभुक्ति-शासन-याचन से अभिप्राय है गरुड़ मुहरयुक्त। शासन की आज्ञा प्राप्त करना अपने राज्य के लिए। गरुड़ गुप्त शासकों का राजचिह्न था। उनकी मुद्राओं पर भी यह अंकित है।
3. पाठ : पृथिव्या।
4. समुद्रगुप्त अपने को विष्णु का जो गौरव के दाता और दुष्ट संहारक थे। गीता में कहा गया है—परित्राणाय साधुनां विनाशय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।। समुद्रगुप्त एक वैष्णव था। पर उसके उत्तराधिकारी अपने को भागवत कहते हैं पर यह उपाधि समुद्रगुप्त नहीं प्रयोग किया है। डा० सरकार की राय में समुद्रगुप्त के वैष्वण धर्म और उत्तराधिकारियों के भागवत धर्म में अन्तर होगा।
5. पाठ : उङएघरण-मन्त्र
6. राजा में देवत्व का ज्ञान मिलता है । (मनु. ७.)
7. आयुक्त = स्थानीय शासक
8. त्रिदशपतिगुरु=वृहस्पति; तुम्बरु = एक गांधर्व; नारद = वीणा के अन्वेषक ऋषि।
9. इसका मूल नाम 'गुप्त' है 'श्री' शब्द विशेषण है।
10. पाठ : मुत्पन्न०

31. पुनाति भुवनत्रयं पशुपतेर्ज्जटान्तर्गुहा-
निरोध-परिमोक्ष-शीघ्रमिव पाण्डु गाङ्गं (पयः) (।।) (९)

एतच्च काव्यमेषामेव[1] भट्टारकपादानां दासस्य समीप-परिसर्प्पणानुग्रहोन्मीलित-मतेः

32. खाद्य(कू)टपाकिकस्य महादण्डनायक-ध्रुवभूति-पुत्रस्य सान्धिविग्रहिक-कुमारामात्य-म[हादण्डनाय]क-हरिषेणस्य[2] सर्व्व-भूत-हित-सुखायास्तु

33. अनुष्ठितं च परमाभट्टारक-पादानुध्यातेन महादण्डनायक-तिलभट्टकेन

हिन्दी अर्थान्तर

1. ...अपने कुलवालों द्वारा

2. (जिसका ?)...

3. ......

4. ...... विस्तृत ?

5. विद्वानों के सत्संग में प्रसन्न मन वाले शास्त्रों के तत्वार्थ का पोषक—

6. जो विद्वज्जनों के बहुत से गुणों की शक्ति से सत्काव्य के विरोधों को दबा कर बहुत-सी स्फूट काव्य से प्राप्त कीर्ति राज्य का भोग करता है।

7. जिसके दरबारियों में हर्ष का उच्छ्वास था एवं जिसे समान कुल वाले म्लान मुख से देखते थे, पिता उसे भाव प्रवण एवं रोमांच सहित गले लगाते हुए कहा कि तुम वास्तव में आर्य हो,

8. स्नेहाकुल, आँसू युक्त तत्वदर्शी नेत्रों से देखकर, यह कहा कि 'तुम सम्पूर्ण पृथ्वी का पोषण करो'।

9. जिसके अनेक मानवेतर कार्यों को देख कुछ लोग अत्यन्त प्रसन्नता से भावपूर्वक आस्वादन करते थे।

10. और कुछ लोग जिसके शौर्य से सन्तप्त होकर शरणागत होते हुए उसको नमन करते थे।

11. जिसने युद्धों में नित्य अपकार करने वाले को जीता था

12. आनन्द से भरे, बहु हर्ष एवं स्नेह से युक्त मन से ...... पश्चाताप ...... वसन्त।।

13. जिसने सीमा से बड़े बाहु द्वारा अकेले ही अच्युत तथा नागसेन को अविलम्ब जड़ से उखाड़ दिया...

14. जिसने पुष्प नाम के नगर को क्रीड़ा करते हुए स्वाधीन किया तथा अपने सैन्य द्वारा जो कोटकुलोत्पन्न था उसको पकड़वा लिया

15. धर्म प्राचीर की तरह जिसकी कीर्ति चन्द्र रश्मि की तरह उज्ज्वल और विस्तृत थी तथा जिसकी विद्वत्ता शास्त्र तत्वभेद करने वाली थी...

16. वेदों द्वारा प्रतिपादित मार्ग जिसका ध्येय था तथा कवि के मति-वैभव को स्पष्ट व्यक्त करने वाली उसकी कविता थी...ऐसा क्या गुण था जो इसमें नहीं था जो गुण और प्रतिभा ज्ञाताओं का एकमात्र ध्यान पात्र है।

---

1. हरिषेण की यह रचना चम्पू में है।
2. खाद्यटपाककक = राज्य भोजनालय का कर्मचारी। महादण्डनायक = एक सैनिक अधिकारी। सान्धिविग्रहिक = गवर्नर। कुमारामात्य = युद्ध और संधि का मंत्री।

17. सैकड़ों युद्धों में उतरने में दक्ष, अपने भुजबल पर एक मात्र भरोसा करने वाला, पराक्रम वाला, फरसा, शर, शैकू, शक्ति, प्रास, असि, तोमर

18. भिन्दिपाल, नाराच, वैतस्तिक आदि अनेक शस्त्रों प्रहार से जनित सैकड़ों घावों के चिह्नों से जिसका शरीर सुशोभित था।

19. कोसल के महेन्द्र, महाकान्तार के व्याघ्रराज, केरल के मण्टराज, पिष्टपुर के महेन्द्रगिरि, कोट्टूर के स्वामिदत्त, एयण्डपल्ल के दमन, काँची के विष्णुगोप, अवमुक्त के

20. नीलराज, बेंङ्गी के हस्तिवर्मन, पलक्क के उग्रसेन, देवराष्ट्र के कुबेर, कुस्थलपुर के धनंजय आदि समस्त दक्षिणापथ के राजाओं के ग्रहण करने एवं तदुपरान्त अनुग्रह द्वारा उनको मुक्त करने से उत्पन्न प्रताप से संयुक्त महाभाग्य वाला था।

21. जिसने रुद्रदेव, मतिल, नागदत्त, चन्द्रवर्मन, गणपतिनाग, नागसेन अच्युत नन्दि, वलवर्मन आदि अनेक आर्थावर्त के राजाओं को उन्मूलित कर अपना महान प्रभाव बढ़ाया तथा सम्पूर्ण अटवी प्रदेश (जंगल) के राजाओं का अपना परिचारक बनाया।

22. समतट, डवाक, कामरूप, नेपाल, कर्तृपुर आदि सीमा के राजाओं तथा मालव, आर्जुनायन, यौधेय, माद्रक, आभीर, प्रार्जुन, सनकानीक, काक, खनपरिक, आदि सभी जातियाँ करों के देने, आज्ञा पालन, प्रणाम तथा

23. प्रचण्ड शासन प्रति सन्तोष आगमन द्वारा व्यक्त करती थीं, जो अनेक च्युत राज्यों तथा नष्ट राजवंशों की पुनः स्थापना से उत्पन्न समस्त भुवनों में व्याप्त शान्त यशवाला था तथा जिसे देवपुत्र शाहि शाहानुशाहि

24. शक मुरुण्ड तथा सिंहल आदि द्वीपों के निवासी आत्म समर्पण, पैर पर अपनी कन्याओं का समर्पण करते थे तथा गरुड-चिह्न युक्त अपने विषय एवं भुक्ति के शासन की याचना करते थे। इस प्रकार की सेवाओं से जिसमें भुजबल के विस्तार से पृथ्वी को बाँध लिया था तथा समस्त पृथ्वी पर जिसका कोई शत्रु नहीं था।

25. शत सत्कार्यों से भूषित, अपने बहुसंख्यक गुणों के समदुाय से अन्य अनेक राजाओं की कीर्ति को मिटाने वाला जो साधु के लिए उदय तथा असाधु के लिए अन्त का कारण था, अचिन्त्यपुरुष, भक्तिपूर्वक नमन मात्र से जिसका मृदुल हृदय वश में हो जाता था, अनुकम्पावान, जो शतसहस्र गायों को दान करने वाला था।

26. कृपण, दीन, अनाथ एवं व्यग्र लोगों के कष्ट-निवारण तथा दीक्षा में लगे अन्तःकरणवाले जो लोकानुकम्पा का प्रतिमा था जो धनद, वरुण, इन्द्र, यम, सदृश, अपने वाहुबल से विजित अनेक राजाओं की सम्पत्ति लौटाने में नित्य लगा हुआ था।

27. तीक्ष्ण एवं विदग्धमति, वाद्य एवं कण्ठ संगीत द्वारा इन्द्र, गुरु वृहस्पति तुम्बुरु तथा नारदादि को लज्जित करने वाला था, विद्वानों की जीविकार्जनोपयोगी अनेक काव्यों की रचना द्वारा 'कविराज' उपाधि को प्रतिष्ठा करने वाला था, चिर-काल तक स्तुत्य जिसके अनेक विलक्षण एवं उदार कार्य थे।

28. जो केवल लौकिक-कार्य सम्पादन से ही मनुष्य था अन्यथा भूलोकवासी देवता था, वह महाराज श्रीगुप्त का प्रपौत्र, महाराज श्रीघटोत्कच का पौत्र, महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त का पुत्र था जो

29. लिच्छवी वंश की लड़की का लड़का, जो महादेवी कुमारदेवी से उत्पन्न था। महाराज श्री चन्द्रगुप्त के समस्त पृथ्वी की विजय द्वारा उत्पन्न अभ्युदय से समस्त संसार व्याप्त है यहाँ पृथ्वी से इन्द्र के

30. भवन पहुँचने वाली, सुन्दर-सुखमय गति वाली कीर्ति को घोषित करता हुआ, पृथ्वी की भुजा की भाँति यह स्तम्भ ऊँचा है। जिसका यश

31. दान, वाहु-विक्रम, प्रज्ञा एवं शास्त्र-विधान के अभ्युदय से, उच्चोच्च उन्नत होता हुआ, अनेक मार्गों से त्रैलोक्य को, शिव की जटा के अन्तः गुहा-बन्ध से मुक्त त्वरित पीले गंगाजल की भाँति निकलकर पवित्र करता है।

32. यह काव्य इन्हीं स्वामी के चरणों के दास, समीप रहने के अनुग्रह से विकसित मतिवाले, महादण्डनायक ध्रुवभूति के पुत्र, खाद्यत्पाकिक, संधिविग्राहक, कुमारामात्य हरिषेण ने रचा। यह समस्त प्राणियों के हित एवं सुख का हो।

33. परमभट्टारक के चरणों का चिन्तन करने वाले महादण्डनायक द्वारा इसकी स्थापना की गयी।

ऐतिहासिक महत्त्व

इलाहाबाद किले में अब स्थापित, मूल रूप से कौशाम्बी में स्थापित कौशाम्बी के अशोक स्तम्भ पर अशोक के लेख के नीचे गुप्त ब्राह्मी लिपि में समुद्रगुप्त का यह लेख उत्कीर्ण है। सम्भवतः यमुना नदी द्वारा यह स्तम्भ कौशाम्बी से बहाकर यहाँ लाकर स्थापित किया गया होगा जिसके नीचले भाग में जहाँगीर का भी लेख होने से अनुमान है कि जहाँगीर ने ही इसको मूल स्थान से हटाकर यहाँ स्थापित कराया होगा। इसे महादण्डनायक ध्रुवभूति के पुत्र समुद्रगुप्त के कुमारामात्य एवं संधिविग्रहिक हरिषेण नामक कवि ने उत्कीर्ण कराया था। यह मात्र अकेला अभिलेख समुद्रगुप्त के शासन और व्यक्तित्व के विषय में अब तक के प्राप्त अभिलेखों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है क्योंकि उसके अन्य अभिलेख एरण अभिलेख, गया और नालन्दा के ताम्रलेख हैं जिनमें एरण का अभिलेख कोई विशेष सूचना नहीं देता केवल एरण पर उसका अधिकार बताता है जबकि गया और नालन्दा के ताम्रपत्र अभिलेखों को जाली माना जाता है। इस अभिलेख के अभाव में समुद्रगुप्त की उपलब्धियों के विषय में हम अन्धकार में पड़े रह जाते। डा॰ उदयनारायण राय ने कहा है...this epigraphic record is a unique one among Indian annals in its wealth of detail.

लेख का नाम—इस स्तम्भ में समुद्रगुप्त की प्रशस्ति का उल्लेख है तथा यह प्रयाग में है। इससे इसको **'प्रयाग प्रशस्ति'** कहा जाता है। चूँकि इसका लेखक हरिषेण है इससे इसको **'हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति'** नाम से भी जाना जाता है। अंग्रेजी में इसे Allahabad Pillar Inscription कहते हैं।

लेख की तिथि—यह तिथिविहीन लेख है। इसमें समुद्रगुप्त के विजयों का आद्योपान्त उल्लेख है। गद्दी पर बैठने के बाद, लेख से विदि है, सिंहासन को सुरक्षित करने के लिए उसको अपने स्वजनों से युद्ध करना पड़ा। उसके बाद उसने भारत के विभिन्न भागों में अपनी विजय पताका फहराई। वह विद्वानों का आश्रय दाता तथा अनेक विद्याओं-संगीत आदि में कुशल था। ये सभी कार्य शान्तिकाल के रहे होंगे जबकि उसके पास पर्याप्त समय रहा होगा। अतः विजय के बाद एक लम्बे समय के व्यतीत होने पर यह लेख लिखा गया होगा। किन्तु जब समुद्र ने अश्वमेघ यज्ञ किया था उसके पहले का यह लेख है क्योंकि इसमें उसके अश्वमेध यज्ञ का वर्णन नहीं है जबकि उसके 'अश्वमेध पराक्रमाङ्कः' उत्कीर्ण सिक्के तथा एरण अभिलेख इसकी पुष्टि करते हैं। फिर भी राज्यारोहण के बहुत बाद का यह अभिलेख होगा। इसका शासन काल इतिहासकारों ने 335 ई॰ से 375 ई॰ माना है। डा॰ डिस्कल्कर का अनुमान है कि यह लेख लगभग 350 ई॰ का उत्कीर्ण होगा।

क्या यह प्रशस्ति समुद्रगुप्त के मृत्योपरान्त उत्कीर्ण हुई थी ?

डा॰ फ्लीट ने जब पहली बार इस लेख का सम्पादन किया तभी इसे समुद्रगुप्त के मृत्योपरि लिखा गया बताया। यही बात 'कार्पस' के प्रकाशित संस्करण में भी है। इसके पीछे निम्न तर्क दिए गए हैं—

1. 30वीं पंक्ति का पाठ 'आचक्षाणः वभूव' पढ़ा गया। इस आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि उसकी मृत्यु हो चुकी थी।

2. इस पंक्ति में 'त्रिदशपति भवनगमन' का अर्थ समुद्रगुप्त को 'इन्द्रलोक गमन करने वाला' लिया गया है। इसको उसके मृत्यु का बोधक मानकर उसके मृत्योपरान्त इस लेख को उत्कीर्ण कराना कहा गया है।

पर ये निम्न आधार पर गलत लगते हैं—

1. 30वीं पंक्ति का शुद्ध पाठ है 'आचरण इव भुवो'। इस आधार पर समुद्रगुप्त की मृत्यु का अर्थ निकलता ही नहीं।

2. 'त्रिदशपति भवनगमन' का अभिप्राय समुद्रगुप्त की कीर्ति का स्वर्ग तक पहुँचना है न कि उसके शरीर का।

3. यहाँ भूतकाल की क्रिया का अभाव है। इसमें मेहरौली स्तम्भ लेख की तरह भूतकालिक क्रिया का उल्लेख नहीं है जिससे समुद्रगुप्त मृत्योपरान्त इसे माना जाय।

4. यदि यह बाद के शासक के काल में लिखा होता तो उसका भी नाम इसमें होता। कर्मदण्डा शिवलिंग अभिलेख से विदित है कि उत्कीर्ण कराने वाला कुमारगुप्त के पिता के समय का मन्त्री था। पर यहाँ हरिषेण तो संधिविग्रहक और महादण्डनायक के पद पर आसीन है जब समुद्रगुप्त के गद्दी पर है।

5. इस लेख में हरिषेण का कथन 'एतमेव भट्टारकपादानां' से स्पष्ट है 'इसी' भट्टारक के चरण कमलों में। अतः यह समुद्र के जीवन काल को उजागर करता है।

6. समुद्रगुप्त के अश्वमेध प्रकार के सिक्कों तथा एरण अभिलेख से इसके अश्वमेध यज्ञ का ज्ञान मिलता है जिसका उल्लेख यहाँ न होना इस यज्ञ सम्पादन के पूर्व का यह लेख ज्ञात होता है।

7. इसमें समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारियों की उपाधियाँ जिनका प्रयोग उन्होंने किया है यथा— 'चतुरुदधिसलिलास्वादितयशसा' आदि नहीं है।

अतः मान्य नहीं होता कि समुद्रगुप्त की मृत्यु के बाद का यह अभिलेख होगा।

तत्कालीन भारत की राजनीतिक अवस्था का ज्ञान

इस अभिलेख में समुद्रगुप्त की विजय का उल्लेख करते हुए प्रशस्तिकार ने भारत के केवल मध्य तथा पश्चिमी क्षेत्र को छोड़कर शेष भागों की राजनीतिक अवस्था का वर्णन किया है जिसे समुद्रगुप्त ने जीता था। इनमें से कहीं राज्य और राज्य व्यवस्था, कहीं केवल राज्य, कहीं केवल राजा, कहीं केवल क्षेत्रीय विभाजन का उल्लेख है जो विभिन्न प्रकार की शासन व्यवस्था का ज्ञान विभिन्न क्षेत्रों में देता है। इसमें से यदि हम समुद्रगुप्त की विजय को निकाल दें तो शेष विवरण से राजनीतिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है। इसमें सातवाहनों तथा कुषाणों के बाद उभरे हुए नए राज्यों के विवरण से गुप्तपूर्व भारत की राजनीतिक स्थिति की गुत्थी भी, जिसे डा॰ जायसवाल ने अंधकार युग का नाम दिया है, सुलझ जाती है। इससे तत्कालीन भारत की निम्न राजनीतिक स्थिति का ज्ञान होता है।

1. सीमा-प्रदेश के राज्य

इनमें हैं—समतट (समुद्रतटीय भाग = दक्षिण-पूर्वी बंगाल), डवाक (फ्लीट ने ढाका, स्मिथ ने दीनाजपुर के पास, बसाक ने ढाका का उत्तरी भाग माना है। पर वरुआ का मत ही अब मान्य है कि यह आसाम में नवगांग जिले का डवोक है), कामरूप (आसाम प्रान्त का गोहाटी), नेपाल (काठमाण्डू की घाटी का प्रदेश जहाँ के शासक लिच्छवि थे) तथा कर्तृपुरा (फ्लीट कर्तापुर, रायचौधरी गढ़वाल कुमायूं का भाग, पर अब मान्य है कश्मीर का एक भाग जहाँ के शासक 'क्रितिय' थे)। इनके सन्दर्भ में 'नृपतिमिः' शब्द प्रयुक्त है। अतः उत्तरी पश्चिमी तथा पूर्वी सीमा के ये राजतन्त्रयी राज्य थे।

2. पश्चिमी भारत के राज्य

पश्चिमोत्तर सीमा से नीचे हम आज के हरियाणा, पंजाब, राजस्थान में पहुँचते हैं। वहाँ छोटे-छोटे नौ गणराज्यों का उल्लेख है—मालव (अजमेर-टोंक-मेवाड़ प्रदेश में बसे थे) : आर्जुनायन (देहली, आगरा, जयपुर के निवासी) : यौधेय (दक्षिण-पूर्वी पंजाब तथा उत्तरी राजस्थान में थे) : मद्रक (रावी-चिनाव दोआब के रहने वाले पंजाब का मद्र देश), आभीर (पंजाब, पश्चिमी राजस्थान तथा मध्य प्रदेश के अहिरवाड़ा क्षेत्र में) : प्रार्जुन (भण्डारकर तथा स्मिथ इन्हें नरसिंहपुर-मध्यप्रदेश का मानते हैं जबकि डा॰ पी॰ एल॰ गुप्ता उत्तर-पश्चिम का), सनकानिक (मध्य प्रदेश में थे), खरपरिक (दमोह जिला–मध्य प्रदेश)। ये जनता द्वारा शासित गणराज्य डा॰ मजुमदार के अनुसार दो भागों में विभक्त थे—एक में मालव, खरपरिक, आर्जुन्यायन और मद्र तथा दूसरे में शेष पाँच थे। पर इस विभाजीकरण का आधार स्पष्ट नहीं है।

3. आर्यावर्त के राज्य

पंजाब और राजस्थान से नीचे हम आधुनिक उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश एवं बंगाल के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। इसके शासकों को 'आर्यावर्त' का राजा कहा गया है। आर्यावर्त की सीमा मनु और उसके भाष्यकार मेधातिथि के अनुसार पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक तथा हिमालय से विंध्य तक थी। इसके पश्चिमी भाग में गणराज्य थे जिनका उल्लेख हुआ है। शेष राजाओं के लिए आर्यावर्त का राजा कहा गया है। यही उत्तरापथ भी था।

अभिलेख में यहाँ के राजाओं का केवल नाम दिया गया है। उनके राज्य का नाम नहीं। ये हैं—रुद्रदेव। (इसकी समता शक क्षत्रप रुद्रदामन या रुद्रसेन तृतीय से करना उचित नहीं क्योंकि शकों का उल्लेख अलग नीचे मिला है। डा॰ गोयल ने अनेक तर्कों पर इसे वाकाटक शासक रूद्रसेन प्रथम सिद्ध किया है पर बहुत प्रामाणिक नहीं लगता क्योंकि वाकाटक मूलतः दक्षिण के राजा थे। पर यह कौशाम्बी का शासक होगा जो समुद्रगुप्त के राज्यारोहण के समय विषम परिस्थिति में उभर कर आया होगा। डा॰ नागर और चट्टोपाध्याय का भी यही मत है, मतिल (बुलन्द शहर और उसके पास का), नागसेन (पद्मावती, ग्वालियर-मध्य प्रदेश का आधुनिक पदमपताया जो नरवर से 25 मील उत्तर पूरब की ओर है), गणपति नाग (भण्डारकर के अनुसार विदिशा का शासक पर, डा॰ अल्टेकर ने सिक्कों के आधार पर मथुरा का बताया है), अच्युत (अहिछत्र = उत्तर पांचाल की राजधानी-आधुनिक बरेली का रामनगर), नन्दिन (गोयल नागराजा मानते हैं पर अच्युत के साथ प्रयोग होने से यह उसी के साथ का शासक होगा), नागदत्त (डिस्कल्कर को इसकी स्थिति स्पष्ट नहीं है। पर मथुरा के पड़ोसी नाग परिवार से ही सम्बन्धित होगा तभी नाग शब्द जुड़ा है), चन्द्रवर्मा

(बंगाल का क्योंकि वहाँ के सुसुनिया-लेख में उल्लिखित है), बलवर्मा (गोपाल चन्द्र वर्मा का वंशज, जायसवाल कौमुदी महोत्सव का कल्याण वर्मा मानते हैं पर उचित लगता है। वसु दण्डेकर का मत कि पश्चिमी आसाम का शासक था जो हर्ष के समकालीन भास्कर वर्मा का पूर्वज होगा)।

डा॰ रैप्सन ने इन नौ नामों को नौ नन्द राजा माना है जो अमान्य है। चन्द्रवर्मा, वलवर्मा और मतिल नन्द वंशीय नहीं हो सकते।

4. आटविक राज्य

आटविक का अर्थ है वन्य। अतः ये वन्य प्रदेश के राज्य थे। डा॰ रायचौधरी के अनुसार यह गाजीपुर से जबलपुर तक फैला था। पर गाजीपुर तो मगध का भाग था जहाँ का वह स्वयं महाराजधिराज था। बुन्देलखण्ड से प्राप्त दो अभिलेखों में महाराज हस्ती को डहाल और पड़ोस के अठारह आटवी राज्यों का स्वामी बताया गया है। डहाल जबलपुर के पास का भाग था। अतः यह जबलपुर से छोटा नागपुर तक यह भाग रहा होगा। यहाँ न राजा का नाम है न राज्य का केवल क्षेत्र का नामोल्लेख है।

5. दक्षिणापथ के राज्य

उत्तरापथ या आर्यावर्त से हम दक्षिणापथ में पहुँचते हैं। राजशेखर ने विन्ध्य के दक्षिण में स्थित नर्मदा नदी को उत्तरापथ और दक्षिणापथ की सीमा बताया है। यहाँ छोटे-छोटे राज्य थे। ऐसे 12 राजाओं और उनके राज्य का नाम यहाँ दिया गया है। इनमें पहले राज्य का नाम है फिर राजा का। इसके अध्ययन में मूल कठिनाई है समास वाले पदों को तोड़ने तथा राज्यों के पहचान की। ये हैं— कोसल के महेन्द्र (दक्षिण कोसल जिसमें सम्मिलित थे रायपुर, विलासपुर, सम्भलपुर, दुर्ग तथा गंजाम जिले का कुछ भाग जो मध्य प्रदेश में हैं), महाकान्तार का व्याघ्रराज (महावन, मजुमदार के अनुसार उड़ीसा जयपुर नामक वन्य प्रदेश), कोराल का मण्टराज (सरकार ने कोलेर झील के निकट का प्रदेश, फ्लीट ने कैरलक पढ़कर केरल से समता किया है), पिष्टपुर का महेन्द्रगिरि (गोदावरी जिले का पीठापुर), कोट्टूर का स्वामिदत्त (डेब्रूएल ने गंजाम जिले के कोट्टूर, आयंगर ने पीथापुरम के समीप का कोट्टूरू माना है। पर सही है स्मिथ का मत कि यह कोयम्बटूर में था), एरण्डपल्ल का दमन (फ्लीट ने खानदेश में एरण्डोल, रामदास ने विजगापट्टम के एंडिपल्ली से माना है। पर डेब्रएल का मत ठीक लगता है कि उड़ीसा के तनटवर्ती चिकाकोल के समीप एरण्डपल्ली है), कांची का विष्णुगोप (कांजीवरम्, पल्लवों की राजधानी), अवमुक्त का नीलराज (गोदावरी जिले का अवमुक्ति क्षेत्र), वेंगी का हस्तिवर्म (मद्रास के समीप वेगी या पेड-वेग्गी), पालक्क का उग्रसेन (स्मिथ ने मालवार जिले के उत्तर का पालघाट माना है, पर मान्य है डैब्रुएल का मत कि यह नेल्लोर जिले का पलक्कड़ है), देवराष्ट्र का कुवेर (फ्लीट ने महाराष्ट्र, सुथियंथियर ने महाराष्ट्र के खानपुर का महाराठे गाँव, पर डेब्रएल ने ठीक पहचाना है विजगापट्टम जिले का एलमंञ्चीकलिंग देश) तथा कुस्थलपुर का धनञ्जय (वार्नेट ने उत्तरी आर्काट का कुत्तलूर, स्मिथ ने द्वारका पर, डा॰ गोपाल ने अज्ञात कहा है)।

6. दक्षिणी पश्चिमी भारत की विदेशी जातियाँ

पश्चिम भारत के राज्यों तथा राजाओं की चर्चा इसमें नहीं है। पराजित. कुछ विदेशी जातियों का नामोल्लेख मात्र है। ये पश्चिमी भारत के पहले के विदेशी शासकों के वंशज हैं— 'देवपुत्रषहवाहानुवाहिशकमुरुण्डैः। 'देवपुत्र' उपाधि महाकुषाण परिवार की थी। इस समय किदार कुषाण इनका उत्तराधिकारी था जिसके लिए इसका प्रयोग किया गया होगा। डा॰ आर॰ एस॰ शर्मा

के अनुसार कुषाणों ने स्वयं नहीं अपितु भारतीयों ने इनके लिए यह उपाधि प्रयोग किया था। इनके सिक्कों पर 'शा' (षाहि) अंकित है। इसी से देवपुत्रषाहि यहाँ कुषाण जातीय राजा का बोधक है। 'षाहुनाषाही' ईरानी राजाओं की उपाधि थी जिसका रूप पह्लव सिक्कों पर 'शाओ' तथा 'शाओनानोशाओ', यूनानी सिक्कों पर 'वैसीलिओस' तथा 'बैसीलिओस वैसीलिओन', कुषाण सिक्कों पर 'महरज' तथा 'महरज रजदिरज' मिलता है। इसी का संस्कृत रूप 'राजा' 'राजाधिराज' है। 'शकमुरुण्डैः' (शक और मुरुण्ड) में शक एक विदेशी जातियाँ थीं जो पश्चिमी भारत में शासन करती थीं। मुरुण्ड शकों की एक जाति विशेष का नाम था। ये पश्चिमी भारत के शक-क्षत्रप रहे होंगे। इस प्रकार पश्चिमी भारत में कुषाण, ईरान तथा शक जातियाँ थीं। रघुवंश में भी रघु (समुद्रगुप्त) द्वारा कम्बोजों, हूणों और पारसिकों के पराजय का उल्लेख इसे पुष्ट करता है।

7. सीमा के बाहर के द्वीप

इनमें केवल सिंहल का नाम लिया गया है और 'सर्वद्वीप वासिभिः' से अन्य द्वीपों की ओर संकेत है। लगता है भारत के सांस्कृतिक क्षेत्र में ये द्वीप भी सम्मिलित थे। सिंहल का प्रयोग 'लंका' के लिए हुआ है। सर्वद्वीप से अभिप्राय दक्षिण-पूर्वी एशिया के द्वीप से रहा होगा जहाँ इसके समय भारत ने सांस्कृतिक साम्राज्य स्थापित किया होगा।

चयनित उत्तराधिकारी और समस्या

[*प्रयाग स्त० ले० श्लोक 4, ''आर्यो हीत्युपगुह्य— पाह्येवमूर्वीमिति'' की व्याख्या*]

इस श्लोक से स्पष्ट है कि इसका पिता चन्द्रगुप्त प्रथम योग्यता का पारखी था—तत्वेक्षिणा। उसने अन्य तुल्य कुलज होने पर भी योग्यता के कारण उसे पृथ्वी पालन का कार्य सौंपा—पाह्येवमुर्वीमिति। इसकी पुष्टि ऋद्धपुर एवं पूना ताम्रपत्रों द्वारा भी होती है—त्पादपरिगृहीत (पिता द्वारा चुना हुआ)। यहाँ स्पष्ट है कि इसके और भी भाई इससे बड़े थे जिनमें से इसे चुना गया था। इससे उनमें इसके प्रति विरोध होना स्वाभाविक था। तभी वे 'मलानानने द्वीक्षितः' अर्थात् दुःखी होकर राज्याभिषेक को देख रहे थे।

रैप्सन और हेरास के अनुसार इसके बाद उसको भाइयों से गृह युद्ध करना पड़ा होगा। इसके लिए काच की मुद्राओं की प्राप्ति के आधार पर विरोधी दल का नेता उसका भाई (?) काच को ही माना गया। लेख के अनुसार—'संग्रामेषु स्वभुजबलविजिताः नियमुच्चापकाराः' अर्थात् कुछ को संग्राम में पराक्रम से जीता और कुछ को स्नेह से—स्नेहयुलैर्म्मनोभिः। पर कुछ लोग काच और समुद्रगुप्त की मुद्राओं में तौल, उपाधि, उत्कीर्ण लेख की दृष्टिगत दोनों को एक-एक ही व्यक्ति मानकर काच को समुद्रगुप्त का दूसरा नाम मानते हैं जो उसका मौलिक नाम था। विजय के बाद उसने समुद्रतट तक विजय करने के कारण अपने को सनुद्रगुप्त नाम से संबोधित किया। पर यह बहुत मान्य नहीं प्रतीत होता।

समुद्रगुप्त की विजय और नीतियाँ

विजय क्रम के विषय में इस अभिलेख से शंका उत्पन्न होती है। यहाँ जो विजय का क्रम दिया गया है वह दक्षिणापथ से प्रारम्भ है। डेब्रुएल ने इसे ही विजय का सही क्रम बताया है। पर अभी उत्तरी भारत स्वयं अरक्षित था। फिर केन्द्र के पड़ोस को अरक्षित छोड़कर यह भला कैसे सम्भव था कि दूर दक्षिणापथ में जाकर युद्ध करता। पाटलिपुत्र से उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर उसके

शत्रु आक्रमण कर इतिहास ही बदल दिए होते। इसलिए यह क्रम गलत लगता है। वास्तव में वह पहले **आर्यावर्त** फिर आटविक राज्य, तब पूर्वी और उत्तरी सीमा, पश्चिम के गणराज्यों, को जीत कर ही दक्षिणापथ की ओर हाथ लगाया होगा जब वह उत्तर से पूर्ण सुरक्षित रहा होगा। उसके बाद विदेशी और द्वीपवासियों की ओर मुड़ा होगा। पर प्रश्न है कि प्रशस्तिकार ने फिर दक्षिणापथ उल्लेख पहले क्यों किया ? इसके पीछे कारण होगा कि प्रशस्ति लिखते समय जो सबसे प्रभावक गुण होता है उसी को आगे रखा जाता है। अशोक के बाद उत्तर के किसी शासक ने दक्षिण में इतनी विशाल विजय की बात सोची नहीं थी। अतः दक्षिण विजय को यहाँ पहले रखा गया है। ऐसा करना लेखक की भूल नहीं है।

दूसरे आर्यावर्त का युद्ध दो बार उसे क्यों करना पड़ा ? पहली बार उसे मगध पर राजा के रूप में अधिकार करने के लिए युद्ध करना पड़ा क्योंकि मगध का राजा तो पिता द्वारा यह बनाया गया था। पर इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि दूसरों ने कब्जा कर लिया था या वे कब्जा के लिए आए थे। अतः उनको इसे पराजित करना पड़ा। इनमें रुद्रदेव कौशाम्बी का, मतिल बुलन्दशहर का, गणपतिनाग मथुरा का तथा कोतकुलज पूर्वी पंजाब और दिल्ली के शासक थे। ये सम्भवतः एक जुट होकर समुद्रगुप्त को मगध पर अधिकार से वंचित करने के प्रयास में थे। अतः उसने एक ही लड़ाई में 'एकेन....उन्मूल्य' इनको अपने भुजबल से अकेले उन्मूलित कर दिया। (उद्वेलोदित-बाहु-वीर्य्यरिभसादेकेन येन क्षणादु मूल्य)। कुछ लोगों ने उत्तरापथ के दोनों युद्धों की सूची में समान नाम के कारण एक ही युद्ध की सम्भावना व्यक्त किया है पर यह गलत है क्योंकि एक युद्ध पाटलिपुत्र पर अधिकार के लिए हुआ था जिसमें आक्रमणकारियों को केवल उन्मूलित किया गया था और दूसरे में उनका सत्ता समाप्त कर अपने में उसने मिला लिया था। दूसरे द्वितीय युद्ध छिटपुट कई बार लड़ा गया होगा जबकि पहला युद्ध एक बार सम्भवतः पाटलिपुत्र के पड़ोस में लड़ा गया था क्योंकि यह पाटलिपुत्र के लिए हुए था। यद्यपि जायसवाल कौशाम्बी में इसका होना कौमदी महोत्सव के आधार पर मानते हैं जो कल्पनाजनित नाटक पर आधारित होने से अमान्य है।

ऊपर जिन राज्यों का उल्लेखत किया गया है उन सभी को समुद्रगुप्त ने जीता था। शासन की सुविधा और विजय के स्थायित्व के लिये विभिन्न क्षेत्रों के विजय में उसने विविध नीतियों का अनुसरण किया था। यह उस जैसे एक विद्वान् के लिए अत्यन्त आवश्यक था कि वह इतिहास के पूर्व अनुभव से लाभ उठाकर ऐसा करे। उसकी विविध क्षेत्रों में विजय के सम्बन्ध की नीतियाँ निम्न थीं:

1. आर्यावर्त के प्रथम युद्ध में अच्युत, नागसेन तथा कोतकुलज को उन्मूलित किया— उन्मूल्यात....।

2. सीमावर्ती राज्य और पश्चिमी भारत के गणराज्यों को आदेश दिया था कि वे सर्वकरदान, आज्ञाकरण और प्रणाम करने हेतु उपस्थित होकर राजा को सन्तुष्ट करें। (सर्व्व-कर-दानाज्ञाकरण-प्रणामागमन-परितोषित-प्रचण्ड-शासनस्य)।

3. आर्यावर्त के राजाओं को उन्मूलित किया था जिससे उसका प्रताप फैला (प्रसभोद्धरणोद्धृत्त-प्रभाव-महतः)।

4. आटविक प्रदेश के राजाओं को अपना सेवक बना लिया (परचारकीकृत सर्व्वाटविक-राजस्य)।

5. दक्षिणापथ के राजाओं को ग्रहण करके पुनः उन पर अनुग्रह करके छोड़ दिया जिससे उसके प्रताप की वृद्धि हुई (राजग्रहण-मोक्षानुग्रह-जनित-प्रतापोन्मिश्र महाभागस्य)।

6. दक्षिण पश्चिम की विदेशी जातियों तथा द्वीपवासियों को बाध्य किया कि वे आत्मनिवेदन करें, कन्याओं का उसे दान भेंट दे और अपने विषय-भुक्ति पर शासन करते रहने के लिए गरुडांकित आज्ञापत्रों की याचना करें (आत्मनिवेदन-कन्योपायनदान-गरुन्मदङ्कस्व-विषयभुक्तिशासनायाचन)।

दक्षिणापथ के विजय क्रम में डेब्रएल का अनुमान है कि पहले उड़ीसा के समीपस्थ राज्यों को जीता गया होगा। फिर दक्षिण की ओर बढ़ते हुए कृष्णा नदी तक गया होगा। यहीं पूर्वीघाट के शासकों के सम्मिलित संघ ने उसे परास्त किया था। पर यह काल्पनिक है। समुद्रगुप्त का कहीं पराजित होने का उल्लेख नहीं है। अभिलेख से लगता है कि उसके दक्षिणी-पूर्वी मध्य प्रदेश के शासकों को पहले परास्त किया होगा तथा उड़ीसा के राजाओं को जीतते हुए सुदूर दक्षिण में कांची तक गया होगा।

जायसवाल के अनुसार दक्षिणापथ के राजाओं के दो संघों ने अलग-अलग इससे युद्ध किया था। एक संघ था कोराल के भण्टराज के अधीन एरण्डपल्लव दमन और कोट्टूर का स्वामिदत्त तथा दूसरा संघ शेष नौ राजाओं का कांची के विष्णुगोप के अधीन था। पर इसका कोई ऐतिहासिक आधार नहीं हैं। दण्डेकर के अनुसार दक्षिणापथ के सभी राजा कांची के विष्णुगोप के अधीन संघ बनाकर इकट्ठे लडे थे। पर यह असम्भव लगता है कि इतने दूर के राजाओं का कोई गुट बना होगा। अतः अलग-अलग युद्धों में समुद्रगुप्त ने इन्हें परास्त किया होगा।

समुद्रगुप्त के दक्षिणी भारत से लौटने का मार्ग

दक्षिणी विजय के अभियान में कलिंग प्रदेश से चलकर पूर्वीघाट होते हुए वह दक्षिण की ओर बढ़ा था। पर वह लौटा किस मार्ग से ? इसमें दो मत हैं। कुछ इतिहासकार उसके इस अभियान को पूर्वी घाट तक ही सीमित मानते हैं जहाँ से वह उसी मार्ग से लौट आया। पर कुछ कतिपय वर्णित स्थानों का समीकरण पश्चिमी घाट के स्थानों से करके उसके लौटने का मार्ग पश्चिमी तथा मध्य भारत होकर बताते हैं। ऐसा मानना निम्न स्थलों के पहचान में भेद के कारण हैं—

1. पलक्क—इसकी पहचान स्मिथ पश्चिमीघाट के मालावार जिले के उत्तर में स्थित पालघाट से की है जो पश्चिमी घाट में है।

2. देवराष्ट्र—फ्लीट के अनुसार यह महाराष्ट्र था। सुथियंथियस और दीक्षित भी इसे वहीं महाराष्ट्र के खानपुर तालुक के देवराठा ग्राम बताते हैं। महाराष्ट्र पश्चिमी घाट में है।

3. एरन्डपल्ल—फ्लीट, दीक्षित आदि महाराष्ट्र के पूर्वी खानदेश जिले का एरण्डोल नामक स्थान मानते हैं।

ऐसा मानने पर वह पूर्वीघाट से होकर पश्चिमीघाट गया था। वहीं से मध्य देश होकर मगध लौटा। पर ये समीकरण मान्य नहीं लगते क्योकि पूर्वीघाट के स्थानों के बीच-बीच में पश्चिमीघाट का उल्लेख भौतिक दृष्टि से सम्भव नहीं लगता। अतः ये सभी पूर्वीघाट के ही स्थान होंगे। डैब्रुएल ने ठीक ही पूर्वीघाट में स्थित पल्लक की समता कृष्णा नदी के तटवर्ती निलौर जिले के पल्लकड़ से जो पल्लवों की राजधानी थी, देवराष्ट्र को विजगापट्टम जिले में वेलमञ्चिली प्रदेश से तथा एरण्डपल्ल को उड़ीसा के तटवर्ती एरण्डपल्ली नगर से की है। अतः जब समुद्रगुप्त कभी महाराष्ट्र की ओर गया ही नहीं तो पश्चिमीघाट होकर लौटने की बात उठती ही नहीं। इसकी पुष्टि में हम यह भी तर्क दे सकते हैं कि—

(i) पश्चिमीघाट से होकर लौटने में मध्यदेश में वाकटकों से इसका युद्ध हुआ होता जिसका

कहीं उल्लेख नहीं है। वाकाटकों के सम्बन्ध में स्मिथ ने लिखा है—The Vakataka Kings occupied such an important geographical position in which he could be of much service or disservice to the Northern invador in the dominons of the Kashatraps of Gujrat or Saurashtra. अगर समुद्रगुप्त पश्चिमी घाट की ओर जाता तो मध्य प्रदेश होकर ही उसे लौटना पड़ता और वहाँ वाटकों से इसकी मुठभेड़ अवश्य होती। यदि ऐसा होता तो प्रशस्तिकार अवश्य ही इसका उल्लेख करता। परन्तु ऐसा न करने से स्पष्ट है कि वह मध्य प्रदेश में आया ही नहीं कि वाकाटकों के साथ इसका सीधा सम्बन्ध बनता। उनके केवल उसके भाण्डलिक तक ही अपने को सीमित रखा क्योंकि एक स्थान पर महाकान्तारक व्याघ्रराज का उल्लेख है।

(ii) पूर्वीघाट से पश्चिमीघाट जाने के रास्ते के बीच में आने वाले राज्यों का भी विजय अभियान में वर्णन होना चाहिए था जो अप्राप्य है।

अतः समुद्रगुप्त ने पूर्वीघाट से दक्षिण भारत पर आक्रमण किया था और उसी मार्ग से अपनी राजधानी लौट आया।

राज्य विस्तार

इस प्रशस्ति में उसने विजित राज्यों में केवल आर्यावर्त के राजाओं को छोड़कर जिन्हें उसने उन्मूलित किया था शेष राज्यों को बने रहने दिया और उन्हें निश्चित अनुबन्धों के साथ शासन करने की छूट दी। यही नीति विदेशी जातियों के साथ भी अपनायी। पर उत्तरापथ या आर्यावर्त के वे क्षेत्र जिनमें प्रयाग से पूरब विहार तक के राज्यों का कोई उल्लेख नहीं है, लगता है उसको पैत्रिक उत्तराधिकार में लिया था जिस पर उसका सीधा शासन था। इसमें सम्मिलित हुए आर्यावर्त के उन नौ राजाओं का राज्य था जो पश्चिमोत्तर, और मालवा के राजा थे। मध्य प्रदेश एवं पश्चिमी बंगाल के कुछ भाग सम्मिलित थे तथा जिन्हें उसने उन्मूलित किया था। इस आधार पर कंहा जा सकता था कि गंगा और यमुना के क्षेत्र में उसका अधिकार व्याप्त था। तभी उस समय के मन्दिरों के चौखठों पर गंगा-यमुना की आकृतियाँ क्रमशः मकर और कर्म पर आरुढ़ मिलती हैं। इसके कुछ सिक्कों पर सिंहवाहिनी दुर्गा को देखकर डा॰ रायचौधरी का अनुमान है कि उसका साम्राज्य हिमालय से विन्ध्याचल तक था। शेष सीमा के राज्य, पश्चिम के गणराज्य, आटविक प्रदेश के शासक, दाक्षिणापथ के राजा और दक्षिण-पश्चिम की विदेशी जातियाँ जो इसके राज्य को चातुर्दिक प्राचीर की तरह घेरी थी वे इसकी करद सामन्त बन चुकी थीं। इन पर उसका मात्र प्रभाव एवं नियंत्रण था।

शासन पद्धति का परिचय

यहाँ शासकों की दो उपाधियों का उल्लेख है—महाराज एवं महाराजाधिराज। महाराज अधीनस्थ शासक का द्योतक है ऐसा डा॰ सिन्हा, चट्टोपाध्याय आदि मानते हैं, और महाराजाधिराज स्वतन्त्र शासक था।

समुद्रगुप्त के लिए यहाँ प्रयुक्त 'लोकधाम्नोदेवस्य' (अर्थात् पृथ्वी पर वास करने वाला देवता) से ज्ञात होता है कि राजा में देवत्व की मान्यता उसके समय थी। वहीं प्रयुक्त है 'प्रिथिव्याम-प्रतिरथस्य' अर्थात् जो (राजा) पृथ्वी पर विचरण करने वाला अप्रतिरथ (विष्णु) है। यह भी इसीकी पुष्टि करता है।

कुछ अधिकारियों के पदों का भी इसमें उल्लेख है, यथा आयुक्त, पुरुष, खाद्यटपाकिक महादण्डनायक, कुमारामात्य और संधिविग्रहक आदि ये पद शासन में कार्यरत अधिकारियों के थे।

इस अभिलेख की पंक्ति 7 में समुद्रगुप्त के लिए 'आर्यो' श्रेष्ठ शब्द का प्रयोग है। वहीं तुल्य-कुलज-म्लानानो-द्विक्षितः-परिवार के लोग मलिन चेहरे में दीखते थे। साथ ही 8वीं पंक्ति में लिखा गया है—पाह्येव मुर्वी मिति अर्थात् इस भूमण्डल का पालन करो। स्पष्ट है कि योग्यता के आधार पर राजा की नियुक्ति होती थी जैसा समुद्रगुप्त के सम्बन्ध में हुआ था। इसके लिए सभासदों की भी स्वीकृति आवश्यक होती थी तभी पंक्ति 7 में 'सम्य' (सभा) का उल्लेख हैं तथा उनके लिए विशेषण प्रयुक्त हैं 'उच्छवस' = आनन्द की सांस लेना। स्पष्ट है कि राज्यपद निर्वाचित था।

गुप्त वंशावली

पंक्ति 28 में अंकित है—''देवस्य महाराज-श्रीगुप्त-प्रपौत्रस्य महाराजा-श्री-घटोत्कच पौत्रस्य महाराधिराज-श्री-चन्द्रगुप्त-पुत्रस्य लिच्छवि दौहित्रस्य महदेव्यां कुमार-देव्यां उत्पन्नस्य महाराजाधिराज-श्री-समुद्रगुप्त''—इससे समुद्रगुप्त के पूर्वराजाओं और उसके वंश का परिचय मिलता है। यह पहला गुप्त अभिलेख है जिससे गुप्त वंश के शासकों का क्रम उसके समय तक ज्ञात होता है। इसमें पहला राजा इसका प्रपितामह श्रीगुप्त का उल्लेख है जिसकी उपाधि 'महाराज' दी गई है। जबकि इसके पिता चन्द्रगुप्त को 'महाराजाधिराज' कहा गया है। इस विभेद से स्पष्ट है कि श्रीगुप्त एक अधीनस्त या सामन्त शासक था। इसी प्रकार इसके प्रपिता तथा श्रीगुप्त का पुत्र घटोत्कच्छ को भी यहाँ महाराजा कहा गया है। यहाँ घटोत्कच्छ के साथ गुप्त शब्द नहीं जुड़ा है। इससे दो बातें स्पष्ट होती है एक कि यह अपने पिता की तरह का सामन्त शासक था तथा इसके समय तक इस वंश का नामकरण गुप्त वंश का नहीं हुआ था। इसके बाद इसके पिता चन्द्रगुप्त को महाराजाधिराज कहा गया है। यह चन्द्रगुप्त विभेद स्पष्ट करता है कि इस समय एक स्वतंत्र शासक बन गया था तभी इसके प्रपिता 'श्रीगुप्त' के नाम पर इसका वंशज गुप्त कहलाया। इसीसे अब इस वंश के सभी शासकों के नाम के अन्त में गुप्त शब्द मिलता है। जैसे—समुद्रगुप्त।

अब प्रश्न यह है कि पहले दो शासक किसके सामन्त थे ? सिलवांलेवी और सुधारकर चट्टोपाध्याय ने अनेक प्रमाणों के आधार पर इन्हें 'मुरुण्डों' का सामन्त बताया है। लेवी ने विदेशी विवरणों को जैनग्रंथों का आधार बनाया है जबकि चट्टोपाध्याय ने वायु और विष्णु पुराणों के विश्वसफणि को इस वंश का शासक माना है। फ्लीट तथा आर० डी० बनर्जी ने शकों का सामन्त बताया है जो मगध पर शासन करते थे। विंसेण्ट स्मिथ और काशी प्रसाद जायसवाल ने इन्हें लिछवियों का सामन्त बताया है क्योंकि चन्द्रगुप्त की मुद्राओं पर लिछवयः लेख अंकित है तथा समुद्रगुप्त ने अपने को 'लिछवी दौहित्रः' इस अभिले में कहा है। कुमारगुप्त तृतीय की भीतरी राजमुद्रा में भी इसका उल्लेख है। अतः ये लिछवियों के ही सामन्त रहे होंगे।

समुद्रगुप्त का चरित्र चित्रण

इस अभिलेख से उसके चरित्र के निम्न गुणों का ज्ञान मिलता है—

1. धर्म प्राचीर बंधः (धर्म के बन्धन में जो बंधा है)।
2. शास्त्र तत्वार्थ भर्तुः (शास्त्रों के तत्त्वों को समझने वाला)।
3. कविता कीर्ति राज्य भुनक्ति (काव्य के क्षेत्र में उसकी कीर्ति व्याप्त थी)।
4. शशिकर शुचयः कीर्तयः (चन्द्रमा के समान धवल कीर्तिवाला)।
5. उसका शरीर युद्ध क्षेत्र में अनेक शस्त्रों के प्रहार से घायल था।
6. विदेशी जातियों तथा द्वीपवासियों से उसका सम्बन्ध था।

7. कूटनीतिज्ञ था—विविध राज्यों के साथ भिन्न नीतियाँ अपनाया।
8. लोक-कल्याण में धनद, वरुण और इन्द्र के समान था।
9. संगीत में गुरु, तम्बरू और नारद जैसे आचार्यों को पराजित किया था।
10. उसके ज्ञान, दान, शौर्य की ख्याति गंगा की धारा की तरह सर्वत्र व्याप्त थी।
11. वह महान् विजेता था।

2. दुर्जनपुर का रामगुप्त का जैन प्रतिमा लेख
(Jain Sculpture Inscription of Ramgupta of Durjanpur)

स्थान : दुर्जनपुर ग्राम, जिला - वेसनगर (विदिशा), म० प्र०

लिपि : गुप्तकालीन ब्राह्मी

भाषा : संस्कृत

काल : चौथी शती का उत्तरार्द्ध

विषय : जैन तीर्थंकर की मूर्तियों का निर्माण

सन्दर्भ : श्रीराम गोयल का गुप्तकालीन का अभिलेख, पृ० 3-6, वासुदेव उपाध्याय, गुप्त अभिलेख, पृ० 128

[प्रथम लेख]

मूल-पाट

1. भागवतोऽर्हतः चन्द्रप्रभस्य प्रतिमेय कारिता म–
2. हाराजाधिराज श्री रामगुप्तेन उपदेशात् पाणिपा–
3. त्रिक्[1] चन्द्रक्षमाचार्य्य क्षम [प]ण–श्रमण-प्रशिष्य [स्य]चा–
4. र्य्यः सर्प्पसेनक्षम [प]ण शिष्यस्य गोलक्यान्त्या
   [:] सत्पू [तु] त्रस्य चेल्ल[2] क्षत्र [प] णस्येति॥

हिन्दी अर्थ

भगवान अर्हत् चन्दप्रभ की यह प्रतिमा महाराजाधिराज श्री रामगुप्त द्वारा पाणिपात्रिक आचार्य क्षपण श्रमण चन्द्रक्षमा के शिष्य, आचार्य सर्यसेन के शिष्य गोलक्यान्तिक सत्पुत्र क्षमण चेल्ल के उपदेश से बनवायी गयी।

[द्वितीय लेख]

मूल-पाट

1. भगवतोऽर्हतः पुष्पदन्तस्य प्रतिमेयं कारिता म–
2. हाराजाधिरज श्रीरामगुप्तेन उपदेशात् पाणिपात्रिक
3. चन्द्र क्षम (प) [णाचा] यर्यु [क्षम(प)ण] श्रमण प्रशि[ष्यु]
4. ————ति

---

1. = करप्रात्री
2. = चेला

हिन्दी अर्थ

भगवान अर्हत् पुष्पदन्त की यह प्रतिमा महाराजाधिराज श्री रामगुप्त द्वारा पाणिपात्रिक आचार्य क्षपण श्रमण चन्द्रक्षमण के प्रशिष्य......के उपदेश से बनवाई गई।

[तृतीय लेख]

मूल-पाठ

1. भगव [तो] र्ह [तः] [पद्म] प्रभस्य प्रतिमेयं [का] रिता महा [राजा] धिरा[ज]—
2. श्री [रामगुप्ते]न उ[पदेशात्] [पा] णि [पात्रि]......
3. ......
4. ......

हिन्दी अर्थान्तर

भगवान् अर्हत् पद्मप्रभ की यह प्रतिमा महाराजाधिराज श्री रामगुप्त द्वारा पाणिपात्रिक....बनवाई गई।

ऐतिहासिक महत्त्व

मध्य प्रदेश की प्राचीन विदिशा जो आज का बेसनगर है वहाँ से दो मील दूर दुर्जनपुर ग्राम के एक टीलें की खुदाई से प्राप्त तीन जैन मूर्तियाँ आज विदिशा संग्रहालय में संरक्षित हैं। इन मूर्तियों के पदाधार (चरण चौकी) पर छोटे-छोटे लेख गुप्त-ब्राह्मी लिपि और संस्कृत भाषा में खुदे हैं। इनमें 'भगवतोऽर्हतः–भगवान अरहन्त विशेषण के बाद जैन तीर्थंकरों का नाम अंकित है जिसकी यह मूर्ति है तथा दाता का नाम महाराजाधिराज श्री रामगुप्त और प्रेरक आचार्य क्षमण और उनके गुरु परम्परा का उल्लेख है। इसमें पहली मूर्ति आठवें तीर्थंकर जैन अर्हन्त चन्द्रप्रभ की है, दूसरी नवें तीर्थंकर पुष्पदन्त की है तथा तीसरे की पहचान यद्यपि स्पष्ट रूप से नहीं हो पाई है, पर यह अनुमान लगाया जाता है कि यह चन्द्रप्रभ की ही रही होगी क्योंकि यह खण्डित अवस्था में प्राप्त हुई है। इसपर सिंह का अंकन भी किया गया है।

इन मूर्तियों में प्रथम की चरण-पीठिका पर पूरा लेख प्राप्त है, दूसरे पर आधा और तीसरे का लेख एक प्रकार से पूर्णतया नष्ट हो चुका है। इन लेखों की लिपि चौथी शताब्दी की ब्राह्मी है जो सांची और उदयगिरि की लिपि से मेल खाती है। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि मूर्तियों की शैली में कुषाणकालीन तथा पाँचवीं शती के बीच की कला परम्परा की चुटकी दीखती है। मथुरा की कुषाणकालीन जैन मूर्तियों की चरणपीठिका की तरह यहाँ भी सिंह का अंकन है। मूर्तियों में प्रभामण्ड तथा अंग विन्यास उसी प्रकार है जैसा अन्तरिम काल में पाया जाता है। साथ ही गुप्तकालीन अलंकरण नहीं है। इससे इनका प्रारम्भिक गुप्त काल का होना ज्ञात होता है।

इन मूर्तियों के निर्माता महाराजाधिराज श्रीरामगुप्त को कहा गया है। महाराजाधिराज उपाधि से स्पष्ट है कि यह गुप्तवंशीय सम्राट था, यद्यपि इसकी वंश परम्परा तथा तिथि का उल्लेख यहाँ नहीं है। पर जब तक इसके सिक्के तथा अभिलेख प्राप्त नहीं थे तब तक यह विवादास्पद था कि रामगुप्त क्या मूल गुप्त शाखा का शासक था ?

यह सोचना कि गुप्त शासक वैष्णव थर्मावलम्बी थे तो यह कैसे बीच में जैन धर्म स्वीकार कर लिया था कुछ उसी प्रकार का है जैसे बुद्धगुप्त, बालादिल आदि गुप्त सम्राटों ने बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया था।

सर्वप्रथम 1923 ई॰ में सैल्वालेवी नामक विद्वान ने नाट्यदर्पण में उद्‌धृत रामचन्द्र एवं गुणचन्द्र द्वारा लिखित 'देवीचन्द्रगुप्तम्' नाटक के अंश के आधार पर इस नए गुप्त शासक की स्थापना विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत किया। उसके बाद डा॰ राखालदास बनर्जी ने 1924 में एक लेख लिखकर इस पर प्रकाश डाला। फिर डा॰ अल्तेकर ने 'ए न्यू रूलर इन दी गुप्त डाइनेस्टी' नामक लेख के द्वारा लेवी के मत को अनेक साहित्यिक तथा पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर आगे बढ़ाया। डा॰ आर॰ डी॰ बनर्जी॰, आर॰ के॰ मुखर्जी, के॰ पी॰ जायसवाल, के॰ डी॰ बाजपेयी आदि विद्वानों ने भी इसकी प्रामाणिकता को सिद्ध करने का प्रयास किया। पर दूसरी ओर डा॰ मजुमदार, वासुदेवशरण अग्रवाल आदि ने इसका विरोध इस आधार पर किया कि इसका न तो अपने सिक्के मिला है, न लेख और न गुप्त राजाओं के लेखों में इस राजा के होने का उल्लेख ही किया गया है।

पर प्रस्तुत अभिलेख ने अपने प्राप्ति समय 1969 से इस भ्रम को समाप्त कर दिया है। इसमें इसके पिता समुद्रगुप्त तथा भाई चन्द्रगुप्त (द्वितीय) की तरह इसकी उपाधि महाराजाधिराज है। इसकी पुष्टि इसके ताम्र सिक्कों से भी होती है जो एरण से मिले हैं। पहले पी॰ एल॰ गुप्त को सिह प्रकार के रामगुप्त नामधारी राजा के छः ताँबे के सिक्के मिले थे। पर पीछे डा॰ के॰ डी॰ बाजपेयी को वहीं से सिंह और गरुड प्रकार के कुछ और सिक्के मिले। अन्य गुप्त शासकों के सिक्कों की तरह इस पर भी गरुड दण्ड राज चिह्न के रूप में अंकित है। भीतरी से प्राप्त गुप्त शासकों की 'गरुड चिह्नित' रगुप्तराज मुद्रा प्राप्त हुई है। समुद्रगुप्त की भी प्रयाग प्रशस्ति में 'गरुतमदङ्क'—गरुड चिह्न वाली मुहर का उल्लेख है। अतः गरुड चिह्न गुप्त राजाओं का राजचिह्न था जो इसकी मुद्राओं पर होने से इनके गुप्तवंशीय शासक होने में संदेह नहीं किया जा सकता।

अभिलेख तथा सिक्कों के प्राप्तिस्थान से भी इसका मूल गुप्त वंश का होना सिद्ध होता है क्योंकि समुद्रगुप्त के एरण लेख में ऐरिकेण प्रदेश (एरण) को भोग नगर कहा गया है। इसी में इसके लिए 'गृहेषु' का भी उल्लेख है। अतः यहाँ गुप्त शासकों का राजप्रासाद रहा होगा। डा॰ उदय नारायण राय के अनुसार यहाँ टकसाल भी रहा होगा। एरण इस दृष्टि से समुद्रगुप्त के समय महत्त्वपूर्ण स्थान था जिसे उसने सम्भवतः अपनी दूसरी राजधानी बनायी होगी जहाँ से चन्द्रगुप्त द्वितीय ने उज्जैनी जीतने के बाद वहाँ दूसरी राजधानी को स्थानान्तरित कर दिया होगा। वहीं एरण के पड़ोस में विदिशा (बेसनगर) से ये मूर्तियाँ मिलती हैं। लगता है कि चन्द्रगुप्त ने जब अपने पश्चिमी अभियान में शकों के क्षेत्र काठियावाड़, गुजरात आदि को जीत लिया था तो विदिशा में अपनी द्वितीय राजधानी स्थानान्तरित किया। विदिशा से रामगुप्त के लेख तथा सिक्कों के मिलने से उसे माण्डलिक शासक नहीं माना जा सकता जैसा डा॰ सरकार का विचार है। अतः यह विवाद समाप्त हो जाता है कि रामगुप्त गुप्तवंश की मूल शाखा का शासक नहीं था क्योंकि उसके लेख तथा सिक्के दोनों ही प्राप्त हुए हैं।

क्या रामगुप्त जैन धर्मानुयायी था ?

इस लेख में जैन धर्म के प्रति उसकी अटूट श्रद्धा ज्ञात होती है। तभी उसने जैनाचार्य चेलूक्षयण के उपदेश के अन्तर्गत इन जैन मूर्तियों का निर्माण कराया था। इसकी पुष्टि जैन धर्मावलम्बी राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष के संजन ताम्रपत्र से होती है जिसमें उसने चद्रगुप्त द्वितीय के प्रति घृणा तथा उसे बड़े भाई (रामगुप्त) के प्रति सहृदयता प्रदर्शित की है। डा॰ राय के अनुसार जिस प्रकार बाद के कुछ गुप्त शासक बौद्ध धर्मावलम्बी थे वैसे ही यह जैन धर्मावलम्बी था। पर वैष्णव धर्म गुप्त शासकों का राजकीय धर्म था क्योंकि उनके सभी प्रकार के सिक्कों पर गरुड दण्ड मिलना पुष्ट करता है

कि यह राज्य चिह्न (Royal Standard) रहा होगा। गरुड विष्णु का प्रतीक होने से ऐसा अनुमान स्वाभाविक है। फिर इस शासक को जिसने गरुड और विष्णु अंकित सिक्के चलाए क्यों जैन मूर्तियाँ बनवाया तथा जैनों में आस्था रखा ? पर गुप्त शासकों की धार्मिक नीति सहिष्णु थी। उस समय सभी धर्म पनपते थे। लगता है इसी कारण वैष्णव होकर भी इसने जैन मूर्तियाँ बनवायी हों।

3. चन्द्र का मेहरौली लौह स्तम्भ-लेख

(Mehrauli Irion Pillar Inscription of Chandra)

स्थान : मेहरौली, जिला—दिल्ली

लिपि : संस्कृत

भाषा : ब्राह्मी

काल : चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल का (लगभग 377-413 ई॰)

विषय : चन्द्रगुप्त द्वितीय की धार्मिक उपलब्धियों का उल्लेख

मूल-पाट

1. य[स्यो]द्वर्त्तयतः प्रतीपमु[र]सा शत्रून्समेत्यागता-
न्वङ्गेष्वाहव-वर्त्तिनो(ऽ)भिलिखिता खड्गेन कीर्त्ति[र्भु]जे (।)
2. तीर्त्वा सप्त मुखानि[1] येन [स]म[रे] सिन्धोर्ज्जिता [व]ाह्लिका[2]
यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्व्वीर्य्यानिलैर्द्दक्षिणः (।।) 1[3]
3. [खि]न्नस्येव विसृज्य गां नरपतेर्ग्गामाश्रितस्येतरां
मूर्त्या कर्म्म-जितावनिं[4] गतवतः कीर्त्या स्थितस्य क्षितौ (।)
4. शान्तस्येव महावने हुतभुजो यस्य प्रतापो महा-
न्नाद्याप्युत्सृजति प्रणाशित-रिपोर्य्यत्नस्य शेषः क्षितिम् (।।*) 2[5]

---

1. सिंधु के सात मुहों के लिए देखिए पेरिप्लस 38
2. भाउदाजी का पाठ : बाल्हिका. भण्डारकर के अनुसार व्हीक = बल्ख। रामायण के अनुसार यह विपाशा (व्यास नदी) पर था। वाह्लिकान् पाठ देखिए शेष निश्चित रूप से अशुद्ध हैं। शुद्ध पाठ है पञ्चानां सिन्धुषठाणां नदीनां येऽन्तरा स्थिताः। तान्धर्म्मबाह्यनशुचीन्तहीकानपविर्जयेत् ।।.....विहश्च नाम हीकश्च विपाशायां पिशाचकौ। तयोरपत्यं वाहीका नैषा सृष्टिः प्रजापते।। महा॰ VIII, 44, vv. 7
3. इस श्लोक में इस दिग्विजयी राजा के राज्य की चारों सीमाओं का उल्लेख है। पूरब में बंग, दक्षिण में दक्षिण जलनिधि, उत्तर में वाह्लिक, पश्चिम में सिंधु मुख। प्रशस्ति होने के कारण भले ही इसमें अतिशयोक्ति हो पर सत्य को नकारा नहीं जा सकता।
4. फ्लीट जितवानिं
5. भण्डारकर का मानना है कि अभिलेख के लिखवाते समय राजा जीवित था। यद्यपि वह शासन नहीं करता था। प्राकृतिक रूप से व्याख्या करने पर लगता है कि यह स्तम्भ उसके जीवन काल का ही उन्हें लगता है। इसकी पुष्टि वक्राखण्ड की भूमिका हेमाद्रि के आधार पर उन्होंने किया है यथा—खिन्नस्य (- अविजितदेशाभावात् क्षुब्धस्य) गां (=इहलोकं) विसृज्य (=परित्यज) [नवदेशान् जेतुम्] इतरां गां (= लोकान्तरम्) आश्रितस्य (cf. इत्थं पार्थिवराजराजिविजयव्यापारपारंगतश्चक्रे शक्रजयाय कृष्ण-नृपतिः खर्लोक-यात्रा-गतम्। यदि इस राजा की पहचान चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के साथ करना सही है तो यह उसके मरने के ठीक बाद कुमारगुप्त प्रथम द्वारा उत्कीर्ण कराया गया होगा।

5. प्राप्तेन स्व-भुजार्ज्जितञ्च सुचिरञ्चैकाधिराज्यं क्षितौ
चन्द्राह्वेन समग्रचन्द्र[स]दृशीं वक्त्रश्रियं बिभ्रता (।)
6. तेनायं प्रणिधाय भूमि-पतिना भावेन[1] विष्णो[2] मतिं
प्रान्शुर्व्विष्णुपदे[3] गिरौ भगवतो विष्णोध्वजः स्थापितः (॥) 3

हिन्दी अर्थान्तर

1. बंगाल में संगठित रूप से युद्ध में आए हुए शत्रुओं का जिसने अपने पराक्रम से पीछे कर दिया तथा जिसकी भुजाओं पर तलवार से कीर्ति अंकित की गयी।

2. जिसने सिन्धु के सात मुखों को पार कर (युद्ध में) बाह्लिकों को जीता था तथा जिसके शौर्य से प्रभावित वायु से दक्षिणी समुद्र आज तक सुगंधित है।

3. जो श्रान्त होकर, पृथ्वी को छोड़कर अन्य लोक चला गया है, फिर भी जो अपने कर्म द्वारा मूर्तिमान है तथा मरने पर भी जिसकी कीर्ति पृथ्वी पर स्थित है।

4. जिस प्रकार विशाल वन में शान्त रूप से दावानल स्थित होता है उसी प्रकार शत्रुओं का सम्पूर्ण नाश करके यत्न से महानप्रताप वाला वह आज भी पृथ्वी का त्याग नहीं किया है वह जीवित है।

5-6. अपने भुजबल द्वारा अर्जित, दीर्घकाल तक पृथ्वी पर एकाधिराज्य (एक छत्र राज्य) किया। उसका नाम चन्द्र था, वह चन्द्रतुल्य मुखश्री धारण करने वाला था, उस राजा का भगवान विष्णु में अटल विश्वास था। उसने विष्णु पर्वत पर जाकर 'विष्णुध्वज' स्तम्भ स्थापित किया था।

ऐतिहासिक महत्त्व

यह गुप्त ब्राह्मी लिपि में लिखा संस्कृत भाषा में तीन श्लोकों, 12 पंक्तियों का अभिलेख, दिल्ली शहर से 9 मील दक्षिण में मेहरौली गाँव के कुतुबमीनार के पास सलामीदार लौह स्तम्भ पर मिला है जो सम्भवतः शीर्षस्थ गरुड पक्षी युक्त विष्णु मन्दिर के सामने विष्णु के प्रतीक स्वरूप स्थापित किया गया होगा। इसमें 'चन्द्र' नामधारी राजा की कीर्ति का उल्लेख है। यह वैष्णवधर्म की व्यापकता का परिचय देता है। साथ ही इससे ज्ञात होता है कि चौथी शती में भारत में कितनी वैज्ञानिक प्रगति थी कि लोहे को गलाकर इतना बड़ा स्तम्भ तैयार किया गया था। इस पर अंकित 'प्रान्शुर्व्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः' से ज्ञात होता है कि यह स्तम्भ मूलतः विष्णुपद गिरि पर स्थापित किया गया था। आयंगर के अनुसार सम्भवतः यही स्थान-मेहरौली-पहले विष्णुपद कहा जाता हो। एक अनुश्रुति के अनुसार वर्तमान स्थान पर इस स्तम्भ को तोमर नरेश अनंगपाल ने मूल स्थान से लाकर स्थापित [illegible] था। विष्णुपदगिरि को जायसवाल ने हरिद्वार में, स्मिथ ने मथुरा में, भण्डारकर ने पंजाब की पहाड़ियों में, जयचन्द्र विद्यालंकार ने व्यास नदी के निकट शिवालिक या सोलासिंगी पर्वत शृंखला में, ज० च० घोष ने कश्मीर मण्डल के समीप विपासा तट पर तथा दशरथ शर्मा ने

---

1. फ्लीट का पाठ : धावेन कुछ इसे देवेन पढ़ते हैं क्योंकि चन्द्रगुप्त II का नाम देवगुप्त भी था।
2. पढ़ें : विष्णौ।
3. पढ़ें : प्रांशु०. महाभारत के अनुसार यह कुरुक्षेत्र के पास था। देखें गत्वा हि श्रद्धया युक्तः कुरुक्षेत्रं कुरुद्वहः।.....ततो गच्छेत धर्मज्ञो विचोः स्थानमनुत्तमम्। etc. (महा०, III, 73, तथा 103.); तथा एतद्विष्णुपदं नाम दृश्यते तीर्थमुत्तमम्। एषा नदी विपाशा च नीद परमपावनी॥ (*वही*, III, 138, 8.); ययुर्मध्येन वाह्लीकान् (sic. रामा०) सुदामानञ्ज पर्वतम्॥ विष्णोः पदं प्रेषमायणा विपाशां चापि शालालीम्।

अम्बाला जिले के सिन्धौरा कस्बे के पास माना है। सम्भव है कि जैसे फिरोजशाह टोपरा से अशोक स्तम्भ दिल्ली उठवा लाया था इसे भी कहीं से उठाकर यहाँ लाया गया हो। इसका लेखक भी अज्ञात है।

इस अभिलेख से चन्द्र नामक राजा के विषय में निम्न बातें ज्ञात होती हैं—

1. बंगाल में सम्मिलित होकर आए हुए शत्रुओं को इस राजा (चन्द्र) ने पीछे ढकेला तथा वहाँ उसकी कीर्ति उसकी भुजा पर खंग से लिखी गई। यह बंगाल विजय का परिचायक है। (वङ्गेष्वाहव-वर्तिनो (ऽ) भिलिखिता खड्गेन कीर्त्ति (र्भु जे)।

2. इसने सिन्धु के सात मुहों को पारकर रणक्षेत्र में वह्लीकों को जीत लिया था। (तीर्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिन्धोर्ज्जिता वाह्लिका)

3. इसके शौर्य के पवन से दक्षिण जलनिधि आज भी सुगन्धित है। यह दक्षिण विजय का सूचक है। (यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्व्वीर्य्यानिलैर्दक्षिणः ॥)।

4. वह इस संसार को छोड़कर दूसरे लोक में चला गया है, फिर भी उसकी कीर्ति पृथ्वी पर विद्यमान है। (.....विसृज्यगां नरपतेर्गामाश्रितस्येतारां...कीर्त्या स्थितस्य क्षितौ)।

5. उसने अपने भुजबल से पृथ्वी पर एकाधिराज्य स्थापित किया था (प्राप्तेन स्वभुजार्ज्जितञ्च....एकाधिराज्यं)।

6. जिसने बहुत दिनों तक (सुचिरं) शासन किया था।

7. वह वैष्णव धर्मानुयायी राजा था जिसने विष्णुपदगिरि पर इस विष्णुध्वज की स्थापना किया था (...'भावेन विष्णो मतिं' तथा 'प्रान्शुर्व्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः')।

यह अभिलेख तत्कालीन धार्मिक अवस्था का वर्णन करता है कि वैष्णव धर्म विकसित स्थिति में था। विष्णु के वाहन गरुड को प्रतीक मानकर उसकी मूर्ति बनाई जाती थी।

इसमें 'चन्द्र' नामक राजा का बंगाल तथा पश्चिमी भारत में युद्ध के द्वारा पंजाब और वह्लीक विजय का ज्ञान मिलता है। दक्षिणी भारत पर भी उसके अधिकार की बात ज्ञात होती है। इस प्रकार चक्रवर्ती राज्य की कल्पना यहाँ पूरी होती है।

यह लेख मरणोत्तर लिखा गया है। इसमें प्रयुक्त 'गतवतः' शब्द बोधक है कि चन्द्र मर चुका है। पर इसे बहुत से लोग स्वीकार नहीं करते। डी० आर० भण्डारकर के अनुसार जिस समय यह लेख लिखा जा रहा था उस समय चन्द्रगुप्त जीवित था, भले ही राजा नहीं था। सरकार के अनुसार इस स्तम्भ को चन्द्रगुप्त ने ही खड़ा किया था पर लेख उसके बाद कुमारगुप्त ने लिखवाया था। किन्तु दशरथ शर्मा इसे मृत्योपरान्त होना ही ठीक मानते हैं।

'चन्द्र' की पहचान

इस अभिलेख में 'चन्द्र' नामधारी व्यक्ति की पहचान इतिहास की एक उलझी कड़ी है। इसका कारण है कि इसमें न कोई तिथि दी गई है, न यहाँ इसकी वंशपरम्परा है और न इसकी उपाधि ही हैं। इसी से स्टीन का मत था कि इसकी पहचान ही नहीं की जा सकती। फिर भी इसके पहचान का एक साधन है चन्द्र नामधारी शासकों की कीर्तियों को आधार बनाकर इस अभिलेख की विशेषताओं से सुमेलित कर उसकी पहचान करना। फिर भी जेम्स प्रिंसेप ने इसे तीसरी, चौथी शती

में रखने के बाद भी किसी राजा से इसकी पहचान नहीं की है। भाउदाजी ने तो इसे गुप्तों के बाद के काल का माना है, जो उचित नहीं है। निम्न चन्द्र नामधारी राजाओं से इसकी पहचान की गई है।

1. चन्द्रगुप्त मौर्य

हरिशचन्द्र सेठ के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य ने इस लौह स्तम्भ की स्थापना की थी जिस पर अंकित 'चन्द्र' चन्द्रगुप्त मौर्य है। उसको अपना आदर्श मानकर चन्द्रगुप्त (द्वितीय) ने उसकी स्मृति में यह लेख अंकित कराया था। पर यह धारणा अमान्य है क्योंकि चन्द्रगुप्त मौर्य जैन धर्मावलम्बी था। उसने वाह्लिको को नहीं जीता था। बंगाल में उसने अधिकार के लिए युद्ध किया हो ज्ञात नहीं। दक्षिण भले ही इसकी अधीनता में था पर वहाँ की विजय से इसकी कीर्ति ऐसी फैली नहीं कहा जा सकता। वहाँ तो नन्दों का अधिकार पहले से ही था। उनके राज्य को हस्तगत करने के कारण ही इसका अधिकार स्वतः बना रहा। उसके इन विशेषताओं का ज्ञान उसके शासन के लगभग 700 वर्ष बाद गद्दी पर बैठने वाले गुप्त शासक चन्द्रगुप्त द्वितीय को कैसे पता चला। भले ही इस लेखक के सुचिरं, चैकाधिरज्य स्वभुजार्जित आदि विशेषण इसके साथ मेल खाते हैं। फिर भी यह समीकरण बेमेल है। डा॰ पी॰ एल॰ गुप्ता ने इसे हास्यास्पद कहा है।

2. कनिष्क प्रथम

डा॰ रमेशचन्द्र मजुमदार ने कनिष्क प्रथम से इसकी समता की है। एक खोतानी पाण्डुलिपि में कुषाण शासक कनिष्क प्रथम को 'चन्द्र कनिष्क नौम' कहा गया है। पर यह बौद्ध धर्मानुयायी था। यह पश्चिम से पूरब की ओर विजय करते हुए बनारस तथा डा॰ अल्टेकर के अनुसार पाटलिपुत्र तक पहुँचा था जबकि 'चन्द्र' की विजय पूरब में बंगाल से प्रारम्भ होकर पश्चिम में वाह्लिक तक पहुँची थी। दक्षिण की ओर कनिष्क गया ही नहीं था। गोवर्धन राय शर्मा के अनुसार इसके साथ वाह्लिक विजय की बात उठती ही नहीं क्योंकि वह इसका मूलस्थान था। यह वैष्णव धर्मानुयायी था।

3. नागवंशीय शासक चन्द्रांश या सदाचन्द्र

डा॰ रायचौधरी ने पुराणों में आए इस नाम के एक नागराजा से इसका समीकरण किया है। पर यह अमान्य है क्योंकि नाग शासक मूलतः मथुरा के पास के थे। इन्होंने पूरब में बंगाल, दक्षिण में समुद्रतटीय भाग तथा पश्चिम में वाह्लिक पर कभी विजय ही नहीं किया था। इन्होंने सुचिरं और चैकाधिराज्य की स्थापना की ही नहीं। इसके भयंकर युद्धों की कोई जानकारी नहीं प्राप्त होती।

4. पुष्करणा का राजा चन्द्रवर्मा

स्मिथ, भट्टशाली, हरप्रसाद शास्त्री, राखालदास बनर्जी आदि सुसुनिया अभिलेख में चन्द्रवर्मा को मेहरौली का चन्द्र मानते हैं। पर इसको स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि भले ही उसका बंगाल के सुसुनिया पर्वत पर मिला लेख इसके बंगाल जाने को प्रमाणित करता है तथा इसमें उसे वैष्णव धर्मावलम्बी कहा गया है पर वह अजमेर के पुष्कर का एक स्थानीय शासक था। उसके साथ सुचिरं, चैकाधिराज्यं, स्वभुजार्जितं आदि विशेषण ठीक बैठते ही नहीं हैं। उसकी बंगाल यात्रा मात्र तीर्थयात्रा रही होगी। दक्षिण और पश्चिम में वह्लीकों के पराजय की बात इसके साथ की ही नहीं जा सकती। साथ ही मरकर भी अपनी कीर्ति के कारण इसके अमर होने की बात नितान्त हास्यास्पद लगती है।

5. चन्द्रगुप्त प्रथम

राधागोविन्द बसाक और एस॰ के॰ आयंगर इसे गुप्तवंशीय शासक चन्द्रगुप्त प्रथम मानते हैं क्योंकि इसीने सर्वप्रथम अपने भुजबल से भुजार्जित गुप्त साम्राज्य की स्थापना की थी। पर वह वैष्णव था ज्ञात नहीं। इसका शासन अत्यल्प था। आगे यह प्रयाग से पश्चिम बिहार से दक्षिण की ओर और वैशाली से पूरब की ओर कभी अपने राज्य विस्तार के लिए युद्ध किया ही नहीं। मत्स्य पुराण में 'अनुगंगा प्रयागं...गुप्त वंशजाः' से उसके राज्य का विस्तार प्रयाग से मगध तक की ही सीमा में था। कोई भी इसकी ऐसी कृति ज्ञात नहीं जिससे वह आज भी अमर हो। इसने विष्णुध्वज स्थापित नहीं किया था।

6. समुद्रगुप्त

श्रीराम गोयल ने गम्भीर वकालत किया है कि इसकी समता समुद्रगुप्त से की जाय क्योंकि इसने विशाल विजय की थी। यह वैष्णव धर्मानुयायी, एकछत्र शासन का स्थापक, बहुत दिनों तक राज्य करने वाला और कीर्तिमान शासक था जो आज भी अपनी अलग पहचान रखता है। पर इसमें कठिनाई है कि 'चन्द्र' न उसका नाम है न नाम का अंश है और न उपनाम ही। यदि इसने बंगाल और वह्लीकों पर विजय किया होता तो इसका उल्लेख प्रयाग प्रशस्ति में अवश्य होता। यह अभिलेख इसके वैष्णव होने की बात प्रमाणित नहीं करता। यदि समुद्रगुप्त के मरणोपरान्त यह लिखा गया होता तो कहीं भी इसके नाम का संकेत होता तथा इसे द्वारा राज्यों के जीतने के बाद इनके साथ अपनाई गई नीति का उल्लेख होता।

7. हूणवंशीय शासक

हूणवंश के मिहिरकुल के किसी भाई के साथ जो 'चन्द्र' नाम का था इसकी समता की गई है। पर यह अमान्य है क्योंकि हूण दक्षिण या बंगाल में गए ही नहीं। वे शैव थे। सुचिरं और चैकाधिराज्यं की बात उनके साथ लागू ही नहीं होती।

8. देवरक्षित वंश (बंगाल) का शासक

इस वंश के किसी चन्द्र नामक राजा की जिसे 'ताम्रलिप्तान ससागरान' का शासक कहा गया है इस चन्द्र से समता की गई है, जो नितान्त भ्रमात्मक है।

9. चन्द्रगुप्त द्वितीय

अल्टेकर, पी॰ एल॰ गुप्ता, वी॰ पी॰ सिन्हा, पं॰ सीताराम चतुर्वेदी, डा॰ जायसवाल, सरकार, मुकर्जी, दण्डेकार, वासुदेव उपाध्याय आदि ने इस समीकरण को स्वीकार किया है। दोनों के नाम में चन्द्र है। 'चन्द्र' शब्द ही उसके धनुर्धारी प्रकार के सिक्कों पर अंकित है क्योंकि चन्द्र उसका मूल नाम था और गुप्त वंश नाम। इसने लम्बे समय तक शासन किया। इसके दूसरे अभिलेखों में भी महराजाधिराज उपाधि दी गई है। इसके सिक्कों पर बने राजदण्ड के शीर्ष पर आसीन गरुड पक्षी उत्कीर्ण है। चूँकि वैष्णव धर्म गुप्तों के समय विकसित था तथा परम वैष्णव, परमभागवत आदि उपाधियों से ये युक्त थे तो यह विष्णुपदगिरि पर जाकर वहाँ वैष्णव ध्वज गाड़ा होगा। यहाँ बह्लीक शब्द वाहीक का रूपान्तर प्रतीत होता है जिसका अर्थ है नदियों का प्रदेश। रामायण तथा महाभारत में वह्लीक का प्रयोग है जो पंजाब की पाँच नदियों झेलम आदि के बीच स्थित था। रामायण में वह्लीक के मध्य में स्थित सुदामा पर्वत के शिखर पर विष्णुपद का उल्लेख है। प्रशस्ति में वह्लीक के साथ

विष्णुपदगिरि का उल्लेख डा॰ सरकार के अनुसार इसी पर्वत पर इसका अधिकार बताता है। मालवा और सिधु प्रदेश, जहाँ शक थे, उसके अधीन था क्योंकि कालिदास ने इसे शकारि कहा है। इसके व्याघ्र निहन्ता प्रकार के स्वर्ण सिक्के इसके पश्चिमी विजय का परिचय देते हैं। उदयगिरि के द्वितीय गुहालेख में 'कृत्स्न-पृथ्वी-जयार्थेन राज्ञैवैह सहागताः' के अनुसार सनकानिक महाराज भिलसा (पूर्वी मालवा) का शासक था। इसका कर्मचारी अम्रर्कादव अनेक युद्धों में विजय प्राप्त किया था। ये सभी चन्द्रगुप्त द्वारा पश्चिम की ओर किए जाने वाले शकविजय का संकेत देते हैं। उसने पंजाब में अधिकार किया था। दक्षिण में उसने नागवंश और वाटकों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध करने से उसका गौरव वहाँ भी व्याप्त हो चुका था। आज भी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। मात्र इसी का काल प्राचीन भारत का स्वर्णयुग माना जाता है। अतः यही समीकरण उचित है।

4. चन्द्रगुप्त द्वितीय का मथुरा स्तम्भ-लेख (वर्ष 61)

(Mathura Pillar Inscription of Chandragupta II [Year 61])

स्थान : चण्डू-भण्डू की वाटिका, मथुरा, उत्तर प्रदेश

लिपि : गुप्त ब्राह्मी

भाषा : संस्कृत

काल : गु॰ सं॰ 61 (= 380 ई॰)

विषय : शिवलिंग और शैवाचार्यों के प्रति आस्था

संदर्भ : गोयल, गुप्तकालीन अभि॰, पृ॰ 99-105; वासुदेव उपा॰, गु॰ अ॰, पृ॰ 368

मूल-पाठ

1. सिद्धम् (।*) भट्टारक-महाराज-[राजाधि]राज श्रीसमुद्रगुप्त-स-
2. [तु]त्रस्य भट्टारक-म[हाराज]-[राजाधि]राज-श्री-चन्द्रगुप्त-
3. स्य विज(य)-राज्य[1]–संवत्स[रे] [पं]चमे [5] कालानुवर्त्तमान[2]-सं-
4. वत्सरे एकषष्ठे[3] 60 (+)1......[4][प्र]थमे शुक्लदिवसे पं-
5. चम्यां (म्याम्) (।) अस्यां पूर्व्वा[यां] [भ]गव[त्कु]शिकादृशमेन[5] भगव-
6. त्पराशराच्चतुर्थेन [भगवत्क]पि[ल]विमल-शि-
7. ष्य-शिष्येण भगव[दुपमित]विमल-शिष्येण[6]
8. आर्य्योदि[ता]चार्य्ये[ण*] [स्]-पु[ण्या]प्यायन-निमित्तं
9. गुरूणां च कीर्त्य[र्थमुपतिमेश्व]र-कपिलेश्वरौ

---

1. भण्डारकर : रज्यम
2. भण्डारकर ने काला॰ के पहले गुप्त पढ़ा है। सरकार इसे नहीं मानते।
3. पढ़ें : एकषष्टे या एकषष्टितमे
4. भण्डारकर ने पढ़ा है : आषाढ-मासे, प्रथम कुछ ने पचम्यां पढ़ा है।
5. भण्डारकर ने कुशिक की समता प्रमुख शैव संन्यासी लकुलीश के चार प्रमुख शिष्यों में से एक के साथ की है। वायु और लिंग पुराण में इनका नाम कुशिक, गर्गस मित्र और कौरुष्य बताया गया है। पर चिन्त्रा प्रशस्ति में इन्हें चार पाशुपत शाखाओं का संस्थापक कहा गया है। इसके अनुसार गार्गेय के उत्तराधिकारी मथुरा में स्थित हुए। इस सम्प्रदाय के मृतक संन्यासी को भागवान कहा जाता था और जीवित को आचार्य।
6. इनके अध्यापकों का नामन्त 'विमल' से होता है।

10. गुर्व्वायतने गुरु......[1] प्रतिष्ठापितो[2] (।) नै-
11. तत्ख्यात्यर्थमभिलि[ख्यते] (।) [अथ] माहेश्वराणां वि-
12. ज्ञप्तिःक्रियते सम्बोधनं च (।) यथाका[ले]नाचार्या-
13. णां परिग्रहमिति[3] मत्वा विशङ्क[ं] [पू]जा-पुर-
14. स्कार[ं] परिग्रह-पारिपाल्यं [कुर्य्या]दिति[4] विज्ञप्तिरिति (।)
15. यश्च कीर्त्यभिद्रोहं कुर्य्या[ा]द्य[श्चा]भिलिखित[मुप]र्य्यधो
16. वा[5] [स] पंचभिर्मह[ा]पातकैरुपपातकैश्च संयुक्तस्स्यात् (।)
17. जयति च भगवा[ण्डण्डः][6] रुद्रदण्डो(ऽ)ग्र[ना]यको नित्य[ं] (त्यम्) (।।)

हिन्दी अर्थान्तर

सिद्धहो ! भट्टारक महाराज राजाधिराज श्री समुद्रगुप्त के सत्पुत्र भट्टारक महाराजा राजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त के विजय राज्य के पाँचवें वर्ष संवत् के अनुसार गणना करने पर इकसठवें 60 (+)1 शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि को। इस पूर्वोक्त तिथि को भगवत् कुशिक से दसवें (पीढ़ी में) भगवत् पराशर से चौथे (पीढ़ी में) भगवत् कपिलविमल के प्रशिष्य भगवत उपमितविमल के शिष्य आर्य उदिताचार्य द्वारा अपनी पुण्य की अभिवृद्धि के लिए और गुरुओं की कीर्ति हेतु गुर्वायतन में उपमितेश्वर तथा कपिलेश्वर (शिवलिंग जिनके साथ गुरु प्रतिमा संयुक्त थी) प्रतिस्ठापित किया गया। इस अभिलेख को मेरी ख्याति के लिए नहीं लिखवाया गया है। शिवभक्तों (माहेश्वरों) से आदर अनुरोध किया जाता है और उनको सम्बोधित किया जाता है यह जानकर कि यह आचार्यों की सम्पत्ति है शिवभक्त इसे समय से निःशंक रूप से आदर से पूजें और भेंट द्वारा परिपालित करें। यह सादर अनुरोध है। जो इस कीर्ति को क्षति पहुँचायेगा तथा अभिलेख में वर्णित सीमा का अतिक्रमण अथवा तिरस्कार करेगा वह पंचमहापातकों और उपपातकों का भागीदार होगा। भगवान रुद्रदण्ड जो शैवों के नायक हैं सर्वदा विजयी हों।

ऐतिहासिक महत्त्व

यह अभिलेख रंगेश्वर महादेव के मन्दिर के निकट दीवार से लगे हुए एक बलुआ पत्थर के अठपहले स्तम्भ के पाँच पहलों पर अंकित है। अब यह मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित है। इसका ऊपरी भाग चौकोर है तथा नीचे के भाग में खड़ी पुरुष आकृति सम्भवतः भैरव की प्रतिमा है। सबसे ऊपर त्रिशूल है। यह संस्कृत गद्य में है।

चन्द्रगुप्त का यह प्रथम प्राप्त तिथि युक्त लेख गु० सं० 61 = 380 ई० का है जिसे चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के शासन का प्रथम/पंचम वर्ष (प्रथमे या पंचमे जो भी पाठ रहा हो क्योंकि वह वाक्यांश टूटा है)

---

1. भण्डारकर ने पढ़ा है : गुरुप्रतिमाअयुतौ.
2. तो के स्थान पढ़े तौ
3. पढ़ें परिग्रहः इति (=परिग्रहः भविष्यति इति).
4. पढ़ें कुर्युः इति (=कुर्युः माहेश्वराः इति)
5. भण्डारकर का पाठ : उच्छिन्द्यात्
6. भण्डारकर ने इसे शुद्ध किया है : भगवान्दण्डः स.

का माना गया है। चन्द्रगुप्त का शासन इसके अनुसार 375 ई॰ से प्रारम्भ माना जा सकता है। इस अभिलेख की प्राप्ति के पूर्व उदयगिरि गुहार लेख गु॰ स॰ 81 = 400 ई॰ का प्रथम तिथि युक्त प्राप्त लेख था जिसके आधार पर डा॰ स्मिथ ने चन्द्रगुप्त का शासन 402 ई॰ से माना था। पर इस अभिलेख से नई तिथि प्रकाश में आई कि उससे 26 वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्त सिंहासनासीन हुआ था।

इस अभिलेख में चन्द्रगुप्त का विशेषण भट्टारक तथा महाराज है। यह भी उल्लिखित है कि यह समुद्रगुप्त का पुत्र था। उसकी भी उपाधि भट्टारक और राजाधिराज दी गई है।

यहाँ अक्षर और शब्द दोनों में ही गणना का उल्लेख है। अंकों के लिए दहाई तब इकाई का प्रयोग है यथा—60 (+) 1।

इस समय गुरुप्रतिमा गृह का चलन रहा होगा। यहा प्रयुक्त 'गुर्व्वायतन्' शब्द से गुरु-मन्दिर का बोध होता है जहाँ गुरुओं की प्रतिमाएँ रखी जाती होंगी। भास के प्रतिमा नाटक में भी इक्ष्वाकुओं के देवकुल का उल्लेख है। यह परम्परा से चला आ रहा था। कुषाणों ने मथुरा तथा सुर्खकोतल में और सातवाहनों ने नानाघाट में ऐसे देवकुल बनवाए थे।

ऐसे शिवलिंगों के निर्माण का ज्ञान यहाँ मिलता है जो विशिष्ट व्यक्तियों के साथ जुटे होते थे। यहाँ 9वीं पंक्ति में 'उपमितेश्वर-कपिलेश्वरो' का उल्लेख इस नाम के साथ शिवलिङ्गें का बोधक है। इसके आगे 10वीं पंक्ति में 'गुर्व्वायतने गुरु (प्रतिमायुतौ) प्रतिष्टापित' पढ़ा गया है। प्रतिमायुतो पाठ के आधार पर भण्डारकर का मत है कि इन शिवलिंगों पर उपमित और कपिल के चित्र बने थे। सरकार के अनुसार इन दोनों लोगों के सिर पर शिवलिंग बने होंगे। श्रीनिवास के विचार में उपमित और कपिल की समाधियों पर ये शिवलिंग स्थापित होंगे जैसा चलन था।

इसकी 16वीं पंक्ति में पाँच महापातक और उपपातकों की चर्चा है—पंचभिर्भ-हापातकैरुपपातकैश्च। पाँच महापातक हैं—ब्रह्महत्या, मदिरापान, सुवर्ण की चोरी, गुरुपत्नी गमन तथा इनके करने वालों के साथ रहना। (मनुस्मृति, 9|235 तथा 11|54) गो-हत्या, लिए हुए कर्ज को न चुकाना, दुष्टों के लिए यज्ञ करना आदि उपपातक बताए गए हैं। (वही 11|60-7)

पशुपत मत पर

ऊपर के शिवलिङ्ग के विवरण से ज्ञात होता है कि शैव धर्म इस समय चलन में था। इससे शैव धर्म के पाशुपत सम्प्रदाय के विषय में प्रकाश पड़ता है जिसकी स्थापना लकुलीश या नकुलीश ने की थी। लकुलीश को भगवान शंकर का अन्तिम अवतार परम्परा के अनुसार माना जाता है। महाभारत के नारायणीय पर्व के अनुसार शिव ने, जिनका नाम श्रीकण्ठ भी था, पाशुपत ज्ञान को प्रकट किया था। इसके लिए वह लकुलीश के रूप में अवतरित हुए थे। शिवपुराण लिङ्ग पुराण, वायु पुराण आदि के अनुसार शिव ने ब्रह्मा को बताया था कि अट्ठाइसवें प्रत्यावर्तन में जब वासुदेव का जन्म होगा उस समय वह काय परिवर्तन करके पश्चिमी भारत में कायावतार नामक स्थान के श्मशान में पड़े एक मृतक शरीर में प्रवेश कर लकुलिन नामक ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न होकर चार शिष्य बनाएँगे—कुशिक, गर्ग, मित्र और कौरुष्य। ये पाशुपत मत के अलग-अलग सम्प्रदायों की स्थापना कर रुद्रलोक को प्राप्त होंगे। यही विवरण कुछ अन्तर से एकलिङ्ग जी मन्दिर प्रशस्ति, सोमनाथ मन्दिर से प्राप्त चिन्ता प्रशस्ति से मिलता है। लकुलीश के शिष्य कुशिक का कार्य-क्षेत्र मथुरा था। इनके शिष्यों ने भी इसी को अपनी कार्यस्थली बनाया। इन शिष्यों को 'आचार्य' तथा मृत्यु के बाद उन्हें भगवान कहा जाता था। मृत्योपरान्त इनकी मूर्ति बनाकर सम्मानार्थ गुरु-मन्दिर (गुर्व्वायतन) में रखी जाती थी।

यहाँ परम्परा के विषय में ज्ञात होता है कि इसकी दसवीं पीढ़ी मे उदिताचार्य चन्द्रगुप्त का समकालीन तथा उपमितविमल का शिष्य था। चौथी पीढ़ी में पराशर नामक आचार्य का उल्लेख है। इन दोनों के बीच दो आचार्यों कपिलविमल तथा उपमितविमल का नाम आया है। इनमें उपमितविमल उदिताचार्य का गुरु होने के कारण नवीं पीढ़ी का आचार्य रहा होगा। कपिलविमल की पीढ़ी का स्पष्ट ज्ञान नहीं मिलता।

इस लेख से पाशुपत धर्म की स्थापना की तिथि पर नया प्रकाश पड़ता है। इसके पूर्व डा॰ भण्डारकर ने दूसरी शती ई॰ पू॰ इस मत के चलन की तिथि स्वीकार किया था। पर चौथी शताब्दी के इस लेख के समय इस परम्परा की दसवीं पीढ़ी में उदिताचार्य की स्थिति का ज्ञान मिलता है। यदि एक पीढ़ी का समय सामान्यतया पच्चीस वर्ष माना जाय तो इसके प्रवर्तक लकुलीश का समय 250 वर्ष पूर्व (375-250) 125 ई॰ अर्थात् द्वितीय शती का पूर्वाद्ध ज्ञात होता है। इस आधार पर अबतक जो माना जाता रहा कि पातंजलि ने जिस शिवभागवत-सम्प्रदाय का उल्लेख किया है वह 2 शती ई॰ पू॰ का पाशुपत मत था अमान्य हो जाता है तथा यह मान्यता भी कि विम कडफिसिज (प्रथम शती ई॰) पाशुपत धर्मानुयायी था अस्वीकार हो जाती है।

रुद्रदण्ड पुरुष की कल्पना

यहाँ 'रुद्रदण्डोऽग्रनायकों' का उल्लेख है। स्तम्भ के नीचे के भाग में ऊपर जिसे भैरव की मूर्ति कहा गया है इसी को श्रीनिवासन ने इस उल्लेख के अनुसार रुद्रदण्डपुरुष की प्रमिता माना है। भागवत धर्म में जैसे चक्रविक्रम की मान्यता थी जिसका अंकन युक्त सिक्के मिला है वैसे ही इस सम्प्रदाय में रुद्रदण्ड पुरुष रहा होगा।

5. चन्द्रगुप्त द्वितीय का उदयगिरि गुहा-अभिलेख
(Udaigiri Cave Inscription of Chandragupta II)

स्थान : भिलसा के समीप उदयगिरि पहाड़ी की गुफा, मध्य-प्रदेश

भाषा : संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी

काल : गुप्तसंवत् 82 (= 401 ई॰)

विषय : [1] चन्द्रगुप्त द्वितीय के अधीन सामन्त सनकानिक महाराज द्वारा गुहादान

[2] चन्द्रगुप्त द्वितीय का अपने सन्धिविग्राहक सचिव वीरसेन शाव के साथ पृथ्वी विजय के लिए मालवा आगमन तथा उदयगिरि पहाड़ी में भगवान शंकर के लिए मन्त्री द्वारा गुहा निर्माण

मूल-पाठ

[1]

1. सिद्धम्॥ संवत्सरे 80 (+) 2 आषाढ़-मास-शुक्लै(क्लै)कादश्याम् परमभट्टारक-महाराजाधि(राज)-श्री-चन्द्र[गु]प्त-पादानुद्धयातस्य।
2. महाराज-छगलग-पौत्रस्य महाराज-विष्णुदास-पुत्रस्य सनकानिकस्य महा[राज] * * लस्यायं दे[यधर्म्म]:।

[2]

[इसी पहाड़ी पर अंकित दूसरा लेख इसी राजा का]

सिद्धम्(॥)

1. यद[ ]तज्ज्योतिरर्क्काभमुर्व्व्यां[म्भा] * * — [(।)
   * * * *] — वयापि चन्द्रगुप्ताख्यमद्भुतम् (॥) [1]

2. विक्रमावक्रयक्रीता दास्य-न्यग्भूत-पार्त्थिव[ा] (।)
   * * * [स]न[1]-संरक्ता धर्म्म * *] (॥*) [2]

3. तस्य राजाधिराजर्षेरचि[न्त्यो][ज्ज्वल-क][र्म्म]णः (।)
   अन्वय-प्राप्त-साचिव्यो[2] व्या[पृत-सन्धि-वि*]ग्रह[ः] (॥) [3]

4. कौत्सरशाव इति ख्यातो वीरसेनः कुलाख्यया (।)
   शब्दार्त्थ-न्याय-लोकज्ञः कवि पाटलिपुत्रकः (॥) [4]

5. कृत्स्र-पृथ्वी-जयार्त्थेन[3] राज्ञैवेह सहागतः (।)
   भक्तया भगवतश्शम्भोर्ग्गुहामेतामकारयत्[4] (॥)[5]

हिन्दी अर्थान्तर

[1]

1. सिद्धि प्राप्त हो 82 वर्ष में आषाढ़ मास के शुक्लपक्ष में परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त के चरणों का चिन्तन करने वाले,

2. महाराजा छगलग के पौत्र, महाराजा विष्णुदास के पुत्र, महाराज सनकानिक का यह धर्म दान

[2]

1. जिसका तेज अन्तर्ज्योति के कारण पृथ्वी पर सूर्य की आभा के तुल्य था....वह चन्द्रगुप्त नामक था तथा उसकी अद्‌भुत कृतियां थीं

2. विक्रमरूपी क्रय-मूल्य देकर पृथ्वी के अन्य राजाओं को खरीदा था तथा दासता के लिए बाध्य किया था....।

3. उस अचिन्त्य उज्ज्वल कर्मों वाले राजाधिराजर्षि का वंशानुगत मन्त्रिपद प्राप्त करने वाला, सन्धि एवं विग्रह-सन्धिविग्रहिक-कार्य में नियुक्त

4. कौत्स गोत्रीय ब्राह्मण-शाव था जिसका कुल ख्यात नाम 'वीरसेन' था। वह व्याकरण, दर्शन, राजनीति विषयों का ज्ञाता था। वह पाटलीपुत्रवासी कवि था।

---

1. इसे पढ़ा जा सकता है – यस्य शासन-संरक्ता धर्मज्ञस्य वसुन्धरा
2. मन्त्रियों की नियुक्ति वंशानुगत होती थी। सम्भवतः वीरसेन समुद्रगुप्त के मन्त्री हरिषेण के ही परिवार का ही रहा हो। आमात्यों के लिए पितृपैतामह कहा गया है। (रामा० II, 100, 26)
3. चन्द्रगुप्त द्वितीय मध्य भारत में विजय के लिए गया था और उसकी आकांक्षा, 'पृथ्वी जयार्थेन' से ज्ञात होती है कि, भारत विजय की रही होगी। यहाँ अभिप्राय है शक और पश्चिमी भारत से।
4. चन्द्रगुप्त सहिष्णु था। वह स्वयं वैष्णव होकर भी शिव भक्तों के प्रति श्रद्धा रखता था।

5. समस्त पृथ्वी को जीतने की इच्छा से राजा चन्द्रगुप्त द्वितीय के साथ यहाँ उदयगिरि आया था और भगवान शंकर की भक्ति में इस गुहा का निर्माण कराया था।

ऐतिहासिक महत्त्व

मध्य प्रदेश में विदिशा के उत्तर-पश्चिम में स्थित उदयगिरि पहाड़ी की एक गुफा के दीवार पर यह तिथिविहीन लेख अंकित है। इसमें तत्कालीन शासक चन्द्रगुप्त के गुणों का उल्लेख करते हुए उसे राजाधिराज तथा नरेशों में ऋषितुल्य बताया गया है। इसमें वीरसेन शाव उसके संधिविग्राहक आमात्य की चर्चा है जो वंश परम्परा से इस पद को प्राप्त किया था। वह कवि, व्याकरण, दर्शन एवं राजनीति आदि विषयों का ज्ञाता पाटलिपुत्रवासी था। वह सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतने की अभिलाषा से राजा के साथ यहाँ आया था तथा भगवान शम्भु के प्रीति के कारण उसने इस गुहा का निर्माण कराया था।

फ्लीट ने दूसरे लेख तिथिविहीन होने के कारण इस पर संदेह किया है कि यह चन्द्रगुप्त प्रथम का होगा। पर इसके तिथि के लिए दूसरे अभिलेख का सहारा लिया गया है। इसी पहाड़ी पर एक दूसरा लेख संवत् 82 (401-2 ई०) का है जिसमें चन्द्रगुप्त के सामन्त सनकानिक महाराज के दान की चर्चा है। पास ही में सांची के बड़े स्तूप की वेदिका पर गु० सं० 93 (412-13 ई०) के लेख में अम्रकार्दव नामक एक सैनिक अधिकारी द्वारा सांची के बौद्ध विहार के दान का उल्लेख है। धारणा है कि जिस अभियान की चर्चा वीरसेन ने की है उसमें सैनिक अधिकारी अम्रकार्दव और सामन्त सनकानिक महाराज चन्द्रगुप्त द्वितीय के साथ आए थे। अतः यह अभिलेख भी गु० सं० 82 तथा 93 (401 से 413 ई०) के बीच ही होगा। इसको 409 ई० के पहले का ही मानना उचित प्रतीत होता है क्योंकि मध्यप्रदेश से चन्द्रगुप्त ने पश्चिम के क्षत्रपों पर आक्रमण किया होगा और वहाँ क्षत्रप शैली के उसने सिक्के चलाए गए होंगे। इन सिक्कों पर प्राप्त तिथि गु० सं० 90 और 96 (409-415 ई०) है। चूँकि क्षत्रपों पर विजय के पूर्व वह यहाँ ठहरा होगा अतः यह विजय सिक्कों के आधार 409 ई० के पहले ही हुई होगी। इससे यह लेख 409 ई० से पहले लिखा गया होगा।

चन्द्रगुप्त के अनेक गुणों का यहाँ उल्लेख है—'विक्रमावक्रयक्रीता' (पृथ्वी उसके पराक्रम के मूल्य में खरीद गई है) तथा 'उज्ज्वल कर्मणः' (जिसका कर्मक उज्ज्वल है) आदि। ऐसे विशेषणों का ज्ञान मेहरौली लौहस्तम्भ लेख से भी चन्द्र (=चन्द्रगुप्त द्वितीय) के सम्बन्ध में होता है। वहाँ उल्लिखित 'मूर्त्त्या कर्म्म-जिता-वनिं भगवतः कीर्त्त्या स्थितस्यक्षितौ' और 'चन्द्र-सदृशीं वक्त्र श्रियं विभ्रता' भी इन्हीं गुणों को प्रतिध्वनित करते हैं।

यहाँ चन्द्रगुप्त की उपाधि 'राजाधिराज' है जबकि स्कन्दगुप्त के भीतरी स्तम्भ लेख, द्वितीय कुमारगुप्त के भीतरी मुद्राभिलेख, बुद्धगुप्त के नालन्दा मुद्राभिलेख, प्रभावती गुप्ता के पूना ताम्रपत्र अभिलेख में इसे 'महाराजाधिराज' कहा गया है। फ्लीट के अनुसार 'राजाधिराज' की उपाधि गुप्तों से पूर्व सार्वभौम स्वतन्त्र शासकों के लिए प्रयोग की जाती थी जिसके स्थान पर गुप्तकाल में 'महाराजाधिराज' का प्रयोग होने लगा था। यद्यपि इस समय भी स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख में 'राजाधिराज' तथा यशोधर्मन—विष्णुवर्धन के मन्दसोर अभिलेख एवं शिलादित्य के आलीना दानपत्र मे इसी उपाधि का उल्लेख मिलता है।

वीरसेन शाब चन्द्रगुप्त का सचिव था। प्रायः गुप्त अभिलेखों और मुहरों में आमात्य या कुमारामात्य का ही प्रयोग हुआ है। पर इन दोनों सचिव और आमात्य, में कोई भेद नहीं था। रुद्रदामन के गिरनार अभिलेख में— 'मतिसचिव–कर्मसचिव-वैरमात्य' का उल्लेख है। अतः आमात्य को ही सचिव कहते थे। कामन्दकनीतिशास्त्र में भी इनकी योग्यता में भेद नहीं ज्ञात होता। यहाँ 'व्यापृत' शब्द से स्पष्ट है कि गुप्तकाल में सचिव या आमात्य का पद वंशानुगत था तभी वीरसेन परम्परा से सचिव पद प्राप्त करने वाला कहा गया है। आमात्य की न केवल राजनीति में ही अपितु ज्ञान की विविध शाखाओं में पैठ होती थी। तभी सचिव को व्याकरण, न्याय, राजशास्त्र तथा साहित्य का ज्ञाता बताया गया है। दूसरा था 'सन्धिविग्राहक' अर्थात् युद्ध तथा सन्धि की नीति को निर्धारित करने वाला। परन्तु शाब भी युद्ध में चन्द्रगुप्त के साथ आया था। अतः डा॰ राय का अनुमान है कि यह आमात्य के साथ उसका सेनानायक–महाबलाधिकृत–भी रहा होगा।

'कृत्स्न पृथ्वी जयार्थेन राज्ञैवेह सहागतः' से विदित है कि सम्राट सम्पूर्ण पृथ्वी जीतने की इच्छा से बरीसेन शाब के साथ यहाँ आया था। इसी काल से साँची अभिलेख से ज्ञात होता है कि इसका अम्रकार्दव नामक पदाधिकारी अनेक युद्धों में विजय के कारण यश प्राप्त किया था। उदयगिरि गुहालेख गु॰ सं॰ 82 में सनकानिक महाराज सामन्त का उल्लेख है। ये तीनों साक्ष्य उसके नियोजित विजय क्रम के बोधक हैं। निश्चय ही यह अभियान शक विजय की ओर संकेत करता है। इसी तिथि के बाद चन्द्रगुप्त की शक-क्षत्रप प्रकार की मुद्राएँ चलन में आई होंगी। इसकी रजत मुद्राएँ शकों द्वारा अधिकृत प्रदेशों से प्राप्त हुई हैं। पर डा॰ गुप्त इससे सहमत नहीं हैं। वह इस लेख की इस पंक्ति का अर्थ अक्षरशः स्वीकार नहीं करते। बहुत सम्भव है वीरसेन उस प्रदेश में तब गया हो जब चन्द्रगुप्त अपनी बेटी (वाकाटक राजमहिषी प्रभावती गुप्ता) से मिलने पहुँचा हो। पर शक सिक्कों के लिए यह तर्क बहुत सटीक नहीं लगते।

यहाँ 'भक्त्या भगवतश्शम्भोर्गुहामेतामकारयत्' का अर्थ है कि बीरसेन शाब ने भगवान शिव के प्रति भक्ति के कारण उदयगिरि के इस गुहा का निर्माण किया था। चन्द्रगुप्त द्वितीय की उपाधि 'परमभागवत' तथा मेहरौली अभिलेख में 'विष्णौ मतिम्' है। इसीसे उसने विष्णुपदगिरि पर 'विष्णोर्ध्वज' की स्थापना की थी। इनसे विदित होता है कि वह वैष्णव धर्मानुयायी था पर उसका उच्च पदाधिकारी सचिव वीरसेन शैव था। शिव की भक्ति के कारण इस गुफा का निर्माण उसकी धार्मिक सहिष्णुता का बोधक है। इसकी पुष्टि इससे भी होती है कि साँची के लेख में अम्रकार्दव के सैनिक पदाधिकारी, जो बौद्ध मतावलम्बी था, साँची के कोकनादवाट महाविहार के लिए 25 हजार स्वर्ण मुद्राएँ दान दी थीं।

6. चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के काल का साँची पाषाण लेख (वर्ष 93)

(Sanchi Stone Inscription of the time of Chandragupta-II, Year-93)

स्थान : साँची, मध्य प्रदेश, सांची स्तूप के पूर्वी तोरण के बाहर दाहिनी वेदिका के द्वार पर

भाषा : संस्कृत

लिपि : दक्षिणी ब्राह्मी

तिथि : वर्ष 93 (गुप्त संवत् में = 412 ई॰)

विषय : चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के सेनापति अम्रकार्दव द्वारा कोकनादवोट के बौद्ध संघ को ईश्वरवासक गाँव तथा 25 दीनार का दान देना भिक्षुओं के भोजन और प्रकाश की व्यवस्था हेतु।

मूल-पाट

[सिद्धम् ।।]

1. का[कना]दबोट-श्रीमहाविहारे[1] शील-समाधि-प्रज्ञा-गुण-भावितेन्द्रियाय परम-पुण्य-
2. क्षे[त्र] [ग*]ताय[2] चतुर्द्दिगभ्यागताय श्रमण-पुङ्गवावसथायार्य्य-सङ्घाय महाराजाधि-
3. रा[ज-श्री]चन्द्रगुप्त पाद-प्रसादाप्यायित-जीवित-साधनः अनुजीवि-सत्पुरुष-सद्भाव-
4. वृ[त्त्यर्थं] जगति प्रख्यापयन् अनेक-समरावाप्त-विजय-यशस्पताकः सुकुलिदेश-न
5. ष्टी * * * * वास्तव्य उन्दान-पुत्राम्रकाद्दवो मज-शरभङ्गाम्रगत-राजकुल-मूल्य-की-
6. त-[म] * * * * ईश्वरवासकं पञ्च-मण्डल्या[*] प्रणिपत्य ददाति पञ्चविंशतिश्च[3] दीना
7. रान् (।।*) * * * * * * *[4] यादर्द्धन महाराजाधिराज-श्रीचन्द्रगुप्तस्य देवराज इति प्रि-
8. य-ना[म्नः *][5] * * * * * रितस्य सर्व्व-गुण-संपत्तये यावश्चन्द्रादित्यौ तावत्पञ्च भिक्षवो भुंज-
9. तां र[त्र]-गृ[हे*] [च*] [दी*] [प]को ज्वलतु (।) मम चापरार्धत्पञ्चैव भिक्षवो भुंजतां रत्न-गृहे च
10. दीपक इ[ति] (।।*) [त]देतत्प्रवृत्तं य उच्छिन्द्यात्स गो-ब्रह्म-हत्या संयुक्तो भवेत्पञ्चभिश्चान–
11. न्तर्य्यैरिति (।।) सं 90 (+*) 3 भाद्रपद-दि 4 (।।)

हिन्दी अर्थान्तर

1-2. सिद्धम्। कोकनादबोट के श्री महाविहार में आर्य संघ को—जिसमें (इसके सदस्यों की) इन्द्रियाँ, शील, समाधि और प्रज्ञा गुणों द्वारा पावन हो गई है, (जिसके सदस्य) परमपुण्य क्षेत्र में जाने वाले (तीर्थस्थलों का दर्शन करने वाले) हैं, जो चारों दिशाओं से आने वालों से निर्मित हैं (सभी प्रदेशों से श्रमण आते रहते हैं) तथा श्रेष्ठ श्रमणों का जो निवास स्थल है—

3-6. महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के चरणों की कृपा से सन्तुष्ट जीविका के साधन वाला राजा का आश्रित (अनुजीवी), सज्जन पुरुषों के सद्व्यवहार को जगत में प्रकाशित करने वाला, अनेक समरों में विजय की यशःपताका को प्राप्त करने वाला, सकुलिदेश के नष्टी...का निवासी (तथा) उन्दान का पुत्र अम्रकार्दव राजकुल में मज, शरभंग तथा अम्रगत से मूल्य देकर खरीदे हुए...ईश्वर वासक ग्राम को पञ्चमण्डली को प्रणिपात करके दान देता है तथा पचीस दीनारों को भी देता है।

7-9. उसके द्वारा दिए गए दीवारों (के ब्याज) के आधे के द्वारा महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के जिनका प्रियनाम देवराज है....उसके समस्त गुणों में उत्कर्ष के लिए जबतक चन्द्र और

---

1. कोकनादवोट सांची का प्राचीन नाम था।
2. फ्लीट ने पढ़ा है : कृ....ताय
3. पढ़ें : विंशतिश्च
4. फ्लीट इसे पूरा करते हैं : प्रियनामामात्यो भवत्येतस्य, देवराज चन्द्रगुप्त के अधिकारी का नाम है पर देवराज या देवगुप्त राजा का दूसरा नाम था। इसके अनुसार इसका उल्लेख वाकाट् प्रवरसेन के दानपत्र में हुआ है।

सूर्य हैं तब तक पाँच भिक्षुओं को भोजन कराया जाय तथा रत्नगृह में दीप जलाया जाय और ब्याज के दूसरे आधे भाग से, जो मेरा अपना है, पाँच ही भिक्षुओं को भोजना कराया जाय और रत्नगृह में दीपक जलाया जाय।

10. जो भी इसमें बाधक होगा वह गोहत्या और ब्रह्म हत्या के पाप का भागी होगा तथा तुरन्त परिणाम देने वाले पाँचों पापों का भागी बनेगा। संवत् 90 + 3, भाद्रपद, दिवस 4।

ऐतिहासिक महत्त्व

मध्य प्रदेश के भोपाल जिले के दीवानगंज तहसील के इसी नाम के स्थान से बारह मील उत्तर-पश्चिम में स्थित साँची के महास्तूप के पूर्वी वेदिका पर संस्कृत भाषा में यह लेख गुप्त ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण है। इस बौद्ध लेख में गु॰ सं॰ 93 = 412 ई॰ में चन्द्रगुप्त के सेनापति अम्रकार्दव द्वारा ईश्वरवासक क्षेत्र तथा 25 दीनारों के दान का उल्लेख भिक्षुओं के भोजन तथा प्रकाश की व्यवस्था के लिए खुदवाया गया था।

इससे चन्द्रगुप्त के उदार धार्मिक दृष्टिकोण का ज्ञान मिलता है। 'परमभागवत' की उपाधि धारण करते हुए भी बौद्धधर्मानुयायी अम्रकार्दव को उसने अपना सेनापति बनाया था। अम्रकार्दव ने भी चन्द्रगुप्त की प्रशंसा की है तथा आभार प्रकट किया है।

यहाँ धन जमा करने की एक विशेष पद्धति का उल्लेख है कि मूलधन स्थायी रूप से जमा रहे और उसकी सूद से निर्दिष्ट व्यय होता रहे जैसे यहाँ भिक्षुओं के भोजन एवं रत्नगृह में दीप जलाना आदि। इसीके बाद ऐसे दान पत्रों को जिसके मूल का कभी क्षय न हो 'अक्षयनीवी' कहा गया है। यहाँ धन जमा करने का स्थान संघ है। अतः बौद्ध संघ बैंक का भी काम करते हैं। इसे एक प्रकार से उस दान का ट्रस्टी भी मान सकते हैं। यद्यपि यहाँ ज्ञात नहीं पर अवश्य ही सूद के लिए ये संघ व्यवसायियों को उधार देते होंगे।

बाजार भाव का भी कुछ अनुमान इससे मिलता है। इस जमा धन पर स्मृतियों की गणना के अनुसार आज का 4 रुपये सूद मासिक आता था जिससे पाँच व्यक्ति एक माह भोजन करते थे। पर साँची अभिलेख (गु॰ सं॰ 131 = 450 ई॰) में इतने ही धन को केवल एक व्यक्ति के भोजन के लिए दिया गया है।

पंचायत व्यवस्था थी जिसे यहाँ पञ्चमण्डली कहा गया है। अम्रकार्दव ने स्वयं इसको दान दिया था।

इस अभिलेख का कोई सम्बन्ध चन्द्रगुप्त के शक विजय से नहीं है, भले ही कुछ लोगों ने ऐसा अनुमान लगाया है। यह बात दूसरी है कि उसी सन्दर्भ में वह यहाँ आंया होगा और बौद्ध धर्म के प्रति उदारता के कारण भिक्षुओं को यह दान दिया होगा।

इसकी सातवीं पंक्ति इस प्रकार है— 'महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त देवराज इति प्रियना (म्रः)। इसके आगे का भाग टूटा है। फ्लीट ने इसकी पूर्ति यह जोड़ कर किया— प्रियनामात्मायो भवेत्य तस्य। इसका अनुवाद करते हुए बताया कि 'वह देवराज नाम से विख्यात चन्द्रगुप्त का अमात्य है।' प्रिंसेप ने इसका अनुवाद फ्लीट के पहले किया था कि यह चन्द्रगुप्त का दूसरा नाम ज्ञात होता है। फ्लीट ने टूटी हुई पंक्ति के कारण 'देवराज' को चन्द्रगुप्त का नाम मानने में शंका किया है। पर चन्द्रगुप्त का नाम 'देवराज' ही यहाँ प्रयुक्त होगा। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे प्रभावती गुप्ता के पूना और

रिद्धपुर दानपत्रों में 'देवगुप्त' इसका दूसरा नाम दिया गया है। चम्मक ताम्रपत्र में उसके पिता का नाम 'देवगुप्त' आया है। अतः प्रिंसेप का अनुमान अधिक सही है।

यहाँ पाप का भय दिखाया गया है कि जो इस व्यवस्था में बाधा डालेगा वह पाँच पापों का भागीदार होगा। लगता है पाप से लोग बहुत डरते थे तथा पंचपाप की मान्यता विशेष रूप से समाज में थी। इसमें उल्लिखित—'गो-ब्रह्म-हत्या संयुक्तो' से स्पष्ट है कि पाँच पापों में गौ और ब्राह्मण की हत्या से लोग विशेष डरते थे।

यहाँ उल्लिखित 'काकनादवोट श्री महाविहार' से ज्ञात होता है कि साँची का पुराना नाम 'काकनादवोट' था। दो मौर्यकालीन अभिलेखों से भी यह ज्ञात होता है। फ्लीट के अनुसार काकनाद का अर्थ है 'कौवों का नाद'। सम्भव है काक नामक गणराज्य की बस्ती के कारण, जिसका उल्लेख प्रयाग प्रशस्ति में हुआ है, इसका यह नाम रहा होगा। साँची के पास की एक पहाड़ी का नाम काकनाद है तथा भिलसा से बीस मील उत्तर की ओर काकपुर नामक एक गाँव है। यह चन्द्रगुप्त का अन्तिम तिथियुक्त ज्ञात लेख है। अतः उसके शासन की अन्तिम तिथि गु० सं० 93 = 412 ई० मानी जाती है।

7. कुमारगुप्त प्रथम का कर्मदण्डा शिवलिंग अभिलेख

(Karamadanda Sivaling Inscription of Kumargupta I)

स्थान : कर्मदण्डा गाँव के पास भराठीडीह, फैजाबाद (उ० प्र०)

लिपि : गुप्त ब्राह्मी

भाषा : संस्कृत

काल : गुप्त संवत् 117 (=436 ई०)

विषय : पृथ्वीश्वर के लिए दान

मूल-पाठ

1. नमो महादेवाय। म[महाराजाधिराज-श्री] [चन्द्रगुप्त-पादा]-
2. नुध्यातस्य चतुधुदधि-सलिळास्वादित-य[शसो] [महाराजा]-
3. धिराज-श्रीकुमारगुप्तस्य विजयराज्य-संवत्स[र]-शते सप्तदशोत्त[रे]
4. कार्त्तिक-मास-दशम-दिवसे(ऽ)स्यान्दिवसपूर्व्वायां [च्छान्दोग्याचार्य्याश्व]वाजि-
5. सगोत्र-कुरम[ा]र[व्या]भट्टस्य पुत्रो विष्णुपालितभट्टस्तस्य पूत्रो मह[ा]र[ा]-
6. अधिजाजा[1]-श्रीचन्द्रगुप्तस्य मन्त्री कुमारामात्यशिखरस्वाम्यभूतस्य पुत्रः
7. पृथिवीषेणनो महाराजाधिराज-श्रीकुमारगुप्तस्य मन्त्री कुमारामात्यो(ऽ)न-
8. न्तरं च महाबलाधिकृतः भगवतो महादेवस्य पृथिवीश्वर इत्येवं समाख्यातस्या-
9. स्यैव भगवतो यथाकर्त्तव्य-धार्म्मिककर्म्मणा पाद-शुश्रूषणाय भगवच्छै-
10. लेश्वरस्वामिमहादेवपादमूले आयोध्यकनानागोत्ररचरण तपः-
11. स्वाध्याय-मन्त्र-सूक्त-भाष्य-प्रवचन-पारग-भारडिदसमद-देवद्रोण्यां
12. ....

---

1. पढ़ें : जाधिराज.

हिन्दी अर्थान्तर

महादेवजी को नमस्कार है। महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त के उत्तराधिकारी जिसके यश ने चारों समुद्र के जल का स्वाद लिया है, महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त के विजय राज्य के संवत्सर 117 कार्तिक-मास के दसवें दिवस इससे पूर्व छान्दोग्य शाखा वाजिगोत्री कुमारभट्ट के पुत्र विष्णुपालित भट्ट के पुत्र महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त के मन्त्री कुमारामात्य शिखरस्वामी के पुत्र पृथिवीषेण जो महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त का मन्त्री कुमारामात्य एवं महाबलाधिकृत है भगवान महादेव पृथिवीश्वर के नाम से जाना जाता है। उसी भगवान यथारूप से कर्त्तव्य, धार्मिक कार्य तथा पादसेवन के निमित्त भगवान शैलेश्वर स्वामी महादेव के समीप अयोध्या के निवासी अनेक गोत्र, चरण, तप, स्वाध्याय,मन्त्र, सूत्र, भाष्य के प्रवचन में पण्डित, ब्राह्मण को देवयात्रा के निमित्त ग्राम दिया गया।

ऐतिहासिक महत्त्व

उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जनपद से शाहगंज फैजाबाद वाली सड़क पर फैजाबाद से लगभग 12 मील दूर स्थित कर्मदण्डा गाँव के समीप भराठीडीह टीले से प्राप्त एक शिवलिंग के अठपहले आधार पर यह लेख अंकित है। इस पर गु० सं० 117 (436-7 ई०) का उल्लेख है। यह कुमारगुप्त (प्रथम) के काल का है जिसे चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के मन्त्री शिखरस्वामी का पुत्र, कुमारगुप्त (प्रथम) के कुमारामात्य पृथ्वीषेण ने उत्कीर्ण कराया है।

यह अभिलेख महादेव जी के नमस्कार से प्रारम्भ होता है। यहाँ वर्णित है कि चन्द्रगुप्त (द्वितीय) के उत्तराधिकारी के यश ने चारों समुद्रों का आस्वादन किया है। इसके पुत्र कुमारगुप्त (प्रथम) के मन्त्री कुमारामात्य एवं महाबलाधिकृत पृथ्वीषेण का उल्लेख है जो छान्दोग्य शाखा के वाजिगोत्रिय कुमारभट्ट के पुत्र विष्णुपालित भट्ट के पुत्र शिखरस्वामी का पुत्र था और चन्द्रगुप्त (द्वितीय) का कुमारामात्य था। शैलेश्वर स्वामी महादेव, जिन्हें पृथिवीश्वर भी कहते हैं, के समीप जो विभिन्न विद्याओं में निष्णात अयोध्या के पण्डितों के लिए यह ग्राम दान दिया गया था। यह लेख धार्मिक, राजनीतिक तथा प्रशासकीय दृष्टि से विशेष महत्त्व का है।

गुप्त अभिलेख प्रायः 'सिद्धम् !' से प्रारम्भ होते हैं। पर यह 'नमोमहादेवाय' से प्रारम्भ होता है। इससे शैव धर्म की प्रधानता स्पष्ट होती है। कुमारगुप्त के शैव मन्त्री पृथ्वीषेण ने भी शैव मन्दिर के समीप दान दिया था। तभी शैलेश्वर महादेव को स्वामी शब्द से सम्बोधित किया है। कुमारगुप्त (प्रथम) की उपाधि अभिलेखों में 'परमभागवत' है। उसने अश्वमेघ यज्ञ करके अश्वमेघ प्रकार का सिक्का ढलवाया था। गंगाधर लेख में विष्णु मन्दिर की स्थापना, वैग्राम ताम्रलेख में विष्णु मन्दिर को दान आदि इसके वैष्णवानुयायी होने को पुष्ट करते हैं। पर शैव मन्त्री की नियुक्ति और शिव मन्दिर का दान इसकी धर्म सहिष्णुता का परिचायक है। अन्य स्रोतों से ज्ञात है कि इसके काल में शक्ति, कार्तिकेय, बुद्ध तथा जिनकी उपासना होती थी।

उसका समय उत्तरी भारत में शिवलिंग की उपासना का अन्तिम चरण है। पाँचवीं शती तक ही शिव उपासना पौराणिक रूप से लिंग के द्वारा की जाती थी। यद्यपि दक्षिण भारत में 8वीं शती तक शिवलिंग की पूजा का चलन था।

'चतुरुदधि सलिलास्वादित यशसो' का उल्लेख कुमारगुप्त की विशेषता के लिए यहाँ किया गया है। उसका यश चारों समुद्रों तक फैला था। यह उसके साम्राज्य सीमा का भी संकेत करता है। सम्भव है यह कथन अतिरंजनापूर्ण हो। उसी प्रकार मन्दसोर प्रशस्ति में भी कुमारगुप्त के साम्राज्य के विषय

में कहा गया है—

चतुस्समुद्रान्तविलोलमेखलां
सुमेरु-कैलास-वृहत्पयोधराम्।
वनान्तवान्तस्फुट पुष्पहासिनीं
कुमारगुप्ते पृथिवीं प्रशासति।।

'उसके राज्य के चतुर्दिक समुद्र का कमरबन्ध हैं तथा कैलाश और सुमेरु पर्वत उसके ऊँचे स्तन हैं।' ऐसा दूसरे गुप्त शासक समुद्रगुप्त के लिए भी प्रयागप्रशस्ति में कहा गया है—

प्रदान-भुजविक्क्रम-प्रशम-शास्त्रवाक्योदयै-
रूपर्य्युपरि-सञ्चयोच्छ्रितमनेकभार्ग यशः।
पुनाति भुवनत्रयं पशुपतेर्ज्जटान्तर्गुहा-
निरोध-परिमोक्ष-शीघ्रमिव पाण्डुगाङ्गपयः।।

इसमें गुप्त सं॰ 117 = 436 - 7 ई॰ को कुमारगुप्त का विजयसंवत्सर कहा गया है। वह 436 ई॰ में शासन करता था।

इस समय अधिकारियों का पद वंशानुगत था। तभी चन्द्रगुप्त द्वितीय के मन्त्री कुमारामात्य शिखरस्वामी के पुत्र पृथ्वीषेण महाराजा कुमारगुप्त के मन्त्री और वलाधिकृत नियुक्त किया गया था। सम्भवतः तब एक मन्त्री को योग्यता के अनुसार कई पद दिए जाते थे, तभी पृथ्वीषेण को कुमारामात्य और महाबलाधिकृत दोनों ही पद प्रदत्त थे। 'कुमारामात्य' एक प्रशासनिक अधिकारी था जबकि महाबलाधिकृत गुप्त काल का प्रधान सेनापति था। इसके अधीन अनेक महासेनापति थे। कुछ लोगों के अनुसार कुमारामात्य युवराज होता था। पर डा॰ बनर्जी के अनुसार इसका अभिप्राय है राजकुमार का मन्त्री। डा॰ अल्टेकर ने इन्हें उच्च प्रशासनिक कर्मचारी माना है जो महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त होते थे।

इसमें अयोध्या नगर की चर्चा विद्याव्यसनी नगर के नाम से हुई है। विद्याव्यसनी तथा अनेक शास्त्रों के पारंगत विद्वान यहाँ रहते थे, (नानागोत्र चरण-तपः-स्वाध्याय-मंत्र-सूत्र-भाष्य-प्रवचन-पारग)। इसमें वर्णित 'छान्दोग्याचार्य' से स्पष्ट है कि छान्दोग्य उपनिषद की महत्ता विशेष थी। इसी प्रकार अलग-अलग उपनिषदों पर अलग-अलग लोग अपना विशेष अध्ययन सीमित करते होंगे।

8. कुमारगुप्त प्रथम का दामोदरपुर ताम्रपत्र अभिलेख

(गु॰ सं॰ 124 = 444 ई॰)

(Damodarpur Copper Plate Inscription of Kumar Gupta I)
(G. E. 124 = 444 A. D.)

स्थान : दामोदरपुर

भाषा : संस्कृत

लिपि : उत्तरी ब्राह्मी

काल : गु॰ सं॰ 124 (=444 ई॰)

विषय : भूमि क्रय करने का विवरण

मूल-पाठ

मुख भाग

1. सम्ब[1] 100 (+) 20 (+) 4 फाल्गुण-दि[2] 7 परमदैवत-परमभट्टारक-महाराज[ा]
2. धिराज-श्रीकुमारगुप्ते पृथिवी-पतौ तत्पाद-परिगृहीते पुण्ड्रवर्द्ध[न]
3. भुक्तावुपरिक[3]-चिरातदतेनानुवलवानक[4]-कोटिवर्ष-विषये च त-
4. न्नियुक्तक-कुमारामात्य-वेत्रवर्मन्यधिष्ठाणाधिकरणञ्च नगरश्रेष्ठि-
5. धृतिपाल-सार्त्थवाहवन्धुमित्र-प्रथमकुलिकधृतिमित्र-प्रथमका[य]-
6. स्थशाम्बपाल-पुरोगे संव्यवहरति[5] यतः ब्राह्मण कर्प्पटिकेण
7. विज्ञापित(म्)अरहर्थ[6] ममाग्निहोत्रोपयोगाय अप्रदाप्रहत-खि-
8. ल-क्षेत्र[ ] त्रदीनारिक्य-कुल्यावापेण शश्वताचद्रार्क्क-तारक-भोज्ये[त]-

पृष्ठ भाग

9. या[6] नीवी-धर्म्मेण दातुमिति एवं दीयतामित्युत्पन्ने त्रिनी[7] दीना[राण्यु]-
10. पसंगृह्य यतः पुस्तपाल-रिशिदत्त[8] जयनन्दि-विभुदत्तानामवधा-
11. रणया डोङ्गाया उत्तर-पश्चिणद्देशे[9] कुल्यवपमेकम् दत्तम् (॥)
12. स्वदत्तां परदत्ताम्बा[10] यो हरेत वसुन्धरांम् (।)
    भूमि-[दान]-संवद्धा[:] श्लोका भवन्ति (।)[11]
13. स विष्ठायां क्रिमिर्भूत्वा पित्रिभि सह पच्यतेति (।)।

---

1. पढ़ें : संव जो सव्वत्सर या संवत्सरे.
2. पढ़ें : फाल्गुन, दि = दिवस के लिए है दिवसे
3. पढ़ें : मुक्तावुप० पुण्डवर्धन = महास्थानगढ़ बोगराजिला उ० बंगाल का दिनाजपुर क्षेत्र इसमें पूर्वी और दक्षिणी बंगाल भी जुट गया। केटिवर्स = देवकोट दिनाजपुर जिला, बंगाल
4. पढ़ें : दत्ते अनुवहमानक०। उपरिक स्थानीय माण्डलिक की उपाधि
5. अधिष्ठान = नगर। प्रशासनिक अधिकारी। अधिकरण = एक पंचायत समिति जिसमें 4 सदस्य होते थे।
6. पाठ : भोग्या
7. पाठ : भीणि, दीयतामित्युत्पत्रे = तेथति प्रतिपाघ
8. पुस्तपाल = हिसाब रखने वाला
9. पढ़े पश्चिमी देशे, Donga was a locality
10. पाठ : दत्तो वा
11. उचित पाठ : भूमिदान-संबऽ्घः श्लोकों भवति and it should be read before खदतां

हिन्दी अर्थान्तर

सम्वत् 124 के फाल्गुन (मास) में 7वें दिन जब परम दैवत परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त पृथ्वीपति थे तब उनके अधीन पुण्ड्रवर्धन भुक्ति का उपरिक चिरातदत्त था और उसके अधीन कोटिवर्ष विषय का उसके द्वारा नियुक्त कुमारामात्य वेत्रवर्मा था। अधिष्ठान के अधिकरण नगरश्रेष्ठि धृतपाल, सार्थवाह बन्धुमित्र, प्रथम कुलिक धृतमित्र, प्रथम कायस्थ शाम्बपाल से कर्पटिक नामक ब्राह्मण ने आवेदन किया कि मेरे अग्निहोत्र के उपयोग के लिए तीन दीनार मूल्य का खिल कुल्यवाय क्षेत्र को स्थायी रूप से तथा चन्द्र, सूर्य और ताराओं तक उपभोगार्थ उसको नीवीधर्मानुसार दिया जाय।

इस प्रकार देने की स्वीकृति पर तीन दीनार में क्रय करके पुस्तपाल ऋषिदत्त, जयनन्दि, विभुदत्त के नाम की पुष्टि पर डोंगा के उत्तर पश्चिम की ओर एक कुल्यवाय दिया गया।

स्वयं दी गई तथा दूसरे द्वारा प्रदत्त भूमि को जो हरता है।
वह विष्ठा की क्रीड़ा होकर पितरों के साथ कष्ट पाता है।।

ऐतिहासिक महत्त्व

आधुनिक बंगालदेश के दिनाजपुर जिले के दामोदारपुर ग्राम से प्राप्त चार ताम्रपत्र अभिलेखों में से यह एक है। तिथि तथा अभिलेख में वर्णित शासक के अनुसार यह कुमारगुप्त (पृथ्वीपति) का है।

इस दानपत्र में तिथि लेखन की जिस पद्धति का प्रयोग किया गया है उसमें सबसे पहले वर्ष, फिर मास और तब दिवस का उल्लेख है। वर्ष के लिए संवत् के बाद पहले सैकड़े का अंक दो शून्यों के साथ (100), फिर दहाई का अंक एक शून्य के साथ (20) और तब इकाई का अंक दिया गया है। लगता है इन तीनों का योग संवत् के लिए किया जाता था। इसके बाद मास का नाम जैसे फाल्गुन और तब दिवस की संख्या के लिए पहले दि० और तब संख्या लिखी जाती थी। यह अभिलेख 124 संवत् के फाल्गुन मास और 7वें दिवस का है। यह ज्ञात नहीं कि 124 किस गणना क्रम में है। गुप्त अभिलेख होने के कारण यह गुप्त संवत् ही होगा तथा इसकी तिथि गु० सं० = 444 ई० रही होगी।

राजा की उपाधि परमदैवत, परमभट्टारक, महाराजाधिराज अंकित है। ये उपाधियाँ इसके पूर्व और बाद के अभिलेखों से भी ज्ञात होती हैं। यह सम्पूर्ण लेख संस्कृत गद्य में है केवल नीचे की दो पंक्तियाँ पद्य में हैं।

इससे ज्ञात होता है कि राज्य प्रान्तों में विभक्त था। प्रान्तों को भुक्ति कहते थे जिसका अधिकारी **ऊपरिक** (राज्यपाल) होता था। प्रान्त में कई जिले होते थे जिन्हें विषय कहा जाता था। जिला का शासक कुमारामात्य था। इसका कार्यालय प्रधान नगर में होता था जिसे 'अधिष्ठानाधिकरण' कहते थे। इसकी सहायता के लिए एक प्रतिनिधि समिति थी जिसमें चार सदस्य थे—नगरश्रेष्ठि, सार्थवाह, प्रथम कुलीक तथा प्रथम कायस्थ। यहाँ पुण्ड्रवर्धन भुक्ति के अन्तर्गत कोटिवर्ष विषय का उल्लेख है जिसका कुमारामात्य था वेत्रवर्मा। इसकी समिति में नगरश्रेष्ठि धृतपाल, सार्थवाह बन्धुमित्र, प्रथम कुलिक धृतिमित्र और प्रथम कायस्थ शाम्बपाल था।

यहाँ **पुस्तपाल** का भी उल्लेख है। यह सम्भवतः लेखाधिकारी या दस्तावेजों का अधिकारी (रेकार्ड कीपर) था। इसके पास भूमि का पूरा विवरण क्र्य-विक्रय के सम्बन्ध में रहता था तथा वह कागज के आधार पर बताता था कि भूमि की प्रकृति किस प्रकार की है? क्या उसे राज्य बेच सकता है? अथवा कर रहित करने में राज्य को कोई विशेष हानि नहीं होगी।

भूमि के सम्बन्ध में ज्ञात होता है कि **श्वेत प्रस्तर भूमि** उसे कहते थे जो सदा बंजर रही हो। **'अप्रहत'** ऐसी भूमि के लिए यहाँ प्रयुक्त है जो कुछ समय से जोती न गई हो। इन शब्दों के प्रयोग से ऐसा लगता है कि भूमि को विविध प्रकारों था, यथा : उपजाऊ, बंजर और बिना जोती हुई भूमि। दूसरे उसका नाम उत्पादन की इकाई पर किया जाता था जैसे कुल्यवाय = 8 द्रोण धान के बदले में प्राप्त भूमि। तीसरे भूमि का विक्रय राज्य की स्वीकृति पर अधिकारियों के आदेशानुसार किया जाता था। चौथे क्रय की इकाई दीनार का उल्लेख एक विशेष प्रकार के मुद्रा चलन को सूचित करता है। **'अप्रदा'** का अर्थ है 'अहस्तान्तरणीय भूमि'। इसका उल्लेख स्पष्ट करता है कि भूमि का एक ऐसा प्रकार भी था जिसे न दूसरे को दी जा सकती थी न बेची जा सकती थी।

उद्योग तथा व्यापार के सम्बन्ध में भी कतिपय जानकारी इससे मिलती है। राज्य की ओर से इसका लेखा-जोखा रखने के लिए प्रधान अधिकारी **प्रथम कायस्थ** था। **सार्थवाह** का उल्लेख एक स्थान से दूसरे स्थान माल ले जाने वाले व्यापारी के लिए हुआ है। कारीगरों का एक संगठन था जिसके प्रधान के लिए **प्रथम कुलिक** शब्द का प्रयोग किया गया है। इससे लगता है कि यहाँ विकसित उद्योग तथा व्यापार था।

दान के सम्बन्ध में यह कहा जाता कि सूर्य, चन्द्र और तारा की स्थिति तक इसे भोगी जाय, स्थायी दान की ओर संकेत देता है।

शासन में निम्न पदाधिकारियों का ज्ञान इस लेख से मिलता है—

(1) उपरिक—राज्यपाल

(2) कुमारामात्य—जिला का शासक

(3) पुस्तपाल—रेकार्डकीपर

(4) नगरश्रेष्ठी—व्यापारियों का मुखिया या नगर का अध्यक्ष

(5) सार्थवाह—विदेशी व्यापार का प्रधान

(6) प्रथम कुलिक—बैंकों के सभा का मुखिया

(7) प्रथम कायस्थ—प्रमुख महासचिव (चीफ सेक्रेट्री) जिसे पाल काल के अभिलेखों में 'ज्येष्ठ कायस्थ' भी कहा गया है।

इस समय भी सचिवालय व्यवस्था थी जिसमें इन विभिन्न अधिकारियों को अलग-अलग काम सौंपा जाता था।

9. कुमारगुप्त प्रथम का दामोदरपुर ताम्रपत्र अभिलेख

गु० सं० 128 (=447 ई०)

(Damodarpur Copper Plate Inscription of Kumar Gupta I)
(G. E. 128 = 447 A. D.)

प्रथम दिशा

1. स[ ] 100 (+) 20 (+)8[1] वैशाख-दि 10(+) 3 पर[मदैव]त-परमभट्टारक-महाराजाधिराज-[श्री] [कुमा*]-

1. बसाक : ई.

2. रगुप्ते पृथिवी-पतौ [तत्पाद]-परिगृहीतस्य पु[ण्ड्र[वर्द्धन-भुक्तावुप[रिक-चि] रात-दत्त[स्य]
3. भोगेना[नुव]ह[मानक]-कोटिव[र्ष]-विषये तन्नियुक्तक-कु[मा]रामात्य-वे[त्र]-
4. वर्म्मणि अधिष्ठाना[धिक]र[णञ्च]नगर[श्रे]ष्ठिधृतिपाल-सार्थवा[हव (ब)न्धुमि]त्र-प्र[थ]-
5. मकुलिकधृतिमित्र-[प्रथ]मकायस्थ[शाम्ब]पाल-पुरो[गे] सम्व्यव[हर]ति[1] [यतः] स...[2]
6. विज्ञापितं अ[र्ह]थ मम प[ञ्च]-महायज्ञ-प्रवर्त्तनायानुवृत्ताप्रदाक्षयनि[वी]-[3]
7. मर्य्यादया दातुमिति (।) एतद्विज्ञाप्यमुपलभ्य पुस्तपा[ल]-रिसिदत्त-जयन[न्दि-वि]-[भुदत्तानामव*]-
8. धारणाय दीयतामित्यु[त्प]न्ने एतस्माद्य[थानुवृत्त]त्त-त्रैदीनारि[क्य-कु]ल्यवापे[न]

दूसरी दिशा

9. [द्व]यमुप[संगृ]ह्य[4] [ऐरा]वता[गो]राज्ये पश्चिण[5]-दिशि पञ्चद्रो[णा]-
10. [म]काः[6] ह[ट्ट]-पानकैश्च[7] सहितेति दत्ताः (।) तदुत्तर-कालं सम्व्यवहारिभिः [धर्म्मवेक्ष्या]नु[म]-
11. न्तव्याः[8] (।) अपि च भूमि-दान सम्बद्धामिमौ श्लोकौ भवतः (।) पूर्व-दत्तां द्विजाति[भ्यो]
12. यत्राद्रक्ष युधिष्ठिर (।)

    महीं महीवतां[9] श्रेष्ठ दानाच्छेयो(ऽ)तुपा(ल)नं (नम्) (।।)।

    वहुभिर्व्वसुधा दत्ता दी[य]ये च
13. पुनः पुनः (।)

    यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलमिति[10] (।।) 2

---

1. पढ़े : संव्य०
2. पढ़े : नीवी० अनुवृत्त = सामान्य चलन
3. पढ़े : नीवी० अनुवृत्त = सामान्य चलन
4. अभिप्राय है : दीनारद्वय०
5. पढ़ें : पश्चिम
6. पढ़ें : ०त्मकाः (भूखण्डाः)
7. पढ़ें : सहिता इति.
8. अनुमन्तव्य = स्वीकृत योग्य
9. प्रायः अभिलेखों में 'म' की जगह अनुस्वार (ं) प्रयोग करते है।
10. उचित पाठ : फलम् ।। इति.

हिन्दी अर्थान्तर

1. संवत् 100 + 20 + 8 (में) वैशाख मास के 13वें दिन परमदैवत परमभट्टारक महाराजाधिराज पृथिवीपति श्री (प्रथम) कुमारगुप्त के शासन काल में जब उनके चरणों (के अनुग्रह) से स्वीकृत उपरिक चिरातदत्त द्वारा पुण्ड्रवर्द्धनभुक्ति निरन्तर समृद्धिशाली थी (अर्थात् उसके शासन में फल फूल रही थी) तथा उसके (अर्थात् चिरातदत्त के) द्वारा नियुक्त कुमारामात्य वेत्रवर्मा द्वारा कोटिवर्ष विषय में नगरश्रेष्ठि धृतिपाल, सार्थवाह वन्धुमित्र, प्रथम कुलिक धृतिमित्र (तथा) प्रथम कायस्थ शाम्बपाल के साथ अधिष्ठान–अधिकरण (= नगर-प्रशासन कार्यालय) चलाया जा रहा था—

5. तब...द्वारा उनको ज्ञापन दिया गया, 'आपको उचित है कि मेरे पञ्चमहा यज्ञ के सम्पादन के लिए (मुझे) प्रचलित (अनुवृत्त) अप्रदाक्षयनीवी धर्मानुसार (मर्यादानुसार) (भूमि) दें।

6. ऐसा ज्ञापन उपलब्ध होने पर तथा लेखाधिकारी रिसिदत्त (= ऋषिदत्त) जयनन्दि (तथा) विभुदत्त की जाँच पड़ताल से ऐसी (भूमि) दी जा सकती है यह निश्चित हो जाने पर उससे (अर्थात् प्रार्थी से) प्रथानुसार प्रति कुल्यवाय तीन दीनार की दर से दो (दीनार) वसूल करके ऐरावत-गोराज्य में पश्चिम दिशा में पाँच द्रोण (भूमि) बाजार तथा आपानक सहित दे दी गई। (ऐसे दान का) पुण्य देखकर (यह दान) भविष्य में प्रबन्धकों द्वारा अनुमोदनीय है।

11. और भूमिदास के सम्बन्ध में ये दो श्लोक भी हैं—हे राजाओं में श्रेष्ठ युधिष्ठिर। द्विजातियों को पूर्वकाल में प्रदत्त भूमि की यत्नपूर्वक रक्षा करो (क्योंकि) (भूमि के) दान में इसका अनुपालन श्रेष्ठ है।। 1।। वसुधा (अर्थात् भूमि) पुनः-पुनः बहुतों के द्वारा दी गई है और दी जा रही है। जब जिसकी-जिसकी भूमि (होती है) तब उसको-उसको फल मिलता है। इति।। 3।।

ऐतिहासिक महत्त्व

आधुनिक बंगालदेश के दिनाजपुर जिले के दामोदरपुर से संस्कृत गद्य में प्राप्त कुमारगुप्त के शासन का यह ताम्रपत्र है। इसमें भूमिदान सम्बन्धी महाभारत के दो श्लोक उद्धृत हैं। इनका उद्देश्य है किसी ब्राह्मण के पंचमहायज्ञ की व्यवस्था के लिए राज्य से दो दीनार में पाँच द्रोण भूमि क्री खरीद करना।

इसमें भी लगभग उन्हीं अधिकारियों का उल्लेख है जिनका गु॰ सं॰ 124 के दानपत्र में किया गया है।

यहाँ पञ्चमहायज्ञों का उल्लेख है। मनु के अनुसार ये पंचपातकों के निवारणार्थ किए जाते थे। उनके विवरण के अनुसार पाँच पातक हैं—चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ऊखल तथा घड़ा जिनसे घर में हिंसा होती है। पाँच महायज्ञों को मनु ने गिनाया है—ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ तथा अतिथियज्ञ।

'हट्टापानकैः' शब्द का उल्लेख यहाँ हुआ है। इसका आशय सिंचाई से है। यह साहित्य में वर्णित अरगट्ट है। टामस तथा डा॰ लल्लन जी गोपाल ने इसे पर्शियनह्वील माना है जिसे आज हम रहट का नाम दतेते हैं। लगता है यह उस समय के सिंचाई की प्रचलित विधि रही होगी।

यहाँ काल गणना का उल्लेख उसी प्रकार किया गया है जैसे दूसरे गुप्त अभिलेखों में।

10. कुमारगुप्त प्रथम तथा बन्धुवर्मनकालीन मन्दसोर प्रस्तर अभिलेख
(Mandsor Stone Inscription of the time of Kumar Gupta I & Bandhuverman)

स्थान : मन्दसोर, मध्य प्रदेश

भाषा : संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी

काल : मालव संवत् 493 तथा 529 (= 346 एवं 473 ई॰)

विषय : कुमारगुप्त प्रथम के गोप्ता बन्धुवर्मन् के दशपुर पट्टवाय-श्रेणी द्वारा सूर्य मन्दिर का निर्माण

मूल पाठ

1. [सिद्धम् ॥]
[यो] [वृत्यर्थ]मुपास्यते सुरगणै[स्सिद्धैश्च] सिद्धयर्त्थिभि-
र्ध्यानैकाग्र-परैर्व्विधेय-विषयैर्म्मोक्षार्त्थिभिर्य्योगिभिः।
भक्तया तीव्र-तपोधनैश्च मुनिभिश्शाप-प्रसाद-क्षमै-
र्हेतुर्य्यो जगतः[1] क्षयाभ्युददयो ⌣ पायात्सवो भास्करः।(।*) 1
तत्व-ज्ञान-विदो(ऽ)पि यस्य न विदुर्ब्रह्मर्ष-
2. यो(ऽ)भ्युद्यता-
× कृत्स्नं यश्च गभस्तिभिः प्रवृसृतै × पु[ष्ण]ाति लोक-त्रयम्।
ग[न्ध]र्व्वामर-सिद्ध-किन्नर-नरैस्संस्तूयते(ऽ)भ्युत्थितो
भक्तेभ्यश्च ददाति यो(ऽ)भिलषितं तस्मै सवित्रे नमः।(।) 2
य ⌣ [प्र]त्यहं प्रतिविभात्युदवाचलेन्द्र-
विस्तीणर्ण्ण-तुङ्ग-शिखरस्खलितांशुजालः (।)
क्षीबाङ्गना-
3. जन-कपोतलाभिताम्र-
⌣ पायात्स वस्सु[कि]रणाभ[रणो] विवस्वान्। (।) 3
कुसुमभराननततरुवर-देवकुल-सभा-विहार-रमणियात्[2]।
लाट-विषयान्नगावृत-शैळाज्जगति प्रथित-शिल्पाः।( ) 4
ते देश-पार्त्थिवगुणापहृताः प्रकाश-
मद्ध्वादिजान्यविरलान्यसुखा–
4. न्यपास्य।
जातादरा दशपुरं[3] प्रथमं मनोभि-
रन्वागतास्ससुत-बन्धु-जनास्समेत्य॥ 5

---

1. पढ़ें : तत्त्व
2. पढ़ें : रमणीयात्, लाट आधुनिक गुजरात प्रान्त में सूरत जिले में है जो एक प्रसिद्ध नगर पहले था।
3. आधुनिक मन्दसोर

मत्तेभ-गण्ड-तट-विच्युत-दान-बिन्दु-
सिक्तोपलाचळ-सहस्र-विभूषाणायाः[1] (।)
पुष्पावनम्र-तरु-षण्ड[2]-वतंसकाया
भूमे ⌣ परन्तिलक-भूतमिदं क्रमेण ।। 6
तटोत्थ-वृक्ष-च्युत-

5. नैक-पुष्प-
विचित्र-तीरान्त-जलानि भान्ति ।
प्रफुल्ल-पद्माभरणानि यत्र
सरांसि कारण्डव[3]-संकुलानि ।। 7
विलोल-वीची-चळितारविन्द-
पतद्रजः-पिञ्जरितैश्च हंसैः ।
स्व-केसरोदार-भरावभुग्नैः
क्वचित्सरांस्यम्बुरुहैश्च भान्ति ।(।) 8
स्व-पुष्प-भारावनतैर्न्नगेन्द्रै-
र्मद —

6. प्रगल्भालि-कुल-स्वनैश्च ।
अजस्रगाभिश्च पुराङ्गनाभि-
र्व्वनानि यस्मिन्समलंकृतानि ।। 9
चलत्पताकान्यबला-सनाथा-
न्यत्यर्थशुक्लान्यधिकोन्नतानि ।
तडिल्लता-चित्र-सिताभ्र-कूट-
तुल्योपमानानि गृहाणि यत्र ।। 10
कैलास-तुङ्ग-शिखर-प्रतिमानि चान्या-
न्याभान्ति दीर्ग्घ-बलभी-

7. नि सवेदिकानि ।
गान्धर्व्व-शब्द-मुखरानि[4] निविष्ट-चित्र-
कर्म्माणि लोल-कदली-वन-शोभितानि ।। 11
प्रासाद-मालाभिरलंकृतानि
धरां विदार्य्यैव समुत्थितानि ।
विमान-माला-सदृशानि यत्र
गृहाणि पूर्ण्णेन्दु-करामलानि ।। 12
यद्भात्यभिरम्य-सरिद्वयेन[5] चपलोर्म्मिणा समुपगूढं[6] (।)

1. पढ़ें : विभूषणायाः.
2. फ्लीट : मण्ड; भण्डारकर :- खण्ड
3. करणादव एक प्रकार का बत्तख
4. पढ़ें : मुखराणि,
5. पढ़ें : सरिद्वयेन.
6. उचित पाठ : गूढम

8. रहसि कुच-शालिनोभ्यां प्रीतिरतिभ्यां स्मराङ्गमिव ॥ 18
सत्य-[क्षमा]-दम-शम-व्रत-शौच-धर्म्य-
[स्वाद्धया]य-वृत्त-विनय-स्थिति-बुद्धयपेतैः ।
विद्या-तपो-निधिभिरस्मयितैश्च विप्रै-
र्य्यद्भ्राजते ग्रहगणै खमिव प्रदीप्तैः ॥ 14
अथ समेत्य निरन्तर-सङ्गतै-
रहरहः-प्रविजृम्भित-

9. सौहृदाः (।)
नृपतिभिस्सुतवत्प्रतिम[ा]निताः
प्रमुदिता न्यवसन्त सुखं पुरे ॥ 15
श्रवण-[सु]भग[ं] ध[ा]नुर्व्वे[द्यं] दृढं परिनिष्ठिताः
सुचरित-शतासङ्गा × केचिद्विचित्त-कथाविदः ।
विनय-निभृतास्सम्यग्धर्म्म-प्रसङ्ग-परायणा-
× प्रियमपरुषं पत्थ्यं चान्ये क्षमा बहु भाषितुं(तुम्) ॥ 16

10. केचित्स्व-कर्म्मण्गँधिकास्तथान्यै-
र्व्विज्ञायते ग्ज्योतिममात्मवद्भिः[1] ।
[अद्यापि] चान्ये समर-प्रगल्भा-
[:कु]र्व्वन्त्यरीणामहितं प्रसह्य ।(।) 17
प्राज्ञा मनोज्ञ-वधवः प्रथितोरुवंशा
वंशानुरूप-चरिताभरणास्तथान्ये ।
सत्यव्रताः प्रणयिनामुपकार-दक्षा
विस्रम्भ-

11. [पूर्व्व]मपरे दृढ-सौहृदाश्च ॥ 18
विजित-विषय-सङ्गैर्द्धर्म्म-शीलैस्तथान्यै-
[र्मृ]दुभि]रधि]क-स[त्वैर्ल्लोकयात्रा]मरैश्च[2] ।
स्व-कुल-तिलक-भूतैर्मुक्तरागैरुदारै-
रधिकमभि[वि]भाति श्रेणिरेवंप्रकारैः ॥ 19[3]
तारुण्य-कान्त्युपचितो(ऽ)पि सुवर्ण्ण-हार-
तांबूल-पुष्प-विधिना सम-

---

1. पढ़ें : ज्योतिष०
2. पढ़ें : सत्त्वै
3. यहाँ पश्चिमी भारतमें जातीय बंधन ढीले पड़ते दीखते हैं, तभी लाट देश के सिल्क बुननेवाले जब मन्दसौर (दशपुर) में बसे तो वहाँ उन्होंने इसे छोड़ भिन्न-भिन्न व्यवसाय ग्रहण कर लिया जैसे कथाकार, ज्योतिषी, योद्धा, संन्यांसी आदि।

12. [लंकृ]तो(ऽ)पि।
नारी-जनः श्रियमुपैति[1] न तावदग्रयां
यावन्न पट्टमय-वस्त्र-[यु]गानि धत्ते॥ 20
स्पर्श[वता[2] वर्ण्णा]न्तर-विभाग-चित्रेण नेत्र-सुभगेन [।]
थैस्सकलमिदं क्षितितलमलकृतं पट्टवस्त्रेण॥ 21
विद्याधरी-रुचिर-पल्लव-कर्ण्णपूर-
वातेरिता[स्थि]रतरं प्रविचिन्त्य

13. [लो]कं।
मानुष्यमर्थ-निचयांश्च तथा विशालां
[स्ते]षां शुभा [म]ति[रभूद]चला ततस्तु [॥] 22
चतु[स्समुद्रान्त]-विलोल-मेखलां
सुमेरु-कैलास-वृहत्पयोधराम्।
वनान्त-वान्त-स्फुट-पुष्प-हासिनीं
कुमारगुप्ते प्रिथिवीं[3] प्रशासति॥ 23
समान-धीश्शुक्र-वृहस्स्पतिभ्यां
ललामभूतो भुवि

14. पार्त्थिवानां।
रणेषु यः पार्त्थ-समानकर्म्मा
बबूव गोप्ता नृप-विश्ववर्म्मा॥ 24
दीनानुकंपन-परः कृपणार्त्त-वर्ग्ग-
सन्ध[ा]प्रदो(ऽ)धिकदयालुरनाथ-नाथः।
[क]ल्पद्रुमः प्रणयिनामभयं प्रदश्च[4]
भीतस्य यो जनपदस्य च बन्धुरासीत्॥ २५
त्स्यात्मजः स्थैर्य्य-नयोपपन्नो
ब[न्धु]-प्रियो

15. बन्धुरिव प्रजानां।
बंध्वर्त्ति-हर्त्ता नृप-बन्धुवर्मा
द्विड्दृस-पक्ष-क्षपणैक[द]क्षः॥ 26
कान्तो युवा रण-पटुर्व्विनयान्वितश्च
राजापि सन्नुपसृतो न मदैः स्मयाद्यैः।

---

1. फ्लीट ने इसे दग्रा पढ़ा है।
2. जगन्नाथ का पाठ : स्पर्शाजात
3. पढ़ें : पृथिवीं
4. पढ़ें : भय० प्रदश्च

श्रृङ्गार-मूर्त्तिरभिभात्यनलंकृतो(ऽ)पि
रूपेण यः×कुसुमचाप इव द्वितीयः ॥ 27
वैधव्य-तीव्र-व्यसन-क्षतानां

16. स्म्रि यमद्याप्यरि-सुन्दरीणां।
भयाद्भवत्यायतलोचनानां
धनस्तनायासकरः प्रकम्पः ॥ 28
तस्मिन्नेव क्षितिपति-व्रिषे बंधुवर्म्मण्युदारे
सम्यक्स्फीतं दशपुरमिदं पालयत्युन्नतांसे।[1]
[शि]ल्पावसैर्द्धन-समुदयैः पट्टवा[यैरु]दारं
श्रे[णीभूतै]र्भवनमतुलं कारितं

17. दीप्तरश्मेः ॥ 29
विस्तीर्ण्ण-तुङ्ग-शिखरं शिखरि-प्रकाश-
मम्युद्रतेन्द्धमल-रश्मि-कलाप-[गौ]रं।
यद्भाति पश्चिम-पुरस्य निविष्ट-कान्त-
चूडामणि-प्रतिसमन्नयनाभिरामं[2] ॥30
रामा-संनाथ-[र]चने दरभास्करांशु-
वह्नि-प्रताप-सुभगे जललीनमीने।
चन्द्रांशु-हर्म्यतल-

18. चन्दन-तालवृन्त
हारोपभोध[3]-रहिते हिम-दग्ध-पद्मे ॥ 31
रोद्ध्र-प्रियंगुतरु-कुन्दलता-विकोश–
पुष्पा[सब]-प्रमु[दि]तालि-कलाभिरामे।
काले तुषार-कण-कर्क्कश-शीत-वात
वेग-प्रनृत्त-लवलीनगणैकशाखे ॥ 32
स्मर-वशग-तरुणजन-वल्लभाङ्गना-विपुलकान्तपीनोरु-

19. स्तन-जघन-घनालिङ्गन-निर्भर्त्सित-तुहिन-हिम-पाते ॥ 33
[मा]लवानां गण-स्थित्या या[ते] शत-चतुष्टये।
त्रिनवत्यधिके(ऽ)ब्दानामृतौ सेव्य-घनस्तने[4] ॥34
सहस्यमास-शुक्ल्य प्रशस्ते(ऽ)ह्नि त्रयोदशे।
मङ्गलाचार-विधिना प्रासादो(ऽ)यं निवेशितः ॥ 35
बहुना समतीतेन

---

1. इससे स्पष्ट है कि दशपुर वन्धुवर्मन की राजधानी थी।
2. पढ़ें : रामम्. पढ़ें : रमं. चूँकि दशपुर पश्चिम भारत का प्रसिद्ध नगर था इससे पश्चिमपुत्र कहते थे।
3. पढ़ें : भोग
4. फ्लीट ०खने. स्थित्या = परम्परानुसार।

20. कालेनान्यैश्च पार्थिवः।
व्यशीर्य्यतैकदेशो(ऽ)स्य भवनस्य ततो(ऽ)धुना॥ 36[1]
स्वयशो-[व्र)द्धये[2] सर्व्वमत्युदा]रमुदारया।
संस्कारितमिदं भूयः [श्रेण्या] भानुमतो गृहं॥ 37
अत्युन्नतमवदातं नभः स्पृशन्निव[3] मनोहरैश्शिखरैः।
शशि-भान्वोरभ्युदयेष्वमल-मयूखायतन-
21. भूतं॥ 38
वत्सर-शतेषु पंचसु विशंत्यधिकेषु नवसु चाब्देषु।
यातेष्वभिरम्य-[तप]स्यामास[4]-शुक्ल-द्वितीयायां॥ 39
स्पष्टैरशोकतरु-केतक-सिंदुवार-
लोलातिमुक्तकलता-मदयंतिकानां।
पुष्पोद्गमैरभिनवैरधिगम्य नून-
मैक्यं विजृंभितशरे हरपूत-देहे।। 40
22. मधुपान-मुदित-मधुकर-कुलोपगीत-नगनैक[5] पृथुशाखे।
काले नव-कुसुमोद्गम-दंतुर-कांत-प्रचुर-रोद्ग्रे॥ 41
शशिनेव नभो विमलं कौ[स्तु]भ-मणिनेव शार्ङ्गिणो वक्षः।
भवन-वरेण तथेदं पुरमखिलमलंकृतमुदारं॥ 42
अमलिन-शशि-
23. लेखा-दंतुरं पिङ्गलानां
परिवहति समूहं यावदीशो जटानां(नाम्)।
वि[कच[6]—क]मल-मालामंस-सक्तां च शार्ङ्गी
भवनमिदमुदारं शाश्वतन्तावदस्तु॥ 43
श्रेणयादेशेन भक्तया च कारितं भवनं रवेः।
पूर्व्वा[7] चेयं प्रयत्नेन रचिता वत्सभट्टिना॥ 44
24. स्वस्ति कर्तृ-लेखक-वाचक-श्रोतृभ्यः॥ सिद्धिरस्तु॥

---

1. फ्लीट के अनुसार दूसरे राजाओं के समय मरम्मत के अभाव में मन्दिर का भाग गिर गया था। दशरथ शर्मा का मानना है कि हूणों के आक्रमण के कारण मन्दिर का भाग गिर गया था। डा० सरकार ने कहा है कि विरोधी शासकों के आक्रमण से मन्दिर का भाग गिरा था न कि हूणों के आक्रमण के कारण।
2. पढ़ें : वृद्धये
3. फ्लीट : नभः स्पृशतीय पर उचित नहीं है। पढ़ें : स्पृशत्त्विव.
4. पढ़ें : विंशत्य०, लपस्य = फाल्गुन
5. पढ़ें : वगणैक
6. फ्लीट : विकट
7. प्रशस्ति के लिए यहाँ प्रयुक्त है। पूर्वा = ऊपर का। छिब्बर के अनुसार Parasati के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सरकार के अनुसार इसका अर्थ है प्रशान्ति या तिथि।

हिन्दी अर्थान्तर

1.-2. जो सूर्य भगवान संसार के क्षय और उन्नति के कारण है वह मेरी रक्षा करें। देवता लोग अपनी रक्षा के लिए जिसकी वन्दना करते हैं, जिसकी उपासना सिद्ध अपनी सिद्धियों को जाग्रत करने के लिए करते हैं, योगी जो सदा ध्यान में निमग्न रहते हैं तथा सांसारिक विषयों से दूर रहते हैं वे भी उत्सुकता से जिसकी पूजा करते हैं, मुनि जो तीव्र तपस्या के धनी हैं तथा उनमें क्षमता है वह शाप तथा वरदान दे सके वे भी इस सूर्य देवता की सदा भक्ति पूर्वक उपासना करते हैं। तत्त्व ज्ञान के मर्मज्ञ ब्रह्मर्षि कठिन यत्न करने के पश्चात् भी जिसे ठीक-ठीक समझने में असमर्थ सिद्ध हुए हैं, भगवान सूर्य जो अपनी किरणों को चारों ओर फैलाकर सम्पूर्ण विश्व का पोषण करते हैं, जिनके उदय होते ही गंधर्व, देवता, सिद्ध, किन्नर एवं मानव स्तुति करने लगते हैं, जो अपने भक्तों को उनकी इच्छा की पूर्ति करते हैं उसी सविता को नमस्कार है।

3-7. लाट (गुजरात) नामक स्थान पर्वतों से मुक्त तथा हरी-भरी वनस्पतियों से भरा था। वहाँ फूलों से गदरे हुए डालियों वाले वृक्ष थे तथा वह स्थान देवगृह, सभाभवन और मन्दिरों के कारण अत्यन्त आकर्षक था। वहीं से विश्वविख्यात तक्षणकला प्रवीण दशपुर में आए थे। पहले वे अकेले आए परन्तु पीछे अपने बन्धु-बान्धवों सहित वहाँ पहुँचे। मार्ग में होने वाले कष्ट और थकान को उन्होंने भी महत्त्व नहीं दिया, उस स्थान के गुणों के कारण। धीरे-धीरे यह नगर संसार में प्रसिद्ध बना। इसकी धरती की शोभा पुष्पित वृक्ष शाखाओं से थी जो पृथ्वी पर झुकी थीं। उसके पर्वत मत्त गजों के मद धारा के सुवर्ण से सिंचित होकर उसकी शोभा से अत्यन्त शोभायमान होने लगते थे। यहाँ के सरोवरों में तैरते हुए करण्डव खिले कमल प्रसूनों से सुशोभित हो उठते थे। किनारे के वृक्षों से झड़े हुए फूलों से किनारे का जल विचित्र शोभा से युक्त होता था। इन तालाबों में हंस तैरते रहते थे जो लहरों के झकझोरे से गिरते हुए कमल पुष्प द्वारा भरे रंग के लगते थे। इनमें खिले हुए कमल अपनी ही पंखड़ियों के भार से बोझित दिखायी पड़ते थे।

यहाँ की वाटिकाएँ पुरांगनाओं की मन्द चाल से शोभा पा रही थीं। इसके पेड़ अपने फूलों के भार से झुके थे तथा उनकी शोभा उनके फूलों के रस पान करने वाले भौंरों के गुञ्जार से होती थी। यहाँ के घरों के पताके वायु वेग से फहराते थे, इसकी चोटियाँ ऊँची थीं तथा सुन्दर स्त्रियों द्वारा शोभायमान थीं। इसके ऊँचे शिखर बर्फ की ठकी हुई चोटियों के समान सुशोभित थे तथा इसकी छटा बिजली की चमक की तरह सुन्दर लगती थी। दूसरे घर भी बहुत ऊँचे थे जैसे कैलाश पर्वत की चोटी। उनमें केले के पौधे सुशोभित थे। वहाँ लता कुञ्ज थे तथा वेदिकाएँ थीं जो उसको शोभायमान बना रहे थे। उनमें चित्रशालाएँ थीं तथा वे संगीत के द्वारा झंकृत होती थीं। कई मंजिले ये भवन महल प्रतीत होते थे। लगते थे मानो धरती की छाती चीर कर वे निकले हों। वे घर वैसे ही श्वेत थे जैसे आकाश में बने हुए भवन। दो नदियों के लहराते जल से वह नगर घिरा था। लगता था ये दोनों पत्नियाँ कामदेव की प्रीति एवं रति हों जो कुचों से उनका आलिंगन कर रही हों। वह नगर सत्य, क्षमा, आत्मनियन्त्रण, शान्ति, ब्रतधारण, पवित्रता, धैर्य, स्वाध्याय, सदाचार, दृढ़निश्चय, विद्यायुक्त, तप प्रधान तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा उसी प्रकार सुशोभित था जिस प्रकार ग्रहों के प्रकाश से आकाश मण्डल ज्योतित हो उठता है।

8-10. इस नगर में मित्र समुदाय के श्रीवृद्धि एवं पुत्र की तरह आदृत होने से वे सुखपर रहते हुए सामाजिक जीवन-यापन करते थे। धुनिर्वद्या में कुशल उनमें से कुछ कलाकारों के धनुष की डोरी

चढ़ाने का शब्द कानों को सुख पहुँचाता था। वहाँ के निवासी कुछ सुन्दर आचरण वाले थे, कुछ सुन्दर कथाओं के कथाकार थे, कुछ नम्र थे तथा कुछ धर्मपरायण थे, कुछ प्रिय, कोमल तथा लाभकर वचनों के सुनने में कुशल थे, कुछ क्षमायुक्त थे। उनमें से कुछ लोग रेशमी वस्त्र बनाने की कला में निपुण थे, कुछ ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता थे, कुछ युद्ध में निपुण थे तथा शत्रुओं के नाश में सक्षम थे। वे कलाकार ऊँचे वंश के थे। उनकी स्त्रियां परम सुन्दरी थीं तथा उनका आचरण कुल के अनुरूप था। वे सत्य बोलने वाले, प्रेमयुक्त, उपकार में तत्पर तथा मित्रों से मैत्री सम्बन्ध रखने वाले थे। शिल्पियों की श्रेणी के सदस्य, विषयों का परित्याग करने वाले, धर्म में निपुण, मृदु व्यवहार वाले, देवताओं के समान, राग-द्वेष से मुक्त, उदार तथा श्रेष्ठ कुलों के थे।

11-13. बिना रेशमी वस्त्र पहने नारियाँ चाहे कितनी ही सुन्दर हों, युवती हों, सुवर्ण हार, पुष्प तथा माला धारण करने वाली हों अपने प्रियतम से मिलने नहीं जाती थीं। उन कारीगरों से वह नगर सुशोभित था। ऐसा लगता था मानो वहीं आकाश और धरती का सुखद स्पर्श प्राप्त होता हो तथा अनेक रंगों के द्वारा सुन्दर चित्रित तथा नेत्र सुखद रेशमी वस्त्र से अलंकृत हो रहा हो। उन कलाकारों की बुद्धि मानव-जीवन और अतुलित धन संचय को क्षणभंगुर समझने के कारण जिस प्रकार हवा के झोके से विद्याधरों के पल्लव कर्णपूर उड़ जाते हैं, स्थिर हो गई थी। उस समय इस धरती का स्वामी कुमारगुप्त था। इस धरती के चारों ओर समुद्र मेखला की तरह घेरे हुए था तथा कैलाश और सुमेरू पर्वत ऐसे उन्नत थे जैसे उन्नत पयोधर होते हैं। उनको वनों से जो फूल गिरते थे लगता था मानो वे उनके उपहार को व्यक्त कर रहे हों। उस समय प्राणियों में अग्रगण्य, पार्थ के समान युद्ध क्षेत्र में बलवान तथा शुक्र एवं वृहस्पति के समान बुद्धिमान विश्वकर्मा नामक गोप्ता एक अधिकारी था। वह गरीबों के साध दया का व्यवहार करता था, दुःखी एवं असहायों का आश्रयदाता था। वह दयालु और अनाथों का नाथ था, लोगों की इच्छाएँ वह उसी प्रकार पूरी करता था जैसे कल्प-वृक्ष हो। वह डरे हुए लोगों को साहस देता था तथा सभी पुरवासियों का बन्धु था।

14-16. इसका लड़का वन्धुवर्मा था जो राजा बना। वह स्थिर, विनम्र, बन्धुप्रिय, प्रजातिहकारी, बन्धु दुःखहर्ता तथा शत्रु विनाशक था। वह विनयी, योद्धा, युवा, राजा होकर भी दुष्प्रवृत्तियों से वंचित था। बिना किसी अलंकरण के भी वह शृंगार का स्वरूप था तथा कामदेव के समान था। उसके रूप के स्मरण मात्र से ही शत्रुओं की विधवा स्त्रियों के कुचें प्रकंपित हो उठती थीं। बन्धुवर्मा जो छितिपालों में श्रेष्ठ एवं उदार था उसके राज्यकाल में दशपुर नगर अत्यन्त, समृद्ध तथा समुन्नत था। वस्त्र उद्योगियों की श्रेणी ने अपने वस्त्र उद्योग से प्राप्त धन द्वारा एक अत्यन्त सुन्दर सूर्य मन्दिर का निर्माण किया था जिसका ऊँचा शिखर कैलाश पर्वत के समान था। चन्द्रमा के श्वेत प्रभाव में वह धवल रंग का चमकने लगता था। इसी शोभा के कारण पश्चिमी भारत का यह सुन्दर मन्दिर सर्वश्रेष्ठ माना जाता था।

17-18. जब हिमपात होने लगता है उस समय भी कामी युवक सुन्दरियों के कुचों तथा प्रजजन स्थल के घर्षण द्वारा सर्दी का अनुभव नहीं करते, उस समय सूर्य की किरणों तथा अग्नि की उष्णता अच्छी लगती है तथा हिमपात से कमल झुलसने लगते हैं तथा चन्दन लेप करने, पंखा झलने एवं कण्ठाभरण की आवश्यकता नहीं रहती, यह भी अच्छा नहीं लगता कि महलों की छतों पर बैठकर चन्द्रमा की शोभा का अवलोकन किया जाय। उस समय मछलियाँ भी गहरे जल में पैठ जाती हैं तथा भौरें भी रोद्ध्र प्रियंगु आदि वृक्षों तथा चमेली आदि पुष्पों पर गुंजार नहीं करते। उस समय

हिमकण से ठंढी हवाएँ चलती हैं तथा वृक्षों की शाखाएँ झूमती रहती हैं। 493 मालव संवत् के बीतने पर जिस ऋतु में प्रियाओं के उभरे स्तनों का आनन्द उठाना सुकर होता है—उस पौष मास के शुक्ल-पक्ष के त्रयोदशी के दिन पट्टावाय श्रेणी द्वारा मंगलाचार के साथ सूर्य मन्दिर का निर्माण किया गया।

19-23. जब कई राजाओं का राज्य समाप्त हो चुका था, बहुत दिन बीत चुका था, उस समय मन्दिर का एक अंग भग्न हो चुका था। उस समय इसी श्रेणी के लोगों ने उदारतापूर्वक उस भग्न मन्दिर का पुनर्निर्माण कराया। इसकी मनोहर तथा ऊँची चोटियाँ गगनचुम्बी थीं। सूर्य तथा चन्द्र किरणे यहीं आकर टिकती थीं। मालव संवत् के 592 वर्ष बीतने पर अभिरम्य तपस मास (फरवरी-मार्च) के शुक्ल पक्ष की द्वितिया को, जबकि अशोक, केतकी, सिन्दुवार एवं अतिमुक्तक लता के फूलों के साथ शंकर द्वारा विदग्धा कामदेव अपने वाणों को संयुक्त कर उसकी संख्या बढ़ा लेते हैं, जब भ्रमरों के गुञ्जार से जो मधुपान से प्रमत्त रहते हैं वृक्षों की शोभा बढ़ जाती है तथा अधिक संख्या में रोध्र वृक्ष में कुसुम खिलकर झूमने लगते हैं, उस समय चन्द्रमा के प्रकाश में आकाश स्वच्छ होता है तथा कौस्तुभ मणि से विष्णु का वक्ष सुशोभित हो उठता है। उस इस सुन्दर सूर्य मन्दिर द्वारा सम्पूर्ण नगर सुशोभित रहेगा। यह सूर्य मन्दिर तब तक स्थायी रूप से स्थित रहे जब तक शंकर के भाल पर चन्द्रमा विराजमान रहे तथा उनके सिर पर जटा रहे और विष्णु भगवान की ग्रीवा में कमल माला शोभायमान हो। वस्त्रनिर्माता (पट्टवाय) श्रेणी के आदेशानुसार यह सूर्य मन्दिर निर्मित हुआ। इस प्रशस्ति की लिपि बड़े ही परिश्रम से वत्समाहि ने की कि इसके रचयिता, पाठक तथा श्रोताओं का शुभ हो।

ऐतिहासिक महत्त्व

यह लेख शिवना नदी के किनारे मध्य प्रदेश के मन्दसरे जिले में महादेव घाट की दीवाल में लगे एक काले प्रस्तर खण्ड पर उत्कीर्ण है। इसी स्थान का प्राचीन नाम दशपुर था जिसे आज मन्ददसोर भी कहते हैं। इसमें मालव संवत 493 तथा 529 का उल्लेख है तथा कुमारगुप्त और उसके गोप्ता विश्वकर्मा एवं उसके पुत्र बन्धुवर्मा का नाम आया है। यह एक धर्मपरक लेख है जिसमें सूर्यमन्दिर के दशपुर में निर्माण का वर्णन है। यह 44 श्लोकों का है जो ऐतिहासिक सामग्री होते हुए भी संस्कृत साहित्य की अक्षुण्णनिधि है।

इसे सूर्य की स्तुति से प्रारम्भ किया गया है। फिर गुजरात के लाट विषय का मनोहारी वर्णन है जहाँ से सिल्क के वस्त्र बनाने की कला में निपुण कलाकार पहले अकेले फिर सपरिवार मालवा के दशपुर नगर में आये। इस नगर का बड़ा ही कलात्मक विवरण लगभग सात श्लोकों में प्रस्तुत है जिसमें यहाँ के झील, उद्यान, नदियों, निवासियों आदि का वर्णन है। फिर शिल्पकारों के विभिन्न गुणों और व्यवसायों की चर्चा है जो किसी धार्मिक कल्याणकारी कार्य के लिए व्यग्र थे, जब शासक कुमारगुप्त था तथा स्थानीय शासक विश्वकर्मा और उसका पुत्र वन्धुवर्मा था। बन्धुवर्मा के काल में ही सिल्क बुनकरों की श्रेणी द्वारा मा० सं० 493 में सूर्य मन्दिर बनाया गया था। इसका एक अंश कुछ दिनों बाद टूट गया था जिसकी मरम्मत इसी श्रेणी द्वारा पुनः मा० सं० 529 में की गई। पुनः इस मन्दिर की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए इसके चिरस्थायित्व की कामना की गई है तथा अन्त में इसके रचनाकार वत्सभट्टी का नामोल्लेख है। पर उत्कीर्णक का नाम यहाँ नहीं दिया गया है।

प्रस्तुत अभिलेख से निम्नांकित ऐतिहासिक तथ्य प्रकाश में आते हैं—

(1) यह मध्य प्रदेश के पश्चिमी मालवा के मन्दसोर नगर से प्राप्त हुआ है। मंदसोर से अनेक

अभिलेख मिले हैं। लगता है प्राचीन भारत का यह एक महत्त्वपूर्ण नगर था। यह लेख गुप्त ब्राह्मी लिपि में लिखा है पर इसके अक्षर उत्तरी शैली के अक्षरों से भिन्न दक्षिणी शैली के हैं।

इसमें दशपुर के सूर्य मन्दिर के निर्माण और पुनर्निर्माण का उल्लेख है। अन्य धार्मिक सम्प्रदायों के साथ सूर्योपासना यहाँ अत्यन्त व्यापक थी। तभी कहा गया है '...जगति × क्षमाभ्युदययो * पायात्सवों भास्कर।।' तथा 'भक्तेभ्यश्च ददाति योऽभिलषित तस्मै सवित्रे नमः।।' इसकी पुष्टि इन्दौर के स्कन्दगुप्तकालीन ताम्रलेख से होती है जो सूर्य की अर्चना से प्रारम्भ होता है। फिर उच्छकल्प महाराज सर्वनाग द्वारा सूर्यमन्दिर के दान का उल्लेख तथा हूण शासक मिहिरकुल द्वारा अपने शासन के 15वें वर्ष में सूर्य मन्दिर के निर्माण का ज्ञान देता है।

यह विचारणीय है कि ये सारे विवरण पश्चिमी भारत से ही सम्बन्धित क्यों है ? पुराणों से ज्ञात होता है कि शकद्वीप (पूर्वी ईरान) से सूर्योपासना शाम्ब के साथ मग ब्राह्मणों द्वारा भारत मे आयी। पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार कृष्ण के भ्राता शाम्ब के कुष्ठरोग निवारण के लिए मग ब्राह्मण भारत लाये गये थे जो यहाँ बसे और सूर्यपूजा प्रारम्भ किए। इसी से सूर्य प्रतिमा के वेश को उदीच्यवेश कहा जाता है। इन्हीं मगों द्वारा सूर्य की मूर्ति स्थापित कराने का उल्लेख वृहत्संहिता में है। ये मग ईरानी ब्राह्मण थे। अतः सूर्यपूजा का जो स्वरूप गुप्त काल में था वह ईरानी था। डॉ० भण्डारकर के अनुसार वैदिक काल से ही यद्यपि सूर्य पूजा भारत में प्रचलित थी पर इसका गुप्तकालीन स्वरूप पूर्णतया विदेशी है जिसका प्रारम्भ शकों के आने के बाद हुआ। इसी से भारत में ब्राह्मणों का एक वर्ग शाकद्वीपी (शकलद्वीपी) कहलाता है क्योंकि ये इन्हीं मगों की सन्तति हैं जो शकद्वीप से आये और भारतभूमि में बसे हैं।

(2) कुमारगुप्त के समय के भारत की धार्मिक अवस्था का भी ज्ञान प्राप्त होता है।'.....देवकुल-सभा-विहार-रमणीयात' के उल्लेख से लगता है कि विभिन्न देवताओं की पूजा यहाँ प्रचलित थी तभी देवकुल [विभिन्न देवताओं के मन्दिरों] की चर्चा की गई है। इसकी उपाधि परमभागवत है। यह लेख महादेव घाट पर मिला है जो शैव• उपासना की ओर इंगित करता है। वह स्वयं कार्तिकेय का पूजक था क्योंकि उसके सिक्कों पर मयूर की आकृतियाँ बहुतायत से मिली हैं। विहार का होना बौद्ध और जैन धर्म के प्रति सद्भाव को व्यक्त करता है। उसके सिक्कों पर अंकित आकृतियाँ भी इस तथ्य को पुष्ट करती हैं कि वह एक धर्म सहिष्णु शासक था।

(3) शासन व्यवस्था पर भी इससे प्रकाश पड़ता है। इस लेख के श्लोक 24 से 27 के शासक के नीचे गोप्ता नामक अधिकारी होता था। यहाँ कुमारगुप्त का गोप्ता विश्वकर्मा बताया गया है तथा उसके बाद उसके पुत्र बन्धुवर्मा का उल्लेख है। वह मेधावी, पराक्रमी, दयालु, दुःखियों का शरणदाता, कल्पद्रुम, अभयदाता, दीनानाथ, जनपद बन्धु, विनयी, दुर्वृत्तियों से रहित, स्थिर और प्रजावत्सल था। राजा उपर्यंकित गुणों की जाँच करके ही गोप्ता नियुक्त करता था। इन्हीं गुणों की चर्चा स्कन्दगुप्त के सौराष्ट्र प्रदेश के गोप्ता पर्णदत्त के लिए जूनागढ़ अभिलेख में की गई है। अतः गुप्त शासक अधिकारियों की नियुक्ति के पूर्व उनमें उपर्यंकित गुणों की जाँच करते थे। यहाँ श्लोक 4 में लाट विषय का वर्णन है। इससे स्पष्ट है कि राज्य विषयों में बँटा होता था।

(4) तत्कालीन सामाजिक-आर्थिक जीवन के विषय में भी इससे ज्ञान मिलता है। श्लोक संख्या 8-10 तक से ज्ञात होता है कि यहाँ के निवासियों का आचरण सुन्दर, विनम्र और धर्मपरायण, क्षमाशील, सत्यवादी, स्नेही, उपकारी और मैत्री सम्बन्ध रखने वाला था। ये विषयों का परित्याग करने

वाले, रागद्वेष मुक्त, उदार तथा श्रेष्ठ कुलों के थे। स्त्रियाँ बाहर निकलते समय रेशमी वस्त्र, सुवर्ण हार, पुष्पमाला आदि धारण करती थीं। कलाकारों का बन्धुबान्धवों के साथ दशपुर में आना उनके संयुक्त परिवार प्रणाली का बोध कराता है। ये रेशमी वस्त्र बनाने में निपुण तथा ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता थे। कुछ लोग कथावाचक और ज्योतिषी भी थे। ये विविध व्यवसायों के प्रचलन के बोधक हैं।

(5) कलात्मक भावना का भी ज्ञान इससे मिलता है। यहाँ सरोवर और वाटिकाएँ, लताकुञ्ज और वेदिकाएँ थीं। दशपुर में कई मंजिले भवन बने थे मानो महल हों। ये बड़े ऊँचे तथा श्वेत थे मानो इनपर चूना लगा हो। [श्लोक—11-12] चित्रशालाएँ भी थीं। औद्योगिक कला भी विकसित थी। अनेक रंगों द्वारा सुन्दर, चित्रित और नेत्र सुखद, रेशमी वस्त्र तैयार किया जाता था। माला बनाने वाले मालाकार भी थे। 'गान्धर्व-शब्द मुखराणि' से संगीत कला की निपुणता ज्ञान होता है।

(6) 'श्रेणीभूतैर्भवनमतुलं कारितं दिप्तरश्मेः' (श्लोक 29) में श्रेणी शब्द आया है। ये व्यवसायिक संघ थे जिनमें एक प्रकार के व्यवसायी ही सदस्य होते थे जैसे आज का ट्रेड यूनियन। इन्हीं संघों को श्रेणी कहते थे—

एकेन शिल्पेन ये जीवते तेषाम समूहः श्रेणी। (गौ० ध०)

'श्रेणी' शब्द का प्रयोग रामायण में हुआ है। पर इस प्रकार के किसी-न-किसी तरह की संगठनात्मक समिति का ज्ञान वैदिक काल में भी था। ऋग्वेद में गणों और वार्ताओं का उल्लेख इसी ओर इंगित करता है। राय के अनुसार यहाँ 'गण' श्रेणी के ही अर्थ में प्रयुक्त है। पाणिनि ने गण, पूग, संघ और व्रत का प्रयोग एक ही साथ किया है। अतः ये किसी-न-किसी प्रकार श्रेणी की ही भावना को व्यक्त करते हैं। कात्यायन के अनुसार व्यापारियों के संघ को 'पूग', ब्राह्मणों के संगठन को 'संघ' तथा कलाकारों के समूह को 'श्रेणी' कहते थे।

श्रेणियों की निश्चित संख्या नहीं बताई जा सकती। जातकों में अट्ठारह, महावस्तु में छत्तिस, दीघनिकाय में चौबीस तथा मिलिन्दपञ्हो में चौहत्तर ऐसे संगठनों का उल्लेख है। ये औद्योगिक और व्यवसायिक संगठन थे। व्यवसायों के विकास के साथ श्रेणियों की संख्या में भी विकास हुआ। विभिन्न व्यवसाय के लोग अपना अलग संगठन बनाकर अपने लिए अलग नियम बनाते थे और अपने हित के मार्गों पर विचार करते थे। इसका कारण था कि व्यवसायों का ध्रुवीकरण हो रहा था। इनके नियमों की मान्यता थी तथा शासन में इनका प्रतिनिधित्व भी था। श्रेणियों को बौद्ध और जैन धर्म से बहुत प्रोत्साहन मिला। ये आर्थिक व्यवस्था के साथ राजनीतिक और प्रशासनिक महत्त्व की भी इकाइयाँ थी। मौर्य शासकों ने इनके संविधान और सुविधाओं को स्वीकार किया था।

ऊपर के विवरण से स्पस्ट है कि श्रेणियों की मुख्यतः तीन विशेषताएँ थीं—

1. इसका प्रधान एक वृद्ध अनुभवी व्यक्ति होता था।

2. व्यवसाय की पैत्रिक प्रवृत्ति इसमें रहती थी।

3. इनका स्वरूप स्थानीय उद्योगों के संगठन का था।

श्रेणियों के प्रमुख कार्य निम्न थे—

(अ) प्रशासनिक कार्य

इनके प्रधान को 'श्रेष्ठिन' तथा जब एक ही व्यवसाय की कई श्रेणियाँ परस्पर मिलती थीं तो उनके सम्मिलित प्रधान को 'महाश्रेष्ठिन' कहते थे। श्रेणी मुख्य की वैधानिक मान्यता थी। उसकी

आज्ञाओं का आदर था। राजा कोई भी ऐसा नियम नहीं बनाता था जो श्रेणियों के द्वारा निर्धारित नियम के प्रतिकूल हो। 'श्रेणी-बल' शब्द का उल्लेख इनकी सैनिक शक्ति को सम्बोधित करता है। राजा पर संकट के समय ये श्रेणियाँ उन्हें अपनी सैनिक सहायता प्रदान करती थीं क्योंकि इसके पास अपनी सेना होती थी जिसे श्रेणी-बल कहा जाता था। श्रेणियों में फूट शत्रुदल के लिए एक सुविधाजनक बात थी। अतः राजा ध्यान रखता था कि श्रेणियों में पारस्परिक फूट न हो। अमरकोष में श्रेणीमुख्य-श्रेष्ठी, न्याय और प्रशासन से सम्बन्धित था। याज्ञवल्क्यस्मृति में श्रेणी के न्यायालयों का वर्णन है। दमोदरपुर ताम्रपत्र से भी इस पर प्रकाश पड़ता है। केवल कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में ही राजा श्रेणी की समस्याओं के बीच हाथ लगाता था जैसे उनमें विभेद होने पर या उनके सदस्यों द्वारा नियम के उल्लंघन पर आदि।

(ब) आर्थिक कार्य

ये अपने व्यवसाय की वृद्धि पर विचार के साथ अन्य कार्य भी करती थीं—

(1) वे अपने सिक्के चलाती थीं।

(2) इनमें लोग अपना पैसा जमा करते थे। यह पैसा किसी विशेष उद्देश्य से जमा किया जाता था। कभी दाता किसी विशिष्ट दान के हेतु पैसा जमा करते थे जिसके सूद को सुरक्षित रखकर वह कार्य विशेष सम्पादित करता था। इस प्रकार यह बैंक का कार्य करती थीं। इसमें धन सम्पत्ति के रूप में जमा किया जाता था। ये कभी-कभी स्थायी जमा लेती थीं। इस पर श्रेणियाँ नियमित सूद देती थीं। इसके लेन-देन का लेखा-जोखा निगम अथवा सभा में पंजीकृत किया जाता था। सियादोनी अभिलेख से विदित होता है कि एक श्रेणी के पास सहस्त्रों भेंड़, बकरे, घी, तेल आदि देवोपासना के लिए जमा किए गए थे। इसका लेखा-जोखा रखती थीं तथा लौटाने एवं सूद देने की रीति का भी उल्लेख होता था।

(3) आर्थिक जीवन में इन्हें अपने निर्णय की स्वतन्त्रता थी। इस अभिलेख से ज्ञात है कि सिल्क बुनने वाली श्रेणी ने दशपुर जाने और वहाँ सपरिवार बसने का निर्णय स्वयं लिया था।

(4) ये अपने संघ के सदस्यों के माल की जाँच करके उसको मुद्रांकित करते तथा क्रय-विक्रय की व्यवस्था करते थे। मुद्रांकन वस्तु की शुद्धता की प्रामाणिकता के लिए होता था।

(5) दूरदेश के व्यापार के लिए ये संगठित होकर जाते थे जिससे इनके सदस्यों तथा माल की सुरक्षा बनी रहे।

(6) आर्थिक विकास के लिए व्यवसायिक प्रशिक्षण की भी व्यवस्था करते थे। छोटे व्यवसायियों के पुत्रों को किसी बड़े व्यवसायी के कारखाने में भेजकर शिक्षा दिलवाते थे तथा प्रशिक्षित हो जाने पर उसको उधार देकर अपना उद्योग प्रारम्भ कराते थे। उत्पादन के क्रय-विक्रय का भी नियन्त्रण करते थे कि प्रशिक्षु को घाटा न हो।

7. मालव संवत—एक विवेचन

स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख में अंकित 'गुप्तांप्रकाले गणनां विधाय' से स्पष्ट है कि गुप्त शासकों के समय काल गणना की एक विधि थी जिसे गुप्तसंवत् कहा गया है। गुप्त लेखों में समुद्रगुप्त के समय से ही अनिर्दिष्ट संवत् में तिथियों का उल्लेख किया गया है। यह गणना उपर्यंकित आधार पर निश्चत ही 'गुप्तकाल' में रही होगी। पर यह विचित्र बात है कि इस अभिलेख में मालव संवत्

में दो तिथियाँ 493 तथा 529 दी गई हैं। डॉ० राजबली पाण्डेय का विचार है कि पहले इसका नाम कृत संवत् था। मालवा में पहले कृत संवत् का ही चलन था—कृतेषु चतुदशु पूर्वायाम् श्री मालवगणामृनात प्रशस्तकृत संगिते (नरवर्मा के मन्दसोर अभिलेख से), यातेषू चतुदशु कृतेषु (राजपूताना का गंगाधर अभिलेख)। शकों की सत्ता वहाँ से बहिष्कृत होने के कारण समाप्त हो चुकी थी। वे फिर 57 से 78 ई० तक अपना विजय अभियान करते रहे। परन्तु मालवा फिर भी उनके प्रभाव से वंचित रहा। इसीलिए स्वतन्त्र मालवों ने परम्परा से चली आती हुई 'कृत संवत्' का नाम मालव संवत् दिया होगा। यह संवत् राजपूताना तथा मालवा के क्षेत्रों में अत्यन्त व्यापक रहा होगा। इसी से मालवा से प्राप्त इस अभिलेख की तिथि मालव संवता में अंकित है। वास्तव में यह 'कृत युग' का ही परिवर्तित नाम है क्योंकि डॉ० अल्टेकर ने बड़वा यूप अभिलेख के पूर्व इसका प्रयोग पाँच लेखों में पाया है। इसमें से तीन प्रारम्भिक लेखों में इसका प्रयोग स्वतन्त्र रूप से है जबकि उत्तरवर्त्ती दो में 'मालव' शब्द के साथ मिलता है। अतः स्पष्ट है कि उपर्यंकित कारण से ही स्वतन्त्र मालवों ने अपनी सत्ता के गौरव में 'कृतयुग' का नाम 'मालव संवत्' रख लिया हो। स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य यहाँ का एक शक्तिशाली शासक था। उसने शकों को पराजित कर उनकी सत्ता समाप्त किया। तब से मालव संवत् का दूसरा नाम विक्रम संवत् पड़ा। ऐसा अभिलेखों से ज्ञात होता है—'विक्रम नृप कालातीत सम्वत्सर श्री विक्रमादित्योत्पादित सम्वत्सर विक्रमादित्यकाले'। इस प्रकार कृतयुग, मालव संवत् और विक्रम संवत् मूलतः एक ही हैं जो परिस्थिति के कारण विभिन्न नामों से सम्बोधित किए गए हैं।

इसके नामकरण पर मुख्यतः निम्न मत प्राप्त हैं—

डॉ० फ्लीट के अनुसार कृत का अर्थ 'यातेषु' है। चूँकि यह एक व्यक्ति का नाम लगता है अतः यह मत अमान्य है। डॉ० हरप्रसाद शास्त्री ने कहा है कि चार युगों में से एक युग 'कृतयुग' था। डॉ० आर० जी० भण्डारकर ने कृत का अर्थ लिया है—बनना। उनके अनुसार इस गणना का प्रचलन ज्योतिषियों ने किया था। पर सातवीं शती तक ज्योतिषियों को 'कृतयुग' का ज्ञान नहीं था। अतः यह अमान्य है। डॉ० अल्टेकर ने वासुदेव द्वारा रोहिणी के नाम के पीछे इसके नामकरण की सार्थकता सिद्ध की है। डॉ० राजबली पाण्डेय के अनुसार उज्जयिनी के विक्रमादित्य ने मालवगणों में कृत नाम से एक संवत् प्रारम्भ किया था। शकों के विजय के समय से स्वतन्त्र मालवा में इसी का नाम मालव संवत् रखा गया। पीछे शकों को सदा के लिए समाप्त करने वाले स्कन्दगुप्त ने जिसका एक नाम विक्रमादित्य भी है इसे विक्रम संवत् का नाम दिया। डॉ० जायसवाल के अनुसार गौतमीपुत्र शातकर्णी ने शकों, मालवों, आन्ध्रों को पराजित कर अपनी कीर्ति को जीवित रखने के लिए इस संवत् का प्रचलन किया।

इस संवत् की गणना कब से की गयी ? साहित्यिक परम्परा के आधार पर मेरुतुंगाचार्य्य पाठावली में गर्दभिल्ल को उज्जयिनी का राजा कहा गया है। यह बलवान और निर्दयी शासक था। इसीलिए एक जैनसाधु कालकाचार्य ने उस प्रदेश में शकों की खोज की। कुछ दिनों बाद गर्दभिल्ल को एक पुत्र हुआ जिसका नाम विक्रमादित्य पड़ा। पिता के बाद वही वहाँ का शासक हुआ। इसके शासन की तिथि महावीर के निर्वाण से 470 वर्ष बाद थी। इसने इस तिथि को एक संवत् का नाम दिया। प्रबन्ध-कोष नामक दूसरे संस्कृत ग्रन्थ में भी यही कहा गया कि महावीर के निर्वाण के 470 वर्ष बाद विक्रम संवत् प्रारम्भ हुआ था।

अभिलेखों के आधार पर भी हम इसी गणना पर पहुँचते हैं। मन्दसोर अभिलेख में कहा गया है कि मा॰ सं॰ 493 में कुमारगुप्त पृथ्वी पर शासन करता था (कुमारगुप्त पृथ्वीं प्रशासयति)। करमदण्डा के शिवलिंग अभिलेख में कुमारगुप्त का शासनकाल 117 गु॰ सं॰ है जो (117 + 319 =) 436 ई॰ पड़ता है। इस विवरण के अनुसार कुमारगुप्त के कर्मदण्डा शिवलिंग अभिलेख तथा मन्दसोर अभिलेख लगभग एक ही काल के हैं क्योंकि इनमें साम्राज्य विस्तार का वर्णन लगभग समान किया गया है यथा—'चतुरुदधि-सकिल-स्वादित-यश' (करमदण्डा), 'चतुस्समुद्रान्त विलोल मेखलां सुमेरु-कैलाश-वृहत्पयोधरा' ये उसी समय के हैं जब उसका साम्राज्य इतना विस्तृत हो चुका था। अब यदि इस मालव संवत् में जो गुप्त संवत् के पहले का है करमदण्डा के गुप्त संवत की तिथि घटा दिया जाय तो (मा॰ सं॰ 493-436 ई॰ = 57) ज्ञात होता है। अतः 57 ई॰ पू॰ में मालव संवत् प्रारम्भ हुआ होगा। यह गणना ऐसे भी की जा सकती है कि मा॰ सं॰ 493=गु॰ सं॰ 117 मा॰ सं॰ 493 गु॰ सं॰ 117 = मा॰ सं॰ 376–319 ई॰ (गु॰ सं॰ के प्रारम्भ की तिथि) = 57 ई॰ पू॰। यही मालव संवत के प्रारम्भ की तिथि होगी।

पर यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि 57 ई॰ पू॰ के किस मास से इसकी गणना प्रारम्भ हुई होगी। उत्तरी भारत में हिन्दू वर्ष चैत्र से प्रारम्भ होता है और दक्षिण भारत में कार्तिक से। यही गणना क्रम पीछे संवत्सर नाम से जाना जाने लगा। इसे ही चालुक्य शासकों के अभिलेखों में संवत् तथा गहड़वालों में संवत्सर कहा गया है। अतः मालव संवत् ही संवत्सर नाम से पीछे प्रचलित हुआ।

8. कुमारगुप्त की पहचान

इस अभिलेख में उत्कीर्ण है 'कुमारगुप्ते पृथिवीं प्रशासति' (कुमारगुप्त पृथ्वी पर शासन कर रहे थे)। जो समय कुमारगुप्त का दिया गया है वह 436 और 472 ई॰ है (मा॰ सं॰ 493, 529)। प्रथम कुमारगुप्त 415 ई॰ से 449-50 ई॰ तक शासन किया जैसा कि उसके सिक्कों तथा अभिलेखों पर अंकित तिथि से ज्ञात होता है। अतः 436 ई॰ में यही कुमारगुप्त शासन करना इससे स्पष्ट होता है। इसी अभिलेख में अंकित है कि—'बहुना समतीतेन कालेनान्यैश्च पात्थिवैः व्यशीर्य्यतैकदेशोऽस्य भवनस्य' (बहुत समय बीतने पर अन्य राजाओं द्वारा इसका एक भाग नष्ट कर दिया गया)। स्पष्ट है कुमारगुप्त प्रथम के शासन के बहुत बाद जब तक गद्दी पर कई शासक बैठ चुके तो, इस मन्दिर का एक भाग नष्ट कर दिया गया था तो इसका पुनर्निर्माण 472 ई॰ में किया गया। यहाँ इस समय के किसी शासक का उल्लेख नहीं है। लगता है कि इस समय भी कुमारगुप्त नामधारी ही शासक रहा होगा। अतः पुनरुक्ति दोष से बचने के लिए लेखक ने पुनः राजा का नाम नहीं दुहराया। जबकि विश्वकर्मा नामक उसके अधिकारी के स्थान पुत्र बन्धुवर्मा का उल्लेख हुआ है। अतः यह असम्भव है कि जब परिवर्तित अधिकारी का नाम दिया गया हो तो परिवर्तित दूसरे नाम के राजा का नामोल्लेख न किया जाय। निश्चय ही यह 472 में मन्दिर के जीर्णोद्धार की घटना कुमारगुप्त II के काल में की गई होगी। डॉ॰ वी॰ पी॰ सिन्हा के अनुसार कुमारगुप्त I के बाद पुरुगुप्त, स्कन्दगुप्त, और कुमारगुप्त II (सारनाथ) मुद्रा में जिसका नाम आया है तथा उसमें तिथि गु॰ सं॰ 154 = 473 ई॰ अंकित है क्रमशः गद्दी पर बैठे। डॉ॰ उदयनारायण राय ने कुमारगुप्त प्रथम के बाद स्कन्दगुप्त, पुरुगुप्त और कुमारगुप्त द्वितीय। (सारनाथ मुद्राभिलेख का) गुप्त शासक माना है। जो भी हो कुमारगुप्त द्वितीय तक तीन शासकों का काल कुमारगुप्त प्रथम के काल से बीत चुका था। अतः समय भी बीत और बहुत राजा भी आए तो अभिलेख की बात सत्य प्रतीत होती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पहली बार मन्दिर का निर्माण कुमारगुप्त प्रथम के काल में हुआ था और इसका पुनर्निर्माण कुमारगुप्त द्वितीय (सारनाथ के मुद्राभिलेख वाले) के काल में हुआ था।

9. चतुस्समुद्रान्त-विलोक मेखलां, सुमेरु, कैलास-वृहत्पयोधराम्--व्याख्या

यहाँ वर्णित है कि कुमारगुप्त (प्रथम) के शासन में समुद्र उसके राज्य की मेखला बना रहा था तथा सुरेरू और कैलास पर्वत ऐसे उन्नत थे जैसे वृहत पयोधर हों। यह पंक्ति कुमारगुप्त के साम्राज्य विस्तार की ओर संकेत करती हैं।

दामोदरपुर ताम्रपत्र से बंगाल पर उसका अधिकार ज्ञात होता है। गैड़ा या खड्गनिहन्ता प्रकार के इसके सिक्के आसाम पर इसका अधिकार प्रदर्शित करते हैं। मन्दसोर अभिलेख से मालवा पर उसकी सत्ता का ज्ञान मिलता है। सौराष्ट्र और गुजरात में उसके प्राप्त सिक्कों से ज्ञात होता है कि पश्चिमी भारत भी इसके अधीन था। उत्तर-पश्चिम में मथुरा तक उसका साम्राज्य फैला था जैसा कि मथुरा अभिलेख से ज्ञात होता है। इससे स्पसट है कि अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक उसका राज्य फैला था। अतः उपर्युक्त कथन अतिरंजनापूर्ण नहीं है।

11. स्कन्दगुप्त का भीतरी प्रस्तर स्तम्भ-लेख
(Bhitri Stone Pillar Inscription of Skandgupta)

स्थान : भीतरी, जिला–गाजीपुर, उत्तर प्रदेश

भाषा : संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी

काल : स्कन्दगुप्तकालीन (455-67 ई०)

विषय : स्कन्दगुप्त का राजनैतिक चरित्र तथा उपलब्धियों का उल्लेख, पितृ पुण्य के लिए शारङ्गी-विग्रह प्रतिष्ठा तथा ग्राम दान

मूल-पाठ

[सिद्धम् ॥*]

1. [सर्व्व]-रा[जो]च्छेत्तुः पृथिव्यामप्रतिरथस्य चतुरुदधिसलिल[ा]स्वादितयशसो धनद-वरुणेन्द्र[ा]न्तकस[मस्य]
2. कृतान्तपरशोः न्यायागत[ा]नेकगोहिरण्य[को]टि-प्रदस्य चिरो[त्स]न्नाश्वरेधाहर्त्तुमर्हराज-श्रीगुप्त प्रपौत्र[स्यव]
3. महाराजश्रीघटोत्कचपौत्रस्य महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तस्तयपुत्रस्य लिच्छिवि-[1]दौहित्रस्य महादेव्यां कुम[ा]र[दे]व्या-
4. मुत्पन्नस्य महाराजाधिराजश्रीसमुद्रगुप्तस्य पुत्रस्तत्परिगृहीतो महादेव्यान्दत्तदेव्यामुत्पन्नः स्वयं चाप्रतिरथः
5. परम-भागवतो महाराजाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तस्य पुत्रस्तत्पादानुद्धयातो महादेव्यां ध्रुवदेव्यामुत्पन्नः परम-

1. सामान्य प्रयोग में लिच्छवि

6. भागवतो महाराजाधिर[ा]ज-श्रीकुमारगुप्तस्तस्य
प्रथितपृथुमतिस्वभावशक्तेः
पृथुयशसः पृथिवीपतेः पृथुश्रीः (।)
7. पि[तृ]प[रि]गत-पादपद्मवर्त्ती
प्रथितयशाः पृथिवीपतिः सुतो(ऽ)यम् (।।) 1
जगति भु[ज]-बलाडयो[1] गुप्तवङ्शैकवीरः[2]
प्रथितविपुल-
8. धामा नामतः स्कन्दगुप्तः (।)
सुचरित-चरितानां येन वृत्तेन वृत्तं[3]
न विहतममलात्मा तान-[धीदा]-विनीतः (।।) 2
9. बल-सुनीतैर्व्विक्क्रमेण क्क्रमेण
प्रतिदिनमभियोगादीप्सितं येन ल[व्ध्व]ा (।*)
स्वभिमतविजिगीषाप्रोद्यतानां परेषां
प्रणि
10. हित इव ले[भे] [सं]विधानोपदेशः (।।) 3[4]
विचलितकुललक्ष्मीस्तम्भनायोद्यतेन
क्षितितलशयनीये येन नीता त्रियामा (।)[5]
समु---
11. दितब[ल]कोशा[न्पुष्यमित्रांश्च][6] [जि]त्वा
क्षितिप-चरणपीठे स्थापितो वाम-पादः (।।) 4
प्रसभमनुप[मै]र्व्विध्वस्तशस्त्रप्रतापै-
र्विन[यस]मु-
12. [चितैश्च] क्षान्ति-शौ[र्यै]र्न्निरूढम् (।)
चरितममलकीर्त्तेर्ग्गीयते यस्य शुभ्रं
दिशि दिशि परियुष्टैराकुमारं मनुष्यैः (।।) 5
पितरि दिवमुपे[ते]
13. विप्लुतां वङ्श[7]-लक्ष्मीं
भुज-बल-विजितारिर्य्यः प्रतिष्ठाप्य भूयः (।)

---

1. पढ़ें : बलाव्यो
2. पढ़ें : वैशैक०
3. वृत्त = नियमानुसार
4. परिवां प्रणिहिते = शत्रुओं के विरोध में
5. इससे स्पष्ट है कि शक्ति के छिन जाने के पूर्व स्कन्दगुप्त कभी-कभी अपने पराजय तथा विरोधी के गद्दी प्राप्त करने के कारण कठिनाई में पड़ जाता था।
6. कुछ पढ़ते हैं : ब्युध्यमित्रांश्च.
7. पढें वंश-कुमारगुप्त के मरने के बाद तत्काल स्कन्दगुप्त कठिनाई में पड़ गया था।

जितमिति परितोषान्मातरं सास्त्र-नेत्रां
हतरिपुरिव कृष्णो देवकीमभ्युपे-

14. [त]:[1] (॥) 6
[स्वै]र्द्द[ण्डैः] * * — * — त्प्रचलितं वङ्शं प्रतिष्ठाप्य यो
बाहुभ्यामवनिं विजित्य हि जितेष्वार्त्तेषु कृत्वा दयाम् (।)
नोत्सिक्तो [न] च विस्मितः[2] प्रतिदिनं

15. संवर्द्धमानद्युति
र्गीतैश्च स्तुतिभिश्च वन्दकजनो यं [प्रा]पयत्यार्य्यता[म्] (॥)
हूणैर्य्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कंपिता
भीमावर्त्त-करस्य

16. शत्रुषु शरा —— * —— * — (।)
——— * * — * — विरचितं प्रख्यापितो [दीप्तिदा]
न द्योति ...... नभीषु — * लक्ष्यत इव श्रोत्रेषु गार्ङ्गध्वनिः (॥) 8

17. [स्व]पितुः कीर्त्ति— * * * * *] —] * (।)
* * * *] — * * * * * *],] * (॥) 9
[कर्त्तव्या] प्रतिमा काचित्प्रतिमां तस्य शार्ङ्गिणः (।)

18. [सु]प्रतीतश्चकारेमां य[ा]वदाचन्द्रतारकम् (॥) 10
इह चैनं प्रतिष्ठाप्य सुप्रतिष्ठितशासनः (॥)
ग्राममेनं स विद[धे] पितुः पुण्याभिवृद्धये (॥) 11

19. अतो भगवतो मूर्त्तिरियं यश्चात्र संस्थितः (।)
उभयं निर्द्दिदेशासौ पितुः पुण्याय पुण्य-धीरिति ॥[3] 12

हिन्दी अर्थान्तर

सिद्धम् ॥

1. समस्त राजाओं का उन्मूलन करने वाला, पृथ्वी पर उनकी कोई भी तुलना नहीं कर सकता था। चारों समुद्रों के जल ने उनका स्वाद लिया था। वह वरुण, इन्द्र, यम के सदृश थे।

2. वह यम के कृतान्त परशु के तुल्य थे, न्यायोचित रीति से प्राप्त अनेक कोटि गायों एवं सुवर्ण का दान करने वाले थे, दीर्घकाल से व्यक्त अश्वमेघ यज्ञ के संस्थापक, महाराज श्रीगुप्त के प्रपौत्र,

3. महाराज श्री घटोत्कच के पौत्र, महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त के पुत्र, लिच्छवि राजकुमारी, महादेवी कुमारदेवी से

---

1. सेवेल ने स्कन्दगुप्त की माँ का नाम देवकी माना है। यह भी लगता है कि उसका मामा शत्रुओं की ओर से लड़ा होगा जिससे उसकी माता को कठिनाई हुई होगी।
2. पढ़ें वंश,
3. धीः ॥इति॥ = संस्थित मुख्य रूप से दान ग्राम का विशेषण है। सम्भवतः स्कन्दगुप्त ने विष्णु की प्रतिमा स्थापित किया और उसकी पूजा के लिए गावों को दान किया कि कुमारगुप्त का हित हो।

4. उत्पन्न महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्त के पुत्र, उनके द्वारा परिगृहीत महादेवी दत्तदेवी से उत्पन्न तथा स्वयं अप्रतिरथ (अद्वितीय)

5. परम भागवत (वैष्णव) महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त के पुत्र, उनके चरणों का ध्यान करने वाले, महादेवी ध्रुवदेवी से उत्पन्न, परम

6. वैष्वण, महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त, ख्याति प्राप्त महती स्वाभाविक शक्ति वाले इन्हीं का पुत्र स्कन्दगुप्त परम यशवाला राजा सर्वदा पिता के चरण-कमलों में आश्रय ग्रहण करने वाला था।

7. वह ख्याति प्राप्ति श्रीवाला, महान यशवाला, पृथ्वीपतिपुत्र, संसार में भुजबल से युक्त, गुप्तवंश में अद्वितीय वीर, महान

8. धर्मात्मा, स्कन्दगुप्त नाम वाला था। उस चरित्रवान द्वारा सदाचारी लोगों के आचरण में किसी प्रकार की बाधा नहीं होती थी। वह अमलात्मा एवं विनीत था। लगन के द्वारा विनय

9. बल और सदाचरण द्वारा दैनिक प्रयोग से जिसने विक्रम आदि अभीष्ट को प्राप्त कर अनुरूप विजय की इच्छा से शत्रुओं के

10. विरुद्ध प्रयोग करने वाले साधनों की शिक्षा प्राप्त किया था। अपने वंश की विचलित लक्ष्मी को स्थिर करने के लिए उद्यत जिसने भूतल की शय्या पर रात बितायी।

11. वर्धित शक्ति और कोषवाले पुष्यमित्रों को जीतकर राजा को चरण-पीठ बनाकर उस पर अपना वाम पद स्थापित किया था। इस राजा की निर्मल कीर्ति का, जो अपने शत्रुओं को शस्त्रों के प्रभाव से नष्ट करने वाला था, प्रबलता से अनुपम विनय युक्त

12. धैर्य एवं शौर्य से युक्त शुभ्र चरित्र का गायन दूर-दूर तक प्रत्येक दिशा में आबाल वृद्धों द्वारा प्रसन्नता से होता था। पिता के स्वर्गीय होने पर,

13. जब वंश की लक्ष्मी विप्लुत (चंचला) हो रही थी तो अपने बाहुबल से शत्रु को जीतकर नष्ट कुललक्ष्मी को पुनः प्रतिष्ठित किया। विजय प्राप्त से सन्तुष्ट हो अश्रुपूरित नेत्रवाली माता के पास शत्रु के विनष्ट होने की सूचना देने उसी प्रकार गाय जैसे कृष्ण देवकी के पास शत्रुओं के संहार करने के बाद गए थे।

14. (अपने सैन्य बल द्वारा) अस्थिर वंश-लक्ष्मी को स्थापित कर, जो भुजाओं द्वारा पृथ्वी को जीतकर विजित एवं आर्तजनों पर दया कर, वह न तो गर्व-पूरित और न क्षुब्ध चित्त ही हुआ था।

15. वर्धमान एवं द्युतिवान उसे प्रतिदिन गीत और स्तुतियों द्वारा चारण श्रेष्ठता (आर्य) प्रदान करते थे। युद्ध में हूणों के समीप आने पर जिसकी प्रबल आवर्त उत्पन्न करने वाले की भुजाओं द्वारा पृथ्वी कम्पित हो गयी थी।

16. ....शत्रुओं के बाण....जलावर्त (भंवर) विरचित कर देते थे। ....कानों में गंगा के लहरों की ध्वनि की भाँति सुनाई देती थी

17. अपनी पिता की कीर्ति.....................

....

शार्ङ्गिन् (विष्णु) प्रतिमा की

18. उस विख्यात राजा ने चन्द्रमा और तारों के स्थितिकाल तक के लिए निर्माण किया जाय, ऐसा निश्चय कर इसका निर्माण किया। जहाँ इन्हें (प्रतिमा को) प्रतिष्ठित कर उस श्रेष्ठ शासन वाले ने यह ग्राम प्रतिमा के लिए पिता के पुण्य के निमित्त दान में दिया।

19. इस प्रकार भगवान विष्णु की यह मूर्ति तथा दान स्वरूप निर्धारित गाँव को उस पुण्यबुद्धि राजा ने दोनों पिता के पुण्य के निमित्त दिया है।

ऐतिहासिक महत्त्व

यह लेख उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जनपद के सैदपुर तहसील मुख्यालय से लगभग पाँच मील उत्तर पूरब स्थित भीतरी गाँव के बाहरी दक्षिणी भाग में स्थित एक लाल बलुए प्रस्तर चतुष्पक्षीय स्तम्भ के निचले भाग के पूर्वी पक्ष पर अंकित है। इसकी प्रथम पाँच पंक्तियाँ गद्य में है किन्तु छठीं पंक्ति से पद्य का भाग प्रारम्भ होता है। इससे स्कन्दगुप्त के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का ज्ञान प्राप्त होता है।

अभिलेख के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि चारों समुद्रों के जल का उसने स्वाद लिया था। उसकी तुलना विभिन्न देवताओं के गुणों से की गई है। महाराज श्रीगुप्त से लेकर स्कन्दगुप्त तक के गुप्त शासकों की वंशावली भी यहाँ दी गई है तथा इसके राज्योचित गुणों की चर्चा भी की गई है। इसने अपने कुल की विचलित राजलक्ष्मी को स्थिर करने के लिए पृथ्वी पर रात भर सोकर विकसित शक्ति और कोश वाले पुष्यमित्रों को जीतकर उन्हें अपना चरण पीठ बनाकर उस पर वाम पद स्थापित किया। पुनः पिता की मृत्यु पर उसने अपने बाहुबल से शत्रुओं को जीतकर राजलक्ष्मी को स्थायित्व प्रदान किया। हूणों के युद्ध में उसकी दोनों भुजाओं ने पृथ्वी को कंपित किया था। उसने अपने पिता की पुण्य की वृद्धि के लिए विष्णु प्रतिमा स्थापित करवाई तथा दान में गाँव दिया। किन्तु इतना महत्त्वपूर्ण यह लेख तिथिविहीन है। इससे निम्नांकित राजनीतिक विन्दुओं पर प्रकाश पड़ता है—

(1) विधर्मी हूणों का इसके हाथों पराजय होना—

हूणैर्यस्य समागसत्य समरे दोर्भ्यां धरा कम्पिता

(2) निम्नांकित पंक्तियाँ इसके राज्यारोहण के पूर्व गृह-युद्ध हुआ था ?

पितरिदिवम्युपेते विप्लुतां वंशलक्ष्मीं
भुजबल विजितारिर्य्यः प्रतिष्ठाप्य भूयः [।]
जितमिति परितोषान्मातरं सास्रनेत्रां
हतरिपुरिव कृष्णो देवकीमम्युयेतः [।।]

(3) पुष्यमित्रों को जीतकर स्कन्दगुप्त गद्दी पर बैठा—

समुदित बलकोशान पुष्यमित्रांश्च जित्वा
क्षितिपचरणपीठे स्थापितो वामपादः।

(4) गुप्तवंश में अद्वितीय वीर था—

गुप्तवंशैकवीरः

1. 'हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कम्पिताः व्याख्या—

अभिलेखीय तथा साहित्यिक साक्ष्यों से स्कन्दगुप्त के जीवन काल की प्रमुख घटना है हूणों का भारत पर आक्रमण। हूण कौन थे ? इनका ज्ञान स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख से होता है—

प्रथयन्ति यशांसि यस्य
रिपोवोऽप्यामूलभग्नदर्पा निर्वचना म्लेच्छदेशेषु

'शत्रु के समूल नष्ट हो जाने पर भी म्लेच्छदेश में उसके (स्कन्दगुप्त) यश का गान करते हैं।' इसमें दो बातें हैं—(1) मलेच्छ देश के शत्रुओं के दर्प को समूल तोड़ दिया और (2) वे फिर भी

इसका गुणगान करते हैं। विशाखदत्त के मुद्राराक्षस नाटक तथा पुराणों में 'मलेच्छ' शब्द का प्रयोग हूणों के लिए किया गया है। अतः मलेच्छ हूण थे जिन्हें स्कन्दगुप्त ने पराजित किया था। यद्यपि डा० सुधाकर चट्टोपाध्याय, डा० राधाकृष्ण चौधरी और डा० पी० एल० गुप्त इससे सहमत नहीं हैं। डा० गुप्त ने किदार कुषाणों से इनकी पहचान की है जो अमान्य है। कथा सारितसागर के अनुसार उजयिनी के राजा महेन्द्रादित्य के बाद उसका पुत्र विक्रमादित्य शासक बना जिसने हूणों को परास्त किया। कुमारगुप्त प्रथम का नाम महेन्द्र भी था जैसा कि उसके गजारुढ़-सिंह निहन्ता प्रकार के सिक्कों से ज्ञात होता है। स्कन्दगुप्त के वेदी प्रकार के सिक्कों पर इसका नाम विक्रमादित्य अंकित है। अतः कथा सरितसागर का विक्रमादित्य जिसने हूणों को पराजित किया था वह स्कन्दगुप्त ही था। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि म्लेच्छ कहने का अभिप्राय होगा कि ये विदेशी बर्बर थे, आक्रमण में संहारक थे। इसी से यहाँ कहा गया है कि युद्ध भूमि में उनके आने से ही पृथ्वी कंपायमान हो जाती थी—**'हूणैर्यस्य समागतस्य समरेदोर्भ्यां धरा कम्पिता'** तथा उसके वाण शत्रुओं के बीच भँवर उत्पन्न कर देते थे। इससे स्पष्ट है कि उसने हूणों को पराजित किया था।

इस युद्ध का स्थान इसी अभिलेख से ज्ञात होता है—श्रोत्रेषु गंगा ध्वनिः। डा० उपाध्याय के अनुसार सम्भवतः यह युद्ध गंगा के किनारे हुआ था। डा० विमलचन्द्र पाण्डेय के अनुसार अभिलेख का यह भाग इतना अस्पष्ट है कि कि किस सन्दर्भ में यह कहा गया है निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। डॉ० यू० एन० राय ने युद्ध स्थल गंगाघाटी को माना है। स्कन्दगुप्त ने केवल इन्हें अपने राज्य के बाहर भगा दिया था। तभी लगता है कि उत्तर पश्चिम भारत में अभी वे थे जिससे सुरक्षा के लिये इसने सुराष्ट्र प्रांत में गोप्तृम (रक्षकों) की नियुक्ति की थी।

युद्ध कब हुआ था ? यद्यपि यह लेख तिथि विहीन है, पर जूनागढ़ लेख जो गु० सं० 136 का हैमें इस युद्ध का वर्णन है। कुमारगुप्त की मुद्राओं पर अंकित उसकी अन्तिम तिथि ज्ञात है। स्पष्ट है कि स्कन्दगुप्त ने यह विजय जूनागढ़ अभिलेख के कुछ पहले ही किया होगा। यह युद्ध स्कन्दगुप्त के राज्य के प्रारम्भिक चरण में हुआ होगा। इसकी पुष्टि बौद्ध ग्रंथ चन्द्रगर्भ-परिपृच्छा से भी होती है। वर्णित है कि कुमारगुप्त के शासन के अन्त में यवन, पह्लव और सकुनों ने भारत पर आक्रमण किया था जिसका सामना उसके प्रतापी पुत्र ने किया और 12 वर्षों तक युद्ध के बाद उन्हें पराजित कर दिया। यद्यपि अक्षरशः यह वर्णन संदेहास्पद है पर इतना स्पष्ट है कि अपने शासन के प्रारम्भिक चरण में इसने हूणों को पराजित किया था। पुनः चीनी यात्री सुङ्ग-युन के वर्णन से भी इसका मेल नहीं बैठता पर असंदिग्ध है कि इसके शासन के प्रारम्भिक काल में यह युद्ध हुआ था। सुङ्ग-युन 520 ई० में गांधार में था। वह लिखता है कि आज से दो पीढ़ी पहले हूणों ने गांधार को नष्ट कर दिया था। दो पीढ़ी पूर्व (520-50) = 470 ई० के लगभग हूण आक्रमण की घटना हुई होगी। पर गुप्तकालीन गणना में उल्लिखित जूनागढ़ से यह 456 ई० की घटना ज्ञात होती है। इस गणना का अन्तर सुङ्ग-युन के दोषयुक्त विवरण के कारण है जिसको उसने परम्परा से सुना था।

2. 'पितरिदिवंम्युपेते विप्लुतां वंश लक्ष्मीम्'—व्याख्या

यह पूरा श्लोक इस प्रकार है—

पितरिदिवम्युपेते विप्लुतां वंश लक्ष्मीम्
भुजबलविजितारिर्य्यः प्रतिष्ठाप्य भूयः।
जितमिव परितोषान्मातरं सास्त्र नेत्रां
हतरिपुरिव कृष्णो देवकीमभ्युपेतः।

कुमारगुप्त प्रथम की मृत्यु के पश्चात राजलक्ष्मी विचलित हो गई थी, जिसे उसने अपने भुजबल से पुनः स्थापित किया। इस विजय की प्रसन्नता को अश्रुपूरित नेत्र से वह अपनी माता से कहने वैसे ही गया जैसे कृष्ण देवकी के पास गए थे। यहाँ वंश की लक्ष्मी विप्लुत होने से डॉ॰ मजुमदार की धारणा है कि उत्तराधिकार के लिए स्कन्दगुप्त को युद्ध करना पड़ा था।

अपने इस दृष्टिकोण की पुष्टि के लिए उन्होंने निम्नांकित तर्क दिया है—

1. गुप्तवंशीय लेखों में कुमारगुप्त के पुत्र पुरुगुप्त की माँ अनन्तदेवी को महादेवी (प्रधान महिषी) कहा गया है। इससे लगता है कि पटरानी पुत्र होने से राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी वही था।

2. स्कन्दगुप्त की माता का नाम गुप्त अभिलेखों में कहीं भी प्राप्त नहीं होता। अतः स्कन्दगुप्त की माँ वास्तविक रानी नहीं थी।

इसी प्रसंग में अन्य प्राप्त तथ्य निम्न हैं—

3. इस लेख में वंशक्रम देते हुए कुमारगुप्त तक के राजाओं को अपने पिता का 'पादानुध्यात' कहा है जबकि अपने लिए पिता के नामोल्लेख के बाद 'सुतोऽयम्' का ही केवल प्रयोग किया है। इसी से वैशम ने भीतरी स्तम्भ लेख के 'गीतैश्च....प्रपयत्यार्य्यतां' पंक्ति के आधार पर इसकी शूद्रा माता होने की कल्पना की है। अतः यह गुप्तवंश के शासक होने का अधिकारी नहीं ठहरता। सम्भवतः पुरुगुप्त वास्तविक उत्तराधिकारी था जिसको हटाने के लिए उत्तराधिकार का युद्ध हुआ होगा।

4. डॉ॰ वी॰ पी॰ सिन्हा ने जूनागढ़ अभिलेख की निम्न पंक्तियों को रहस्यमय बताया है—

व्यपेत्य सर्व्वान्मनुजेन्द्रपुत्रां
लक्ष्मीः स्वयं य वरयांचकार॥

'मनुजेन्द्रपुतान' की व्याख्या में कुमारगुप्त के चार पुत्रों का नाम आता है—स्कन्दगुप्त, पुरुगुप्त, घटोतकच्छगुप्त और चन्द्रगुप्त तृतीय। इनमें पुरुगुप्त की माँ ही राजमहीषी बताई गई है जिससे यही वास्तविक उत्तराधिकारी था तथा भीतरी मुद्राभिलेख में इसी को कुमारगुप्त का 'तत्पादानुध्यात' कहा गया है। कुमारगुप्त के राज्य के अन्तिमकाल में स्कन्दगुप्त पुष्यमित्रों से युद्ध में उलझा था। इसका लाभ उठाकर पुरुगुप्त पाटलिपुत्र पर, घटोत्कच्छ तथा चन्द्रगुप्त तृतीय ने विभिन्न भागों पर अपना राज्य स्थापित कर लिया जिसको युद्ध में परास्त कर स्कन्द ने गद्दी पर अधिकार कर लिया। इसी से भीतरी अभिलेख में कहा गया है—'वाहुभ्यामवनिं विजित्य'। यदि बिना किसी लड़ा के उसे गद्दी मिल गई होती तो—'लक्ष्मीः स्वयं यं वरयांचकार' कहने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

किन्तु विद्वानों की उपर्यकित मान्यताएँ निम्नांकित दृष्टि से उपयुक्त नहीं प्रतीत होती है—

1. यह आवश्यक नहीं कि गुप्त शासकों में वैधता के आधार पर ही उत्तराधिकार सौंपा जाय। समुद्रगुप्त को उसके गुण एवं गोग्यता के आधार पर ही राजा बनाया गया था।

2. कई रानियाँ प्रधान महिषी हो सकती थीं। चन्द्रगुप्त द्वितीय की दो पत्नियाँ कुवेरनागा और ध्रुवदेवी दोनों ही महादेवियाँ कही गई हैं।

3, गुप्त अभिलेखों में अनिवार्य परम्परा नहीं थी कि प्रधान महिषी का नामोल्लेख किया ही जाय। चन्द्रगुप्त द्वितीय की महिषी कुवेरनागा का नाम उल्लिखित नहीं है।

4. भीतरी लेख की वंशावली कुमारगुप्त तक गद्य में है। ठीक इसके बाद पद्य का भाग प्रारम्भ होता है। सम्भवतः छन्द को दोषमुक्त रखने के लिए जिसमें माता का नाम ठीक नहीं बैठता होगा अतः स्कन्दगुप्त ने अपनी माँ का नाम इसमें नहीं दिया होगा।

5. 'विचलित कुललक्ष्मी' वाक्य को क्यों उत्तराधिकार युद्ध से जोड़ें ? कुमारगुप्त के अन्तिम समय में पुष्यमित्रों का आक्रमण हुआ था। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ अभिलेख की तिथि और कुमारगुप्त के मृत्यु की तिथि एक ही है गु॰ सं॰ 136 = 455 ई॰ जब हूणों का आक्रमण हुआ था। ये दोनों आक्रमण वंश के लक्ष्मी (गौरव) को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त थे। इससे गौरव विचलित हो रहा था। अतः यह पंक्ति हूण आक्रमण की ओर संकेत करता है।

6. 'लक्ष्मी स्वयं यं वरयांचकार' से अभिप्राय है अभिलेखीय कथन की एक परम्परा का न कि वास्तविक उत्तराधिकार के अभाव में सिंहासन को परिश्रम से ग्रहण करने का। ऐसे उदाहरण हर्षचरित (स्वयमेव श्रिया परिगृहीतः), रघुवंश, एरण स्तम्भ लेखों में भी मिलते हैं।

7. राजा और लक्ष्मी प्रकार की स्कन्दगुप्त की स्वर्ण मुद्राओं पर कुमारगुप्त द्वारा लक्ष्मी रूप में स्कन्दगुप्त के ऊपर राज्याभार समर्पण का भाव अंकित है, जो राजा द्वारा गद्दी प्रदान करने के भाव को पुष्ट करता है।

8. 'तत्पादानुध्यात' शब्द का अभाव स्कन्दगुप्त के सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण नहीं है क्योंकि यह मात्र आदरसूचक पद है उत्तराधिकारी का द्योतक नहीं। इसके समानार्थी दूसरा पद इसी लेख में आया है—पितृ-परिगत पादपद्मवर्ती (पिता के चरणों में भ्रमर की तरह लीन रहने वाला)।

9. गु॰ सं॰ 136 में कुमारगुप्त के मरने पर स्कन्दगुप्त गद्दी पर बैठा जैसा ऊपर के विवरणों से प्रकट है। अतः कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त के बीच पुरुगुप्त के आने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

10. मंजु-श्री-मूलकल्प में महेन्द्र तथा शकाराद्य को क्रम से गुप्त साम्राज्य का उत्तराधिकारी माना गया है। महेन्द्र कुमारगुप्त है और शकाराद्य स्कन्दगुप्त। अतः पुरुगुप्त का स्थान इनके बीच में नहीं आता है।

11. पुष्यमित्रों के आक्रमण के कारण 'विचलित कुललक्ष्मी' की बात इसी लेख के श्लोक 4 में दी गई है।

अतः उत्तराधिकार सम्बन्धी किसी युद्ध का इस समय होना ज्ञात नहीं होता है।

3. समुदितबलकोशानपुष्यमित्रांश्च जित्वा-व्याख्या

इससे पुष्यमित्रों के आक्रमण का ज्ञान होता है जिनको स्कन्दगुप्त ने जीत लिया था। यह श्लोक इस प्रकार है—

विचलितकुललक्ष्मीस्तम्भनायोद्यतेन
क्षितितलशयनीये येन नीता त्रियामा।
समुदितबलकोशान्पुष्यमित्रांश्च जित्वा
क्षितिपचरणपीठे स्थापितो वामपादः॥

'यह पुष्यमित्रों के कारण विचलित होती हुई राजलक्ष्मी को स्थिर करने की लिए जमीन पर रात के तीसरे पहर तक सोया और उन्हें पराजित कर लक्ष्मी को स्थिर किया।'

'पुष्यमित्रांश्च' पाठ को कुछ लोगों ने 'युध्यमित्रांश' पढ़ा है क्योंकि प्रथम अंश टूटा है। पर सामान्य विचार में 'पुष्यमित्रांश्च' ही शुद्ध पाठ है।

पुष्यमित्र कौन थे ? यह बहुवचन में प्रयुक्त हुआ है। अतः इनके विषय में मतभेद है। डॉ॰ फ्लीट इसे नर्मदा तटवर्ती जाति मानते हैं। स्मिथ पुराणों में उल्लिखित पुष्यागर्भ तथा वह्लीकों से इसकी

समता स्थापित करते हैं। डॉ॰ मिराशी के अनुसार ये मध्य प्रदेश में वल्ख नामक स्थान के निवासी थे। डॉ॰ भट्टशाली ने इन्हें कामरूप के शासक पुष्यवर्मन के वंशजों से अभिन्न माना है। डॉ॰ के॰ डी॰ वाजपेयी ने इन्हें पुष्यमित्र का वंशज माना है। पुराणों में वर्णन है कि पुष्यमित्र मेकला में शासन करेंगे। पर सामान्यतया डॉ॰ फ्लीट की ही बात को स्वीकार किया जाता है।

किसने किस पर आक्रमण किया था ? यह कहना बड़ा कठिन है कि कुमारगुप्त ने पुष्यमित्रों पर आक्रमण किया था या पुष्यमित्रों ने गुप्त पर। डॉ॰ रायचौधरी के अनुसार कुमारगुप्त ने ही इन पर आक्रमण किया था। इसके समर्थन में निम्नांकित तर्क दिया है—

(1) स्कन्दगुप्त समुद्रगुप्त की तरह व्याघ्रजनित प्रदेश पर शासन करना चाहता था। इसीलिए इसने यहाँ आक्रमण किया।

(2) कुमारगुप्त के व्याघ्रशैली के सिक्कों से ज्ञात होता है कि इस राजा ने व्याघ्रजनित मध्य भारतीय प्रदेशों को अधिकृत करने का प्रयास किया था।

(3) सतारा जिले (मध्य भारत) से गुप्त राजाओं के 1395 मुद्राओं का एक दफीना मिला है। इससे गुप्त शासकों का यहाँ राज्य प्रसार का प्रयास ज्ञात होता है। पर इस आक्रमण का पुष्यमित्रों ने विरोध किया था। इसमें भीषण युद्ध हुआ किन्तु विजयश्री स्कन्दगुप्त के हाथ लगी।

पर विद्वान डॉ॰ चौधरी के विचारों से सहमत नहीं हैं। उनका मानना है कि यह युद्ध कुमारगुप्त ने नहीं पर पुष्यमित्रों ने किया था। इसके लिए निम्नांकित तर्क दिए जाते हैं—

(1) कुमारगुप्त ने साम्राज्य विस्तार का कोई प्रयास नहीं किया।

(ब) यह काल्पनिक है कि कुमारगुप्त ने पुष्यमित्रों पर आक्रमण किया था।

यह युद्ध अत्यंत भयंकर था तभी इसके विजय की प्रत्याशा में स्कन्दगुप्त पृथ्वी पर सोया रहा। इसके शौर्य का अनुभव सभी दिशाओं में मनुष्यों और कुमारों ने किया था। इसकी भयंकरता की विभीषिका का कारण यह भी था कि इसी समय हूणों ने भी आक्रमण कर दिया था तथा भाइयों के बीच सद्भाव का अभाव हो गया था।

4. 'गुप्तवंशैकवीरः'—व्याख्या

इस अभिलेख में स्कन्दगुप्त के लिए—'जगतिभुज-बलाढ्यो गुप्तवंशैकवीरः' (संसार को अपनी भुजा से जीतने वाला गुप्तवंश का एक मात्र वीर) उल्लिखित है। इसी प्रकार का उल्लेख कहाँव अभिलेख में भी है—'गुप्तानां वंश यस्य' (जिसका वंश गुप्तों का है)। डॉ॰ पी॰ एल॰ गुप्त ने सम्भावना व्यक्त की है कि इसके उल्लेख का कारण उसका हीन भावना से ग्रसित होना रहा होगा क्योंकि वह किसी रानी का पुत्र न था। उसके बाद वाले वेदी प्रकार के सिक्कों पर विक्रमादित्य विरुद का उल्लेख हुआ है जो सम्भवतः उनलोगों की तुष्टि के लिए होगा जो इसके वैध उत्तराधिकार के प्रति अविश्वास रखते थे।

पर डॉ॰ उदयनारायण राय ने इसे स्कन्दगुप्त की महानता पर प्रकाश डालने हेतु बताया है। उदाहरणार्थ इसके अन्य विशेषण यथा, 'नृपतिगुणनिकेत', 'स्ववंशकेतुः' आदि भी इसी को उजागर करते हैं। इसी को बल देने के लिए इस अभिलेख में कहा गया है कि वह अपनी कीर्तियों से स्कन्द, कार्तिकेय के समान था—'प्रथित विपुल धामा नामतः स्कन्दगुप्तः।' 'वलसुनीतैर्व्विवक्रमेण क्क्रमेण' (बल के द्वारा जिसने विक्रम को प्राप्त कर लिया था); 'बाहुभ्यामवनिं विजित्य' (जिसने अपनी भुजाओं से पृथ्वी को जीता था), आदि।

इससे स्पष्ट है कि वह गुप्तवंश का एकमात्र वीर शासक था। हो सकता है 'एकमात्र' शब्द में थोड़ी अतिशयोक्ति हो पर इसकी वास्तविकता को आमूल नकारा नहीं जा सकता।

लेख की अन्य विशेषताएँ

1. इसमें प्रारम्भ से ही उल्लिखित है कि चारों समुद्रों के जल ने उनका (स्कन्दगुप्त) के राज्य का स्वाद लिया था।— 'चतुरुदधिसलिला स्वादित यशसो'। इसके पिता कुमारगुप्त प्रथम के मन्दसोर लेख में समुद्र को उसके (कुमारगुप्त प्रथम) राज्य के चतुर्दिक कमरबन्द तथा कैलाश एवं सुमेरु पर्वत को उसका ऊँचा स्तन कहा गया है—

चतुस्समुद्रान्तविलोलमेखलां
सुमेरु-कैलास वृहत्पयोधराम्।
वनान्तवान्त स्फुट पुष्पहासिनीं
कुमारगुप्ते पृथिवीं प्रशासति ।।

लगता है कि उस समय विस्तृत साम्राज्य की सीमा समुद्रपर्यन्त मानी जाती थी। चूँकि कुमारगुप्त प्रथम का यह उत्तराधिकारी था। अतः इसके सम्बन्ध में पिता के वर्णित राज्य पर अधिकार को व्यक्त करने के लिए ऐसा कहना सर्वथा प्रासंगिक ही है।

2. इस अभिलेख में श्रीगुप्त से लेकर स्कन्दगुप्त तक के गुप्त शासकों की वंशावली का उल्लेख है। इसमें स्कन्दगुप्त ने अपने को छोड़कर कुमारगुप्त तक के शासकों को अपने पिता का 'पदानुध्यात' बताया है। उसके द्वारा अपने लिए ऐसा न कहने की विवेचना ऊपर की जा चुकी है।

3. यह वैष्णव धर्मानुयायी था तभी इसने शारंगिन (विष्णु) प्रतिमा का निर्माण कराया तथा इसके पुण्य के लिए गाँव दान किया। ये दोनों दान पिता की पुण्य वृद्धि के निमित्त स्कन्दगुप्त ने किया था।

4. यहाँ इसे वरुण, यम और इन्द्र के सदृश कहा गया है। न्यायोचित रीति से अनेक कोटि गायों एवं सुवर्ण का दान करने वाला, ख्यातिप्राप्त, महान् यशवाला, पृथ्वीपति, पुत्र और धर्मात्मा था।

5. विचलित कुललक्ष्मी को स्थिर करके यह अश्रुपूरित नेत्र वाली अपनी माता को सन्तोष देने गया था जैसे कृष्ण देवकी के पास गये थे। इस तुलना में देवकी का नामोल्लेख हुआ है। कतिपय विद्वानों का विचार है कि देवकी ही इसकी माँ का नाम रहा होगा। चूँकि वह हीन जाति की थी इसलिए इसको स्पष्ट शब्दों में अपनी माँ कहने मे उसे हिचक रहा होगा। पर हमने देखा है कि यह धारणा ही निर्मूल है। देवकी इसकी माता का नाम नहीं माना जा सकता। यह मात्र तुलनात्मक वर्णन है।

12. स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ अभिलेख
(Junagarh Inscription of Skandgupta)

स्थान : जूनागढ़, गुजरात

भाषा : प्राकृत

लिपि : ब्राह्मी

काल : गुप्त संवत् 136, 137 तथा 138 (455, 456 तथा 457 ई०)

विषय : स्कन्दगुप्त के राज्य काल में हूणों की पराजय, प्रान्तीय शासन का स्वरूप तथा टूटे हुए सुदर्शन झील के बाँध का पुनर्निर्माण।

मूल-पाठ

[खण्ड–1]

1. सिद्धम् ॥
श्रियमभिमतभोग्यां नैककालापनीतां
त्रिदशपति-सुखार्त्थं यो बलेराजहार।
कमल-निलयनायाः शाश्वतं धाम लक्ष्म्याः

2. स जयति विजितार्त्तिर्विष्णुरत्यन्तजिष्णुः। 1
तदनु जयति शश्वत् श्री[1] परिक्षिप्तिवक्षाः
स्वभुज-जनित-वीर्यो राजराजाधिराजः।
नरपति—

3. भुजगानां मानदर्प्पोत्फणानां
प्रतिकृति-गरुडा[ज्ञां] निर्व्विषी[ ] चावकर्त्ता। 2[2]
नृपति-गुण-निकेतः स्कन्दगुप्तः पृथु-श्रीः[3]
चतुरु[दधि-जल]न्तां स्फीत-पर्यन्त-देशाम्।

4. अवनिमवनतारिर्यः चकारात्म-संस्थां
पितरि सुरसखित्वं प्राप्तवत्यात्मशक्तया॥ 3
आप च जित[मे]व तेन[4] प्रथयन्ति यशांसि यस्य रिपवो(ऽ)पि (।)
आमूलभग्नदर्प्पा नि[र्वचना] [म्लेच्छ-देशेषु]॥ 4

5. क्रमेण बुद्ध्वा निपुणं प्रधार्य
ध्यात्वा च कृत्स्नान्गुण-दोष-हेतून्।
व्यपेत्य सर्व्वान्मनुजेन्द्र-पुत्रां
लक्ष्मीः स्वयं यं वरयांचकार॥ 5[5]
तस्मिन्नृपे शासति नैव कश्चि-
द्धर्म्मातदपेतो मनुजः प्रजासु।

6. आर्त्तो दरिद्रो व्यसनी कदर्यो
दण्डे[6] न वा यो भृश-पीडितः स्यात्॥ 6
एवं स जित्वा पृथिवीं समग्रां
भग्नाग्र-दर्पा[न्] द्विषतश्च कृत्वा।

---

1. पढ़ें : शश्वच्छी
2. प्रतिकृतिगरुडाज्ञा = गुप्त शासकों के आदेश पर गरुडांकन। निर्व्विर्षी = जहर काटने वाली घास।
3. पढ़ें : श्रीश्चतु०
4. सम्भवतः ''जितमेव तेन'' इति.
5. मनुजन्द्र-पुत्र = राजकुमार गुप्त राजकुमार जो कुमारगुप्त की मृत्यु के बाद स्कन्दगुप्त से युद्ध किए थे।
6. फ्लीट का पाठ : दण्ड, दण्डयो तथा उचित मानते हैं.

सर्व्वेषु देशेषु विधाय गोप्तृन्[1]
संचिन्तया[मा]स बहु-प्रकारम्॥ 7
स्यात्को(ऽ)नुरूपो
7. मतिमान्विनितो[2]
मेधा-स्मृतिभ्यामनपेत-भावः।
सत्यार्जवौदार्यनयोपपन्नो
माधुर्य-दाक्षिण्य-यशोन्वितश्च॥ 8
भक्तो(ऽ)नुरक्तो नृ[विशे]षयुक्तः
स्र्व्वोपधाभिश्च विशुद्ध-बुद्धिः।
आनृण्य-भावोपगतान्तरात्माः[3]
सर्व्वस्य लोकस्य हिते प्रवृत्तः॥ 9
8. न्यायार्जने(ऽ)र्थस्य च कः समर्थः
स्यादर्जितस्याप्यथ रक्षणे च।
गोपायितस्यापि [च] वृद्धि-हेतौ
वृद्धस्य पात्र-प्रतिपादनाय॥ 10
सर्व्वेषु भृत्येष्वपि संहतेषु
यो मे प्रशिष्यान्निखिलान्सुराष्ट्रान्।
आं ज्ञातमेकः खलु पर्णदत्तो
भारस्य तस्योद्वहने समर्थः। 11
9. एवं विनिश्चित्य नृपाधिपेन
नैकानहोरात्र-गणान्स्वमत्या।
यः संनियुक्तो(ऽ)र्थनया कथंचित्
सम्यक्सुराष्ट्रावनि-पालनाय॥ 12
नियुज्य देवा वरुणं प्रतीच्यां
स्वस्था यथा नोन्मनसो बभूवु[:] (।)
पूर्व्वेतरस्यां दिशि पर्णदत्तं
नियुज्य राजा धृतिमांस्तथाभूत। (।) 13
10. तस्यात्मजो ह्यात्मज-भाव-युक्तो
द्विधेव चात्मात्मवशेन नीतः।
सर्व्वात्मनात्मेव च रक्षणीयो
नित्यात्मवानात्मजकान्तरूपः। (।) 14
रूपानुरूपैर्ललितैर्विचित्रैः[4]

1. पढ़ें गोतृन्. गोप्ता = स्कन्दगुप्त का माण्डलिक।
2. पढ़ें ०निवनीती एक आदर्श प्रशासनिक अधिकारी.
3. पढ़ें ०रात्मा. नृविशेषयुक्त = अच्छे लोगों का सम्बन्ध
4. पढ़ें : ०चित्रैर्नित्य

नित्यप्रमोदान्वितसर्वभावः।
प्रबुद्ध-पद्माकर-पद्मवक्त्रो
नृणां[1] शरण्यः शरणागतानाम्।(।) 15

11. अभवद्भुवि चक्रपालितो(ऽ)सावितिं नाम्ना प्रथितः प्रियो जनस्य।
स्वगुणैरनुपस्कृतैरुदा[त्तै]: पितरं यश्च विशेषयांचकार। 16
क्षमा प्रभुत्वं विनयो नयश्च
शौर्यं विना शौर्य-मह[ा]र्च्चनं च।
दाक्ष्यं[2] दमो दानमदीनता च
दाक्षिण्यमानृण्यम[शू]न्यता च।(।) 17
सौंदर्यमार्येतर-निग्रहश्च[3]
अविस्मयो धैर्य्यमुदीर्णता च।

12. इत्येवमेते(ऽ)तिशयेन यस्मि-
न्नविप्रवासेन गुणा वसन्ति।(।) 18
न विद्यते(ऽ)सौ सकले( )ऽ)पि लोके
यत्रोपमा तस्य गुणैः क्रियेत।
स एव कार्त्स्न्येन गुणान्वितानां
बभूव नृणामुपमानभूतः।(।) 19
इत्येवमेतानधिकानतो(ऽ)न्या-
न्गुणान्प[री]क्ष्य स्वयमेव पित्रा।
यः संनियुक्तो नगरस्य रक्षां
विशिष्य पूर्वान्प्रचकार सम्यक्।(।) 20

13. आश्रित्य विर्य[4] [स्वभु]ज-द्वयस्य
स्वस्यैव नान्यस्य नरस्य दर्पं र्पम्।
नोद्वेजयामास च कंचिदेव-
मस्मिन्पुरे चैव शशास दुष्टाः[5]।(।*) 21
विस्रंभमल्पे न शशाम (योस्मिन्)
काले न लोकेषु सनागरेषु।
यो लालयामास च पौरवर्गान्
[स्वस्येव] पुत्रान्सुपरीक्ष्य दोषान्।(।) 22
संरंजयां च प्रकृतीर्बभूव
पूर्व्वस्मिताभाषण-मान-दानैः।

---

1. दोनों नृणां तथा नृणां सही हैं
2. उपस्कृत = दोषी
3. फ्लीट : वाक्यं(?)
4. पढ़ें : वीर्य,
5. पढ़ें : दुष्टान्

14. निर्यन्त्रणान्योन्य-गृह-प्रवेशै(।)
संवर्द्धित-प्रीति-गृहोपचारै।(।) 23
ब्रह्मण्य-भावेन परेण युक्तः
[श]क्तः[1] शुचिर्दानपरो यथावत्।
प्राप्यान्स काले विषयान्सिषेवे
धर्मार्थयोश्चा(प्य)विरोधनेन।(।) 24
[यो — * ——* * पर्णदत्ता]-[2]
त्स न्यायवानत्र किमस्ति चित्रं।
मुक्ता-कलापाम्बुज-पद्म-शीता-
च्चन्द्रात्किमुष्णं भविता कदाचित्।(।*) 25

15. अथ क्रमेणाम्बुद-काल आग[ते]
[नि]दाघ-कालं प्रविदार्य तोयदैः।
ववर्ष तोयं बहु संततं चिरं
सुदर्शनं येन बिभेद चात्वरात् (।) 26
संवत्सराणामधिके शते तु
त्रिंशङ्भिरन्यैरपि षड्भिरेव।
रात्रौ दिने प्रौष्ठपदस्य षष्ठे
गुप्त-प्रकाले गणनां विधाय।(।) 27[3]

16. इमाश्च या रैवतकाद्विनिर्गता[:]
पलाशिनीयं सिकता-विलासिनी।
समुद्र-कान्ताः[4] चिर-बन्धनोषिताः
पुनः पतिं शास्त्र-यथोचितं ययुः।(।) 28
अवेक्ष्य वर्षागमजं महोद्गमं
महोदधेरूर्जयता प्रियेप्सुना।
अनेकतीरान्तजपुष्पशोभितो

17. नदीमयो हस्त इव प्रसारितः।(।) 29
विषाद्य[मानाः] [खलु] [सर्वतो] [ज]ना[:]
कथं-कथं कार्यमिति प्रवादिनः।
मिथो हि पूर्वापर-रात्रमुत्थिता
विचिन्तयां चापि बभूवुरुत्सुकाः।(।) 30
अपीह लोके सकले सुदर्शनं
पुमां[5] हि दुर्दर्शनतां गतं क्षणात्।

1. शक = प्रियंवद
2. इस प्रकार पूरा करें : यो(ऽ*)जायतास्मात् खलु पर्णदत्तात् ?
3. भाउदाजी का पाठ : गुप्तस्य काला[ट्ग]णनां विधाय जो गलत लगता है।
4. पढ़ें : कान्तिश्चिर.
5. पढ़ें : पुमान् फ्लीट : साम्भोनिधि०

18. भवेन्नु सो(ऽ)म्भोनिधि-तुल्य-दर्शनं
सुदर्शन —* * — * — * — (।।) 31
* — * ——* वणे स भूत्वा
पितुः परां भक्तिमपि प्रदर्श्य।
धर्म पुरोधाय शुभानुबन्ध
राज्ञो हितार्थं नगरस्य चैव।(।) 32
संवत्सराणमधिके शते तु

19. त्रिंशद्भिरन्यैरपि सप्तभिश्च।
[गुप्तप्रकाले*] [नय]-शास्त्र वेत्ता[1]
[विश्वो] (ऽ)प्यनुज्ञात-महाप्रभावः।(।) 33
आज्य-प्रणामैः[2] विबुधानथेष्टा
धनैर्द्विजातीनपि तर्पयित्वा।
पौरांस्तथाभ्यर्च्य यथार्हमानैः
भृत्यांश्च पूज्यान्सुहृदश्च दानैः।(।) 34

20. ग्रैष्मस्य[3] मास्य तु पूर्व-प[क्षे]
* — * ——[प्र]थमे(ऽ)ह्निसम्यक्।
मासद्वयेनादरवान्स भूत्वा
धनस्य कृत्व व्ह्ययमप्रमेयम्।(।) 35
आयामतो हस्तशतं समग्रं
विस्तारतः षष्टिरथापि चाष्टौ।

21. उत्सेधतो(ऽ)न्यत् पुरुषाणि [सप्त]
——[ह]स्तशतद्वयस्य।(।) 36[4]
बबन्ध यत्रान्महता नृदेवा-
न[भयर्च्य] सभ्यग्धटितोपलेन।
अजातिदुष्टम्प्रथितंतटाकं
सुदर्शनं शाश्वतकल्पकालम्।(।) 37

22. अपि च सुदृढ-सेतु-प्रान्त-विन्यस्तशोभ-
रथचरणसमाह्लक्रौंचहंसासधूतम्।
विमल-सलिल———*———*———
भुवि त *** ———द[ने](ऽ)र्कः शशी च।(।) 38

23. नगरमपि च भूयाद्वृद्धिमत्पौरजुष्टं

---

1. फ्लीट : प्र....और चेत्ता
2. पढ़ें : ०मैगिवु०
3. गैष्म = ग्रीष्म (= ज्येष्ठ and आषाढ).
4. फ्लीट के अनुसार बाँध 100 हाथ लम्बा और 68 हाथ चौड़ा बना था।

द्विजबहुशतगीतब्रह्मनिर्नष्टपापंपम्।
शतमपि च समानामीतिदुर्भिक्ष-[मुक्तं]
******______*_____*_____[।।*] 39
[इति] [सुद]र्शनतटाकसंस्कारग्रन्थ्ररचना समाप्ता।

[खण्ड–2]

24. हप्तारिदर्पप्रणुदः पृथुश्रियः
स्ववङ्श[1]केतोः सकलावनीपतेः।
राजाधिराज्याद्भुत[2]-पुण्य-[कर्मणः]
* ___ * _____** ,___ * , * , (।।*) 40
_____ * _____ ** ___ * _____
_____ * _____ ** ___ * ______ (।*)
द्वीपस्य गोप्ता महतां च नेता
दण्ड-स्थि[ता]नां
25. द्विषतां दमाय।(।) 41
तस्यात्मजेनात्मगुणान्वितेन
गोविन्दपादार्पितजीवितेन।
_____ * _____ ** ___ *_____
_____ * _____ ** ___ * _____ (।।*) 42
_____ * ___ *** ___ ** ___ * ___ ग्धं
विष्णोश्च पादकमले समवाप्य तत्र।
अर्थव्ययेन
26. महतामहता[3] च काले-
नात्मप्रभावनतपौरजनेन तेन।(।) 43
चक्रं विभर्त्ति रिपु ___ ** ,___ * _____
_____ * ___ *** ___ ** ___ * _____ (।*)
_____ * ___ *(** ___ ** ___ * _____
तस्य स्वतंत्रविधिकारणमानुषस्य।(।) 44
27. कारितमवक्रमतिना चक्रभृतः[4] चक्रपालितेन गृहं(।
वर्षशते(ऽ)ष्टात्रिंशे गुप्तानां काल[क्रम-गणिते] (।।) 45
_____ * ___ *** ___** ___ * _____
_____ * ___ ** ___ * _____*_____ (।)
—[स]ार्थमुत्थितमिवोर्जयतो(ऽ)चलस्य

---

1. पढ़ें : वंश
2. उचित पाठ : राजाधिराजा
3. पढ़ें : महत्ता + अमहता
4. पढ़ें : भृतयक

28. कुर्वत्प्रभुत्वमिव भाति पुरस्य मूर्ध्नि॥ 46
अन्यश्च मूर्द्धनि सु — ** — * ——
—— * — *** — ** — * —— (।)
—— * — *** रुद्धविहंगमार्ग
विभ्राजते ** * — * * — * —— (॥) 47

हिन्दी अर्थान्तर

'सिद्धम्'।

श्लोक 1. सुयोग्य लोगों द्वारा उपभोग्य, चिरकाल से अपहृत लक्ष्मी को देवताओं के अधिपति इन्द्र के सुख के लिए राजा बलि से अपहरण करनेवाले, कमल में निवास करने वाली लक्ष्मी के शाश्वत विश्रामस्थल, सभी दुखों का निवारण करने वाले अतिजयी विष्णु की जय हो।

श्लोक 2. तदुपरान्त महाराजाधिराज स्कन्दगुप्त की जय हो, जिसके वक्षस्थल का आलिंगन निरन्तर लक्ष्मी करती रहती हैं, जो कि राजाओं के राजाधिराज हैं, जिन्होंने अपने बाहुबल के द्वारा ही पराक्रम को अर्जित किया है, जिसने मान और अहंकार से राजा रूपी सर्पों के उठने वाले मस्तक रूपी फणों को विषशून्य कर देने वाली प्रतिकार रूपी गरुड़ध्वजांकित राजाज्ञा प्रदान की।

श्लोक 3. राजकीय गणों के निवास-स्थल, विपुल राज्यश्री वाले, शत्रुओं को पराजित करने वाले स्कन्दगुप्त ने, पिता के दिवंगत होने पर ऐसी पृथ्वी को अधीनस्थ किया जो कि चारों समुद्रों तक फैली हुई थी और जिसमें समृद्ध देश सम्मिलित थे।

श्लोक 4. चूँकि उसने विश्व को विजित कर लिया है, इसलिए उसके शत्रु भी गर्व से समूल नष्ट हो जाने के कारण म्लेच्छ देशों में उसके यश का गान करते हैं कि उसने यथार्थ रूप से विजय प्राप्त कर ली है।

श्लोक 5. क्रमशः बुद्धि में निपुण पाकर तथा समस्त गुणों एवं दोषों के कारणों का विचार कर लक्ष्मी ने सभी राजकुमारों का परित्याग करके स्वयमेव उसका वरण कर लिया था।

श्लोक 6. जिस समय वह शासन कर रहा था, उस समय उसकी प्रजा में एक भी व्यक्ति धर्म-च्युत, दुःखी, दरिद्र, आपत्तिग्रस्त, दुर्व्यसनग्रसत, लोभी और राजदण्ड से अत्यधिक पीड़ित नहीं था।

श्लोक 7. उसने सम्पूर्ण भूमण्डल पर विजय प्राप्त करके शत्रुओं के गर्व को चूर-चूर कर दिया था और अपने सभी प्रदेशों में राज्यपालों (प्रान्तीय शासक) को नियुक्त करने के अनन्तर उसने विविध प्रकार से सोच-विचार किया।

श्लोक 8. मेरे सभी राजकर्मचारियों में ऐसा कौन-सा व्यक्ति है जो अनुकूल, बुद्धिमान्, विनम्र, प्रज्ञा एवं स्मरण–शक्ति से सम्पन्न है तथा जो सत्यता, सरलता, उदारता और नैतिज्ञता, मधुरता, दक्षता तथा यशस्विता इत्यादि गुणों से युक्त हैं।

श्लोक 9. जो भक्ति, अनुराग एवं पुरुषार्ष से सम्पन्न है, जिसकी बुद्धि विशुद्ध है और सभी दृष्टियों से निष्कपट एवं सच्चरित है; जिसकी अन्तरात्मा इस बात से संतुष्ट है कि उसने सबके ऋण एवं उपकार को चुका दिया है सभी जीवों के उपकार में प्रवृत्त हैं।

श्लोक 10. 'जिसने अपने द्रव्य को न्यायपूर्ण साधनों द्वारा अर्जित किया है, जो उपार्जित द्रव्य राशि के रक्षण में समर्थ है, सुरक्षित सम्पत्ति के संवर्धन में समर्थ है और सम्बन्धित सम्पत्ति को सत्पात्रों में वितरण करने में तत्पर है।'

श्लोक 11. इस प्रकार विचार करते हुए जब उस नरेश ने सोचा कि हमारे समस्त अनुचर वर्ग में ऐसा कौन हो सकता है जो समग्र सुराष्ट्र प्रदेश की यथा-योग्य शासन कर सके। अकेला पर्णदत्त ही भार को सफलतापूर्वक वहन करने में समर्थ है।

श्लोक 12. उस राजाधिराज स्कन्दगुप्त ने इस प्रकार अपनी बुद्धि के द्वारा कई दिन एवं रात विमर्श कर, बड़ी कठिनाई से किसी प्रकार उसी पर्णदत्त को सम्पूर्ण सुराष्ट्र, प्रान्त की रक्षा के लिए नियुक्त किया।

श्लोक 13. जिस प्रकार पश्चिम दिशा में वरुण देव को नियुक्त कर देवता लोग प्रकृतिस्थ और निश्चिन्त हो गए, उसी प्रकार राज्य के पश्चिमी प्रदेश (सुराष्ट्र) में पर्णदत्त को नियुक्त करके महाराज स्कन्दगुप्त भी निश्चिन्त हो गये।

श्लोक 14. उस पर्णदत्त का पुत्र आदर्श पुत्र के गुणों से युक्त था। वह जितेन्द्रिय पिता के दूसरे प्रतिरूप के समान था। स्वयं को संयमित करने में वह सर्वथा समर्थ था। सम्पूर्ण आत्माओं में व्याप्त रहने वाले प्रभु के द्वारा अपनी ही आत्मा के द्वारा वह रक्षणीय था। वह सर्वदा अपने पर नियन्त्रण रखने वाला तथा कामदेव के समान सुन्दर था।

श्लोक 15. वह (चक्रपालित) अपनी आवृत्ति के अनुसार ही सुन्दर और अद्‌भुत चेष्टाओं से सर्वदा और सर्वदा प्रसन्न चित्त वाला, विकसित कमल के समान सुन्दर मुख वाला और शरणागत जनों को आश्रय प्रदान करने वाला था।

श्लोक 16. वहीं भूमण्डल में चक्रपालित नाम से प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय था। अपने उदात्त एवं निष्कलंक गुणों के द्वारा उसने अपने पिता की ख्याति को बढ़ा दिया था।

श्लोक 17. क्षमाशीलता, प्रभुता, नम्रता, नीतिनिपुणता, शूरता एवं शूरों के प्रांते समादरकारिता, दक्षता, दमनशीलता, दानशीलता, अनुकूलता, अदीनता प्रत्युपकारिता और उदारता आदि गुणों से चक्रपालित समन्वित था।

श्लोक 18. उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त सुन्दरता, अनौचित्य पर निग्रह, निर्भयता, धीरता और उन्नतिशीलता आदि गुण उस चक्रपालित में विशेष रूप से निवास करते थे।

श्लोक 19. समग्र भूमण्डल में ऐसा कोई भी नहीं था जिसके गुणों की तुलना चक्रपालित के गुणों के साथ की जाय। वह गुणवान-व्यक्तियों के लिए सम्पूर्ण रूप से उपमा का विषय हो गया था।

श्लोक 20. इस प्रकार के पूर्वोक्त गुणों के अतिरिक्त अन्यान्य गुणों की भी स्वयं परीक्षा करके अपने पिता पर्णदत्त के द्वारा राज्यपाल के रूप में नियुक्त चक्रपालित ने पूर्ववर्ती सभी नगर-रक्षकों की अपेक्षा विशेष रूप से नगर की रक्षा की।

श्लोक 21. उसने केवल अपने दो बाहुओं के बल तथा अपने ही, न कि अन्य व्यक्ति के दर्प का आश्रय लेकर उस पुर में रहने वाले दुष्टों का दमन किया तथा वहाँ किसी को उद्विग्न नहीं किया था।

श्लोक 22. अल्पकाल में ही पूर्ण विश्वस्त होकर चक्रपालित ने देशवासी और नगरवासी प्रजाजनों के ऊपर शासन किया। साथ ही पुरवासियों के गुण और दोषों का विवेचन करके पुत्रवत् उनका लालन-पालन भी किया।

श्लोक 23. बिना किसी अवरोध के एक-दूसरे के घर में प्रवेश, घरेलू विधियों एवं पूजा में भाग लेने के कारण प्रीति सम्बर्धन और सम्मान, भेंट एवं स्थितिपूर्ण मधुर वार्तालाप आदि के द्वारा उस चक्रपालित ने नागरिकों को प्रमुदित कर दिया था।

श्लोक 24. वह असीम ब्रह्मनिष्ठा से युक्त, निर्दोष, पवित्र एवं समुचित रूप में दान-परायण था। धर्म एवं अर्थ की अविरोध प्राप्ति द्वारा उसने समयानुसार औचित्यपूर्ण ढंग से विषयों का सेवन किया था।

श्लोक 25. न्यायमूर्ति पर्णदत्त के युग में चक्रपालित यदि न्यायप्रिय था तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? क्या मोतियों की माला अथवा जलजात विकसित कमल के तुल्य शीतल चन्द्रमा से उष्णता पैदा हो सकती है ?

श्लोक 26. तदुपरान्त क्रमपूर्वक वर्षा ऋतु ने अपने आचमन के समय बादलों द्वारा ग्रीष्मकाल को समाप्त कर दिया। उस समय चिरकाल तक इतनी अधिक वर्षा हुई कि सुदर्शन झील ने अकस्मात् अपने बाँध को तोड़ दिया।

श्लोक 27. गुप्तसंवत् की गणना के अनुसार 136वें गुप्त संवत् में 136 + 319 = 455 ई० भाद्रपद की षष्ठी तिथि की रात में सुदर्शन झील के टूटने की घटना हुई।

श्लोक 28. इस समय तक रैवतक पर्वत से निकलने वाली ये अनेक नदियाँ तथा अपने बालुकामय तट पर विलास करने वाली यह पलाशिनी नदी भी जो कि समुद्र की प्रियायें थीं—चिरकाल के बन्धन से उन्मुक्त होने के कारण शास्त्रोक्त विधि के द्वारा अपने समुद्ररूपी पति से मिलने के लिए पुनः चल पड़ीं।

श्लोक 29. वर्षाधिक्य के कारण महोदधि की प्रिया पलाशिनी नदी की अत्यन्त व्याकुलता को देखकर रैवतक पर्वत के मन में उसके प्रति कामना जागृत हो उठी। पुष्प से लदे हुए तटवर्ती वृक्षों से सुशोभित पलाशिनी नदी से युक्त यह पर्वत लगता था मानो हाथ के ही तुल्य फैला हुआ हो।

श्लोक 30. चारों ओर लोग विषादयुक्त होकर प्रलाप करने लगे कि अब क्या और—कैसे किया जाय। नागरिकों ने उपाय के विषय में विचार करते हुए पूरी रात जाग कर बिता दी।

श्लोक 31. इस संसार में किसी की भी ऐसा कल्पना नहीं की कि—एक ही क्षण में यह सुदर्शन (झील) दुर्दर्शन हो जाएगा और अपार सागर के समान दिखाई देने लगेगा।

श्लोक 32. अपने पिता पर्णदत्त के प्रति पूर्ण भक्ति प्रदर्शित करके, शुभ फल देने वाले धर्म को सामने रखकर चक्रपालित ने राजा और नगर के कल्याण के लिए सुदर्शन झील को फिर से बँधवा दिया।

श्लोक 33. नीति शास्त्र के मर्मज्ञ और विश्वविदित प्रताप वाले चक्रपालित ने गुप्त संवत् के 137वें वर्ष मे सुदर्शन को फिर बँधवाया।

श्लोक 34. घृत और स्तुतियों के द्वारा देवताओं को आहुति-प्रदान और प्रणति समर्पण करके विविध धनों से विप्रवरों को तृप्त करके, यथायोग्य सम्मान और दान आदि से नागरिकों, सेवकों, गुरुजनों और मित्रों की अभ्यर्थना करके सुदर्शन को बँधवाया।

श्लोक 35. धन का अपरिमित व्यय करके, दो महीने के भगीरथ प्रयत्न से ज्येष्ठ मास के पूर्व पक्ष के प्रथम दिन रुचिपूर्वक सुदर्शन को बँधवाया।

श्लोक 36. इस बाँध की लम्बाई एक सौ हाथ, चौड़ाई, अड़सठ हाथ एवं ऊँचाई सात पुरुष (पोरसा) के बराबर थी।

श्लोक 37. मनुष्यों और देवों की अर्चना करके भली-भाँति पत्थरों की जड़ाई के द्वारा उसने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक उस बाँध को निर्मित कराया। स्वभावतः पुष्ट और विश्वविख्यात सुदर्शन झील को अकथनीय यत्नपूर्वक सर्वदा के लिए बँधवा दिया।

श्लोक 38. इसके बाद मजबूत सीढ़ियों के कारण सुन्दर किनारा वाला था चक्रवाक, क्रौंच और हंस के पंखों से कम्पित निर्मल जल वाला सुदर्शन झील इस पृथ्वी पर तब तक स्थायित्व प्राप्त करे जबतक गगन मण्डल के सूर्य और चन्द्र विद्यमान हैं।

ऐतिहासिक महत्त्व

यह अभिलेख मध्य प्रदेश के जूनागढ़ नगर के पूरब स्थित गिरनार पहाड़ी के नीचे एक शिलाफलक पर उत्कीर्ण मिला है। इसी पर अशोक तथा रुद्रदामन के अभिलेख भी खुदे हैं। यह संस्कृत में 39 श्लोकों में है जिसमें सुराष्ट्र की राजनीतिक व्यवस्था तथा सुदर्शन झील के निर्माण का विवरण दिया गया है। इसमें ऐतिहासिक महत्त्व की तीन तीथियों का उल्लेख है—गु० सं० 136, 137 तथा 138।

विष्णु की आराधना से प्रारम्भ इसमें स्कन्दगुप्त के गौरवपूर्ण चरित्र की गाथा का गान है जिसको मलेच्छ देश (हूणों राज्य) में भी गाते थे। यह इसके हूण विजय को पुष्ट करता है। उसने गद्दी पर बैठते ही शासन को चुस्त करने के लिए प्रान्तों में गोप्तृनों की नियुक्ति किया। इसमें अधिकारियों के चयन के लिए गुणों का उल्लेख है। योग्य अधिकारी ही केन्द्र द्वारा यहाँ नियुक्त थे। सुराष्ट्र के योग्य अधिकारी पर्णदत्त की नियुक्ति तथा उसके गुणों की चर्चा इसमें है क्योंकि इस प्रान्त की स्थिति के कारण अधिकारी की नियुक्ति में राजा बहुत सजग तथा चिन्तित रहता था। इसने सुराष्ट्र के लिए योग्य अधिकारी की खोज मे अपने लड़के चक्रपालित को सर्वथा उपयुक्त समझकर नियुक्त किया था। उन्हीं दिनों सिंचाई के लिए वहाँ बने सुदर्शन झील का बाँध भयंकर वर्षा के कारण टूट जाने से उसके चारों ओर की भूमि जलमग्न हो गयी थी। जनता के कल्याणार्थ स्थानीय शासक चक्रपालित ने शीघ्र ही इसका पुनर्निर्माण कराकर वहाँ राहत दिया तथा नागरिकों के सुख, शान्ति एवं स्थायित्व की कामना किया।

इस लेख में मुख्य रूप से निम्नांकित बिन्दुओं की ओर संकेत है—

1. यह वैष्णव धर्म प्रधान काल था क्योंकि विष्णु की पूजा से अभिलेख प्रारम्भ है।

2. स्कन्दगुप्त गुणों की खान था तथा हूणों को इस लेख की रचना के पूर्व जीत चुका था क्योंकि मलेच्छ देश में इसका गुणगान होता था। इसका विस्तृत उल्लेख भीतरी स्तम्भ लेख की व्याख्या में किया जा चुका है।

3. उसने सभी प्रान्तों के लिए योग्य अधिकारी नियुक्त किया। अधिकारियों की योग्यता का मानदण्ड था मतिवान, विनीत, सत्यवादिता, उदारता, दानशीलता, भक्ति, शुद्ध बुद्धि, लोकहितैषी, न्यायी, उचित धनार्जन, अभिवृद्धि का चिन्तक तथा उचित व्यय के लिए सोचना, अकृतघ्न, कृतज्ञ न होना आदि।

4. सुराष्ट्र के 'गोप्ता' की नियुक्ति के लिए वह बहुत चिन्तित था। इसीलिए बहुत सोच तथा परखकर पर्णदत्त को यहाँ नियुक्त किया। लगता है यह हूणों के राज्य का सीमावर्ती क्षेत्र रहा होगा तथा उसकी सुरक्षा की समस्या को लेकर राजा का मन इतना उद्वेलित रहता था कि इस पद पर केन्द्र द्वारा नियुक्ति होती थी।

5. यह छूट थी कि 'गोप्ता' (गवर्नर) अपने प्रान्त में इच्छानुसार योग्यता का परीक्षण कर अधिकारियों को नियुक्त करें। तभी पर्णदत्त ने अपने क्षेत्र सुराष्ट्र नगर में योग्य अधिकारी की खोज में अपने पुत्र की गुणवत्ता परख कर नियुक्त किया। इससे शासन व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त होता है।

चक्रपालित के गुणों की चर्चा श्लोक सं० 14 से 25 में है। ये गुण हैं रक्षा, आत्मनियन्त्रण, प्रसन्नता, उदात्त भाव, क्षमा, प्रभुत्व, विनय, दान, मुक्ति, संयम, ऋण, उपकार, धैर्य, अविस्मय, विज्ञापन रहित दक्षता, दुष्टदमन, वात्सल्य आदि। इन्हीं गुणों वाले व्यक्ति को राजकार्य में नियुक्त किया जाता होगा।

6. सुदर्शन झील की यहाँ विस्तृत चर्चा है। इसका प्रयोजन था सिंचाई। इसी के लिए इसके किनारे तटबन्ध बनाया गया था। पाटलिपुत्र से केन्द्र सरकार इसको सुरक्षित रखने के लिए इतने दूरस्थ प्रांत में भी व्यवस्था करती थी। रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि मौर्यवंशीय शासक चन्द्रगुप्त मौर्य ने जन-कल्याण एवं सिंचाई के लिए सर्वप्रथम सुदर्शन झील का निर्माण अपने सुराष्ट्र के प्रान्तपति पुष्यगुप्त की देखरेख में कराया था। इसकी पूर्णता उसके पुत्र अशोक की आज्ञा द्वारा उसके प्रान्तपति यवन तुहशाष्प द्वारा हुई थी। पर रुद्रदामन के अधीन इस प्रदेश में उर्जयत पर्वत से निकलने वाली स्वर्णसिक्ता, पलाशिनी तथा अन्य नदियों की धारायें भारी वर्षा के कारण वेगशाली होकर उसके तटबन्ध को तोड़ दीं। इसने इसे पुनर्निमित कराया। इसमें बहुत अधिक पैसा खर्च हुआ। प्रस्तुत वर्णन से स्कन्दगुप्त के काल (गु० सं० 136 =) 455 ई० में यह पुनः टूट गया जिसे वहाँ के पुरपति चक्रपालित ने स्कन्दगुप्त के आदेशानुसार (गु० सं० 137=) 456 ई० में बनवाया। अतः गुप्त शासक अपने राज्य के सुदूर प्रान्त में भी सिंचाई तथा जनकल्याणार्थ सजग रहते थे। इसके बाद इस झील का इतिहास ज्ञात नहीं है और न आज इसका वहाँ कहीं पता है।

7. उस समय के आर्थिक संकट का ज्ञान यहाँ मिलता है। भयंकर वर्षा और बाढ़ का संकेत ऊपर किया गया है जो कृषि के लिए घातक थे। प्रायः यह विभीषिका आती रही होगी। दूसरी ओर चक्रपालित का 39वें श्लोक में यह कामना कि शताब्दियों तक यह नगर दुर्भिक्ष और सूखे से बचा रहे, इंगित करता है कि यहाँ और भी भयंकर विभिषिकाएँ थी। इनसे निपटना राज्य का कार्य था। इसी से जहाँ सिंचाई के लिए यह तटाक राज्य द्वारा बनवाया गया था वहीं इसकी मरम्मत भी राज्य ही कराता था।

8. इसमें कलात्मक रुचि थी। तभी ऊपर की बाँध की चर्चा में श्लोक 38 में झील के भीतर उतरने के लिए सीढ़ियों तथा ऊपर पक्का घाट का वर्णन है। यह नाप-जोखकर तैय्यार किया जाता था। यहाँ बाँध का माप हाथ और पुरुष में दिया गया है। ये मापन की इकाइयाँ रही होंगी। मन्दिरों का निर्माण भी किया जाता था। यहाँ खैतक पर्वत पर बने गु० सं० 138 = 457 ई० के विष्णु मन्दिर का उल्लेख है।

9. इसमें गु० सं० में तीन तिथियाँ दी गई हैं—136 तथा 137 दोनों तिथियाँ सुदर्शन झील से सम्बन्धित हैं तथा 138 तिथि विष्णु मन्दिर से जिसे चक्रपालित ने बनवाया था।

10. राजत्व का आदर्श था वात्सल्य। चक्रपालित अपने पुरवासियों को उनके गुण-दोष की भली प्रकार परीक्षा कर अपने पुत्र की तरह मानता था। (यां लालयामास च पौरवर्गान, स्वस्येव पुत्रान्सुपरीक्ष्य दोषान्।।) यही आदर्श अशोक के अभिलेखों में भी वर्णित है।

11. सर्वप्रथम इसी अभिलेख में गुप्त काल में गणना किए जाने का ज्ञान श्लोक सं० 45 में 'गुप्तानां काल' तथा श्लोक 27 में 'गुप्तां प्रकाले गणना विधाय' प्राप्त होता है। स्पष्ट है कि गुप्तकाल में एक नई गणना की विधि गु० सं० थी।

1. 'व्यपेत्य सर्वान्मनुजेन्द्रपुत्रां, लक्ष्मीः स्वयं यं वरयांचकार'॥—व्याख्या

इसका अर्थ है कि स्कन्दगुप्त को लक्ष्मी ने अन्य राजपुत्रों को त्यागकर वरण किया। यहाँ 'अन्य

राजपुत्र' तथा 'लक्ष्मी द्वारा वरण करना' ये दोनों वाक्य महत्त्वपूर्ण है। इसकी विवेचना स्कन्दगुप्त के भीतरी स्तम्भलेख के सन्दर्भ में किया गया है। (वहाँ देखिये— 'पितरिदिवमुपेते विप्लुतां वंश लक्ष्मीं'।)

2. 'गुप्तां प्रकाले गणना विधाय' की व्याख्या (गुप्त संवत्)

अभिलेख की यह पंक्ति अत्यन्त महत्त्व की है। इससे स्पष्ट है कि गुप्त काल में गणना की एक विशिष्ट परम्परा थी। यदि हम गुप्त लेखों का अध्ययन करें तो ज्ञात होता है कि गुप्त काल में गणना की एक विशिष्ट परम्परा थी जो गुप्त राजाओं के समय में प्रचलित थी। नालन्दा तथा गया प्लेट समुद्रगुप्त के राज्य के 5वें और 9वें वर्ष के उत्कीर्ण हैं। इस वर्ष का कोई भी उल्लेख इस तिथि के साथ नहीं मिलता। समुद्रगुप्त गुप्तवंशीय शासकों के क्रम में दूसरा था। इसके पूर्व सम्भव है 4 वर्ष तक चन्द्रगुप्त प्रथम शासक रहा क्योंकि उसके काल के किसी राजनीतिक घटना का ज्ञान नहीं मिलता। इसलिए साधारणतया यदि हम विश्वास कर लें कि यह तिथि गुप्त सम्वत् की है तो इसमें कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी। समुद्रगुप्त के बाद चन्द्रगुप्त गद्दी पर बैठा। इसके अभिलेखों में भी 61, 89 का उल्लेख है। इसके बाद इसका पुत्र कुमारगुप्त 117 में शासक था जैसा करमदण्डा के शिवलिंग अभिलेख से ज्ञात होता है। इसी का पुत्र स्कन्दगुप्त का यह लेख 136 में उत्कीर्ण है और इसी में लिखा है कि 'गुप्तां प्रकाले गणना विधाय'। इससे स्पष्ट है कि गुप्त काल में गणना की एक विशिष्ट विधि प्रचलित थी। यही विधि गुप्त काल के समसामयिक राजाओं ने भी अपनायी। इसी से उनके अभिलेख में भी इसी क्रम की तिथियाँ मिलती हैं। इस प्रकार ऊपर के विवरणों से सिद्ध होता है कि इस तिथि का गणना क्रम गुप्त-वंश के प्रथम राजा के शासन काल से प्रचलित थी।

दूसरी समस्या है कि इस तिथि को किस नाम से सम्बोधित किया जाय ? इस अभिलेख का वाक्य— 'गुप्तां प्रकाले गणना विधाय' सिद्ध करता है कि गुप्तों की काल गणना की विशिष्ट परम्परा थी। यह कुमारगुप्त के सारनाथ तथा बुद्धगुप्त के अभिलेखों से भी ज्ञात होता है कि इन राजाओं की तिथियाँ गुप्त संवत्सर— 'गुप्त संवत्सरे' में है। इसी क्रम में परिव्राजक राजा उच्छकल्प के अभिलेख में तिथियाँ मिलती हैं क्योंकि तब गुप्त शासक शासन कर रहे थे ऐसा वहाँ लिखा है। मध्य-भारत के शासक हस्तिन के लेख में भी इसी क्रम की तिथि में 'गौप्ताब्दे' गुप्त काल की गणना की परम्परा प्रयुक्त है। स्पष्ट है कि गुप्त राजाओं के काल में गणना की विधि 'गुप्त संवत्' थी।

अल्बरूनी अपने भारत-यात्रा-विवरण में कहता है कि गुप्त शासक दुष्ट प्रकृति के थे। इनके शासन की समाप्ति पर प्रसन्नता में जनता ने इनके शासन काल की गणना को गुप्त-संवत् नाम से सम्बोधित किया। बल्लभी सम्भवतः इनका अन्तिम शासक था। गुप्त संवत् की तरह बल्लभी संवत् 241 शक संवत् के बाद प्रारम्भ होती है। अतः गुप्त संवत् और बल्लभी संवत् एक ही हैं। पर पीछे उसने अपने मत में परिवर्तन किया और कहा कि गुप्त संवत् बल्लभी संवत् के बाद प्रारम्भ हुआ। इससे ज्ञात होता है कि गुप्त तथा शक संवत् के बीच 241 वर्षों का अन्तर है।

इसका कथन कि गुप्त संवत् और बल्लभी संवत् एक ही है कुछ सीमा तक मान्य है। परन्तु गुप्त संवत् बल्लभी संवत् के बाद प्रारम्भ हुआ विश्वसनीय नहीं है क्योंकि बल्लभी मैत्रक वंश का प्रथम शासक था। इसके अभिलेख से ज्ञात होता है कि यह गुप्त राजा का भट्टारक था। इसलिए उचित नहीं प्रतीत होता कि एक नायक अपने नाम से एक काल गणना प्रारम्भ करे जिसे उसका स्वामी पीछे अपना ले। बल्लभी का उत्तराधिकारी था द्रोणसिन्हा। इसके एक अभिलेख में अज्ञात संवत् की 206 तिथि अंकित है। यदि विश्वास कर भी लिया जाय कि बल्लभी संवत् प्रथम बल्लभी शासक

ने शुरू किया था तो दूसरा बल्लभी शासक उसके 206 वर्ष बाद गद्दी का उत्तराधिकारी बना, विश्वसनीय नहीं। इसलिए इनके अभिलेख किसी दूसरे तिथि क्रम में अंकित होंगे। सम्भव है कि तिथि गणना में इन्होंने अपने मालिक की तिथि अपना ली हो। सम्भवतः गुप्त संवत् गुप्त साम्राज्य के संस्थापक द्वारा स्थापित किया गया था जिसे पीछे बल्लभी के शासकों ने अपना लिया जो पीछे उनके नाम के साथ बल्लभी संवत् के नाम से प्रचलित हुआ।

अल्बरूनी के अनुसार गुप्तकाल और शक काल के बीच 241 वर्षों का अन्तर है। इसकी पुष्टि उन्होंने विभिन्न तिथियों की तुलना करके किया है यथा—953 शक संवत् तथा 712 बल्लभी काल = गुप्त संवत् के। यदि शक संवत् में से इस बल्लभी संवत् की तिथि को घटा दिया जाय तो 241 वर्षों का अन्तर होता है। यदि विक्रम संवत् में से शक संवत् घटा दिया जाय तो 135 वर्षों का अन्तर पड़ता है। ज्योतिषसार से ज्ञात होता है कि शक संवत् तथा विक्रम संवत् के बीच 135 वर्षों का अन्तर है। अल्बरूनी की गणना यद्यपि ठीक है फिर भी उनका विवरण उचित नहीं प्रतीत होता। विवरण सम्बन्धी दोष सम्भवतः अल्बरूनी का अनुश्रुति द्वारा प्राप्त ज्ञान के कारण ही होगा। इस प्रकार का दोष अल्बरूनी के विवरणों में मिलता है। शक संवत् के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार का दोषयुक्त विवरण वह देता है कि मालवा में शकों के पराजय के बाद यह संवत् प्रारम्भ हुआ।

कुमारगुप्त के मन्दोसर अभिलेख से तिथियों में अन्तर स्पष्ट हो जाता है। इस लेख तिथि 529 मालव संवत् है। अभिलेख की पहली तिथि 493 विक्रम संवत् है। यह तिथि मालव संवत् से 36 वर्ष पूर्व की है। इसके अनुसार कुमारगुप्त की तिथि 358 तक सम्वत् निर्धारित होती है। इसमें से यदि अल्बरूनी के अनुसार 241 घटा दिया जाय तो 117 बचता है। यह गुप्त संवत् की गणना है। वास्तव में कुमारगुप्त इस तिथि में शासन करता था क्योंकि इसका कर्मदण्डा शिवलिंग अभिलेख 117 गु० सं० में अंकित है।

हस्तिन के अभिलेख से ज्ञात होता है कि 397 शक संवत् =156 गु० सं० है। इस प्रकार की अनेक शक और गुप्त संवतों का साथ-साथ उल्लेख परिचायक है कि शक संवत् और गुप्त संवत् के बीच 241 वर्षों का अन्तर है। यथा—

394	श० सं०	= 153	गु० सं०		
395	"	= 154	"		प्रत्येक में 241 वर्षों का अन्तर है।
396	"	= 155	"		
397	"	= 156	"		

यद्यपि फ्लीट ने शक संवत् और गुप्त संवत् के बीच 242 वर्षों का अन्तर करने का प्रयास किया है। पर ऊपर के गणना के आधार पर यह विचार प्रमाण विहीन प्रतीत होता है।

किसने, क्यों और कब इस गुप्त संवत् को प्रचलित किया ?

यह मान्य है कि गुप्त संवत् 319-20 ई० से प्रारम्भ हुआ था। पर यह क्यों प्रारम्भ किया गया था ? इस सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। डॉ० आर० डी० बनर्जी के अनुसार यह संवत् गुप्त और लिच्छवियों के बीच चन्द्रगुप्त प्रथम के समय होने वाले वैवाहिक सम्बन्ध की प्रसन्नता में प्रचलित किया गया था। लिच्छवी बहुत शक्तिशाली थे। उनका गुप्त शासकों से रक्त सम्बन्ध युग निर्माण की घटना मानी गई है। डा० आर० सी० मजुमदार के अनुसार गुप्त नामक नए वंश ने मगध के सिंहासन पर बैठते ही यह संवत् प्रारम्भ किया। इसीलिए यह गुप्त संवत् के नाम से जाना जाता है। डा० फ्लीट के अनुसार

पहले अनेक शक्तियाँ मगध पर लगी थीं। इनसे छुटकारा पाने के कारण यह तिथि प्रचलित की गई। डा॰ ब्यूलर के अनुसार चन्द्रगुप्त प्रथम के गद्दी पर बैठने पर यह संवत् प्रारम्भ हुआ। यह भी एक सम्भावना है कि जब समुद्रगुप्त ने सुन्दरवर्मन तथा अच्युत, नागसेन एवं कोट से युद्ध में पाटलिपुत्र का साम्राज्य प्राप्त कर लिया था तब यह संवत् प्रचलित हुआ। यह बात कुछ अधिक ठीक लगती है क्योंकि समुद्रगुप्त एक महव्वाकांक्षी शासक था। उसके साथ नया संवत् जोड़ने की बात अधिक मान्य प्रतीत होती है।

इस संवत् को किसने स्थापित किया था ? इनमें दो मत हैं—

1. इसका प्रारम्भ चन्द्रगुप्त प्रथम ने किया था क्योंकि वही वंश का संस्थापक था। उसी ने लिच्छवियों के साथ मैत्री एवं वैवाहिक समबन्ध स्थापित कर मगध के राज्य को पड़ोसी शत्रु से सुरक्षित कर लिया। इसीलिए नालन्दा और गया पत्रों के आधार पर जो समुद्रगुप्त के समय के हैं यह धारणा ज्ञात होती है क्योंकि समुद्रगुप्त के समय के ये उत्कीर्ण हैं।

2. डॉ॰ आर॰ सी॰ मजुमदार के अनुसार यह संवत् समुद्रगुप्त ने चलाया। वह इस वंश का दूसरा, ख्याति प्राप्त शासक और विजेता था जिसने शत्रुओं से सुरक्षित इस राज्य को प्राप्त कर प्रसन्नता में गुप्त संवत् प्रचलित किया।

पर इन दोनों विचारों की अपेक्षा यह समीचीन है कि लिछवियों ने गुप्त संवत् प्रचलित किया हो क्योंकि उन्होंने गुप्त शासकों से वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा अपनी सामाजिक स्थिति को ऊँचा कर लिया था। मनुस्मृति में लिच्छिवियों को व्रात्य-क्षत्रिय कहा गया है जिसका अर्थ है क्षत्रियों से नीचे के स्तर का। इस स्तर को सम्भवतः गुप्त शासक चन्द्रगुप्त प्रथम के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर इन्होंने ऊँचा उठा था जिसकी प्रसन्नता में गुप्त राजाओं के प्रति इस कार्य द्वारा कृतज्ञता स्वरूप किया गया होगा।

अतः गुप्त संवत्, शक संवत् के 241 वर्ष बाद 319-20 ई॰ में लिच्छिवी राजाओं द्वारा प्रारम्भ किया गया था जब मगध के सिंहासन पर उनके दामाद चन्द्रगुप्त प्रथम का शासन था।

13. स्कन्दगुप्त का इन्दौर ताम्रपत्र-अभिलेख-वर्ष 146

(Indore Copper Plate Inscription of Skandgupta–Year 146)

स्थान : ग्राम-इन्दौर, तहसील-अनूपशहर, जिला बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश

भाषा : संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी (उत्तरी वर्गीय, पाँचवीं शती ई॰ का मध्य)

काल : वर्ष 146 (गु॰ सं॰ में = 465 ई॰)

विषय : देवविष्णु ब्राह्मण द्वारा इन्द्रपुर में सूर्य मन्दिर को अक्षयनीवी दान दिए जाने का उल्लेख

मूल-पाठ

1. सिद्धम् (॥)
   यं विप्रा विधिवत्प्रबुद्ध-मनसो ध्यानैकताना स्तुवः[1]
   यस्यान्तं त्रिदशासुरा न विविदुर्न्नोर्ध्वं न तिर्य-

---

1. पढ़ें : ॰तानस्तवाः ; या सतुमः,

2. ग्गति[म्][1] (।)
यं लोको बहु-रोग-वेग-विवशः संश्रित्य चतोळभः
पायाद्वः स जगत्पि[धा]न-पुट-भिद्रश्म्या
3. करो भास्करः ।। 1
परमभट्टारक-महाराजाधिराज-श्रीस्कन्दगुप्तस्याभिवर्द्धमान-विजय-राज्य-संव्वत्सर[2]-शते षच्चत्वा-[3]
4. [रि]ड्शदुत्तरतमे[4] फाल्गुन-मासे तत्प(ा)द-परिगृहीतस्य विषयपति-शर्व्वनाग-स्यान्तर्व्वेद्या[5] भोगाभिवृद्धये वर्त्त-
5. माने चेन्द्रापुरक[6]-पद्मा-चातुर्विर्वद्य-सामान्य-ब्राह्मण-देवविष्णुर्द्देव-पुत्रो[7] हरित्रात-पौत्रः डुडिक-प्रपौत्रः सतताग्निहो-
6. त्र-छन्दोगो[8] राणायणीयो[9] वर्षगण-सगोत्त इन्द्रापुरक-वणिग्भ्यां[10] क्षतियाचलवर्म-भृकुण्ठसिङ्हाभ्यामधिष्ठा-[11]
7. नस्य प्राच्यां दिशीन्द्रपुराधिष्ठान-माडास्यात[12]-लग्नमेव प्रतिष्ठापितक-भगवते सवित्रे दीपोपयोज्यमात्म-यशो-
8. भिवृद्धिये मूल्यं प्रयच्छतिः[13] (।।) इन्द्रपुर-निवासिन्यास्तैळिक-श्रेण्या जीवन्त-प्रवराया[14] इतो(ऽ)धिष्ठानादपक्क्रम-
9. ण-संप्रवेश-यथास्थिरायाः आजस्रिकं ग्रहपतेर्द्विज-मूल्य-दत्तमनया[15] तु श्रेण्या पदभग्न-योगम्

---

1. फ्लीट ०ग्गतिः
2. पढ़ें : सव्वत्सर या संवत्सर
3. पढ़ें : षट्चत्वा०
4. पढ़ें : रिंश०
5. The traditional Antarvedi is the country lying between the Ganges and the Juman and between Prayaga and Hardwar. The Bulandshahr District lies actually in this Antarvedi Cf. कालिन्दी-नर्मदयोर्मध्यं (*infra,* No. 35, नैही 3.)
6. Fleet चन्द्रापुरक. Cf. Jagannath in *Proc., I.H.C.,* Lahore, 1940, p. 59. Indrapura is Indopre, the findspot of the recotd. The same spelling of the name is found in line 6 thought lines 7 and 8 have Indrapura.
7. "The Brahmana Devavishnu who is the son of Deva and belongs to the community of the Chaturvedins of [the locality called] Padma in [the town called] Indrapura."
8. पढ़ें : च्छन्दोगो
9. पढ़ें : नीचे
10. Note that the Kahatruiyas adopted the conventional profession of the Visyas.
11. पढ़ें : भुकुण्ठसिंहा०. Fleet : ० rDtMxt
12. Fleet could not find out the mening of माडास्यात which howerver appears to be the name of a locality in the town if Indrapura. मूल्य = endowment of which the interest or income was to be utilised [for the maintenance of a lamp for the Sun-god]. लग्र = touching. the deity was installed on the boundary of Madasyata.
13. Read प्रयच्छति. the *visurga* mayu have also been meant for a mark of punctuation.
14. Jivanta was the *Pravara* or President of thge oilmen's guild.
15. आजस्रिक = अजस्र = perpetual. दत्त = gift. Better, दत्तम्। अनाया-

10. प्रत्थमार्हाव्य(व)च्छिन्न-संस्थं[1] देयं तैलस्य तुल्येन[2] पलद्वयं तु 2[3] चन्द्राक्र्क-समकालीयं(यम्) (॥)
11. यो व्यक्क्रमेद्दायमिमं[4] निबद्धम्[5]
    गोघ्नो गुरुघ्नो द्विज-घातकः सः (।)
    तैः पातकै(:)
12. पञ्चभिरन्वितो(ऽ)ध-
    र्ग्गच्छेन्नरः[6] सोपनिपातकैश्चेति। 2

हिन्दी अर्थान्तर

1-2. सिद्ध हो। जिनका निश्चित कार्यों के सम्पादन में मन लगा रहता है तथा एकान्तिक रूपेण ध्यान करने वाले ब्राह्मण लोग भजते हैं देवता और असुर जिनकी न तो ऊर्ध्वात्मक गतिसीमा जान सके हैं और न तिरछी, जिनके शरणागत होने पर अनेक रोगों तथा उद्वेगों से विवश मनुष्य चेतना प्राप्त करते हैं, संसार के अन्धकार को भेदने वाली किरणों के स्रोत वह सूर्य भगवान आपकी रक्षा करें।

3-4. परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री स्कन्दगुप्त के अभिवर्द्धमान विजयोन्मुखी 146वें शासन वर्ष में प्रसन्नता की वृद्धि के लिए चालू फाल्गुन मास में उनकी चरणों की कृपा से स्वीकृत विषयपति शर्वनाग के अन्तर्वेदी प्रदेश में

5-7. और इन्द्रापुर (नगर) के पद्मा (मोहल्ले) के चतुर्वेदी समाज का देवविष्णु ब्राह्मण, देवका पुत्र, हरित्तात का पौत्र, डुडिक का प्रपौत्र सदा अग्निहोत्रों का पाठ करता रहता है। वह नारायणीय शाखा के वर्षगण गोत्र में उत्पन्न हैं—अपने यश की वृद्धि के लिए यह अक्षयनीवी दान देता है। इसका उपयोग इन्द्रपुर के वणिकों, क्षत्रिय अचलवर्मा तथा मुकुण्ठ सिंह द्वारा नगर के पूर्व में इन्द्रपुर नगर के माडस्यात (मोहल्ले) का स्पर्श करते हुए (मन्दिर में) प्रतिष्ठित सूर्य भगवान के दीपक (जलाने की व्यवस्था) में किया जाय।

8-10. सूर्य (मन्दिर) का यह ब्राह्मण द्वारा दान इन्द्रपुर में निवास करने वाली तथा जीवन के नेतृत्व में स्थित तैलिक श्रेणी की अविच्छिन्न सम्पत्ति है (तब तक) जब तक तैलक श्रेणी स्थिर (संगठित) है यहाँ तक की इस स्थान से दूर जाने और लौटने पर भी। किन्तु इस श्रेणी द्वारा अविच्छिन्न रूप से तथा मूल मूल्य में बिना किसी ह्रास के जब तक सूर्य और चन्द्र धरती पर विद्यमान हैं दो (2) पल तौल का तेल देय है।

11. इस उल्लिखित दान का जो व्यतिक्रम करेगा वह गोघाती, गुरुघाती, द्विजघाती की तरह अपराधी बनेगा तथा उपपातकों सहित पंचमहापातकों से युक्त होकर नरक में जायेगा।

---

1. पढ़ें : प्रयमा॰
2. तुल्य 2 = तौल्य
3. तुल्येन पलद्यद्वयम्। यह उसका संक्षेप है
4. सही पाठ : योऽतिक्रमे॰
5. पढ़ें : निबङ्घं
6. पढ़ें : ॰धो गच्छे॰

14. बुद्धगुप्तकालीन एरण प्रस्तर स्तम्भ लेख (सं० 165)
(Eran Stone Pillar Inscription of the time of Buddhagupta 165)

स्थान : एरण, जिला सागर, म० प्र०

भाषा : संस्कृत

लिपि : उत्तर भारतीय गुप्त ब्राह्मी

काल : गु० सं० 165 (= 484 ई०)

विषय : मातृविष्णु और धन्यविष्णु द्वारा जनार्दनदेव के सम्मान में स्तम्भ स्थापित करना

सन्दर्भ : गोयल, गु० का अ०, पृ० 288, पाण्डेय, हि० लि० इ०, पृ० 106,

मूल-पाठ

1. जयति विभुश्चतुर्भुजश्चतुरर्ण्णव-विपुल-सलिल-पर्य्यङ्कः
   जगतः स्थित्युत्पत्ति-न्य[यादि]-[1]
2. हेतुर्ग्गरुड-केतुः (॥) 1
   शते पञ्चषष्ट्यधिके वर्षाणां भूपतौ च बुधगुप्ते।
   आषाढ-मास-[शुक्ल]-
3. [द्वा]दश्यां[2] सुरगुरोर्द्दिवसे।(।) 2
   सं० 100 (+) 60 (+) 5 (॥)
   कालिन्दी-नर्म्मदयोर्म्मध्यं पाळयति लोकपाल-गुणै-[3]
   र्ज्जगति महा[राज]-
4. श्रियमनुभवति सुरश्मिचन्द्रे च।(।) 3
   अस्यां संवत्सर-मास-दिवस-पूर्व्वायां[4] स्वकर्म्माभिरतस्य क्रतु-याजि[नः]
5. अधीत-स्वाध्यायस्य विप्रर्षेर्म्मैत्रायणीय-वृषभस्येन्द्रविष्णोः प्रपौत्रेण पितुर्गुणानुकारिणो वरुण[विष्णोः]
6. पौत्रेण पितरमनुजातस्य[5] स्व-वंश-वृद्धि-हेतोर्हरिविष्णोः पुत्रेणात्यन्त-भगवद्भक्तेन विधातुरिच्छया स्वयंवरयेव र[ा]ज-

---

1. The restoration is due to Hall. न्यय = क्षय = प्रलय
2. Prinsep : त्रयो०. The date is Thursday, the 21st June, 484 A. D. This is the earliest use of the name of the weekdays, which the Indian learnt probably from woirks of the Greek astronomers of Alexandria. Greek influence on Varahamihira (xisth century A.D.) is well known. His *Paulisasiddhanta* is based on the works of Paul of Alexandria (c. 378 A.D.) ; cf. also his *Romakasiddhanta* in which *Romaka* = Graeco-Roman.
3. Read गुणैः । जगति . With the province called कालीन्दी-नर्म्मदा-मध्य, compate अन्तर्वदी of *supra,* No. 27, line 4. Rivers were apparently taken to be the natural boundaries of some of the Gupta *vishayas.*
4. पूर्व्वायां (=duing the above) is a idiomatic use for पूर्व्वायां तिथौ, See above, p. 137, note 3.
5. पितरम् अनुजातः = one who takes after or resembles his father pin merits].

7. लक्ष्म्याधिगतेन चतुःसमुद्र-पर्य्यन्त-प्रथित-यशसा अक्षीण-मानधनेकानेक-शत्रु-समर-जिष्णुना महाराज-मातृविष्णुन[ा]
8. तस्यैवानुजेन तदनुविधायिन[ा] तत्प्रसाद-परिगृ[ही]तेन धन्यविष्णुना च। मातृप्रित्रोः[1] पुण्याप्यायनार्थमेष भगवतः।
9. पुण्यजनार्द्दनस्य[2] जनार्द्दनस्य ध्वजस्तम्भो(ऽ)भ्युछितः (॥) स्वस्त्यस्तु गो-ब्राह्मण-[पु]रोगाभ्यः सर्व्व-प्रजाभ्य इति।(।)

हिन्दी अर्थान्तर

चारों समुद्रों के विपुल जल की शैय्या वाले, जगत की स्थिति, उत्पत्ति तथा संहार के कारण, गरुड प्रतीक वाले चतुर्भुज भगवान विष्णु की जय हो। वर्ष एक सौ पैसठ में जब बुद्धगुप्त राजा आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी वृहस्पतिवार 100 (+) 60 (+) 5 [=165] को। कालिन्दी, यमुना और नर्मदा नदियों के मध्य की भूमि पर लोकपाल के गुणों से युक्त सुरश्मिचन्द्र शासन करता है तथा संसार में महाराज होने की महिमा की अनुभूति करता है।

ऊपर संवत्सर, मास तथा दिवस जो निर्दिष्ट है, इस तिथि को इन्द्र विष्णु के प्रपौत्र महाराज मातृविष्णु अपने कर्तव्य में परायण, यश करने वाले, शास्त्रों के स्वाध्याय में लगे हुए ब्रह्मर्षि तथा मैत्रायणी शाखा के अनुयायियों में सर्वश्रेष्ठ (वृषभ) थे। वह उस वरुण विष्णु के पौत्र हैं जो अपने पिता के गुणों का अनुकरण करने वाले थे। वह भगवान के अनन्य भक्त हैं तथा जिसको ईश्वर की कृपा से राजलक्ष्मी ने स्वयं वरण किया है। उनका यश चारों समुद्रों तक फैला है। वह अक्षय मान और धन वाले हैं तथा युद्ध में अनेक यश वाले चारों शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले हैं। उनके ही अनुज उनके प्रति आज्ञाकारी, उनकी कृपा से धन्यविष्णु द्वारा माता-पिता के पुण्य की अभिवृद्धि के लिए दैत्यों के पीड़क भगवान जनार्दन-विष्णु का यह ध्वज स्तम्भ स्थापित किया गया। समस्त प्रजा का जिसमें प्रमुख रूप से गो-ब्राह्मण भी सम्मिलित हैं, कल्याण हो।

15. भानुगुप्तकालीन एरण प्रस्तर स्तम्भलेख (सं० 191)

(Eran Stone Pillar Inscription of the time of Bhanugupta-Year 191)

स्थान : एरण, जिला सागर, म० प्र०

भाषा : संस्कृत

लिपि : 6ठी शताब्दी के प्रारम्भ की उत्तर भारतीय ब्राह्मी

काल : गुप्त संवत् 191 (=510 ई०)

विषय : भानुगुप्त के मित्र गोपराज के युद्ध में मारे जाने पर उसकी पत्नी के सती होने का उल्लेख

सन्दर्भ : श्रीराम गोयल, गु० का० अ०, पृ० 317-21, वा० उपाध्याय, गु० अ०, पृ० 180

---

1. पढ़ें : मातापित्रोः
2. पुण्यजनार्दन = राक्षसों कष्ट देने वाला (पुण्यजन)

मूल-पाठ

1. ॉ[1] संवत्सर शते एकनवत्युत्तरे श्रावण-बहुलपक्ष-स[प्त]म्य[ां](म्याम्) (।)
2. संवत् 100 (+) 90 (+) 1 श्रावण-ब-दि[2] 7॥
   * * क्ल[3]-वङ्शादुत्पन्नो[4] * 5
3. राजेति विश्रुतः (।)
   तस्य पुत्रो(ऽ)तिविक्क्रान्तो नाम्ना राजाथ माधवः ॥ 1
   गोपराज[:]
4. सतुस्तस्य श्रीमान्विख्यात-पौरुषः (।)
   शरभराज-दौहित्रः स्व-वङ्श[6]-तिलको(ऽ)धुना(?) (॥) 2
5. श्री-भानुगुप्तो[7] जगति प्रवीरो
   राजा महा(न्) पार्थ-समो(ऽ)ति-शूरः(।)
   तेनाथ सार्द्धन्त्विह गोपर[ाजो]
6. मित्रानु[गत्येन] किलानुयातः ॥ 3
   कृत्वा (च) [यु]द्धं सुमहत्प्रक[ा]शं
   स्वर्ग्गं गतो दिव्य-न[रे?] [न्द्र-कल्पः] (।)
7. भक्तानुरक्ता च प्रिया च कान्ता
   भ[ार्य्याव]ल[ग्न]ानुगता[ग्नि]र[ा]शिम् ॥ 4

हिन्दी अर्थान्तर

सिद्धम्। संवत् एक सौ इक्यानवे में श्रवण मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी को (अंकों में 100 + 90 + 1) श्रावण मास के बहुल पक्ष में दिवस 7 को....क्लवंशोत्पन्न...राजा नाम से प्रसिद्ध राजा था। उसका पुत्र वह अति पराक्रमी माधव नामक राजा था॥ 1॥ उसका पुत्र तथा शरभ राज का दौहित्र विख्यात पौरुष वाला श्रीमान् गोपराज था जो अब भी अपने वंश का तिलक है॥2॥ जगत में परमवीर, महान राजा, अर्जुन के समान तथा अति शूर श्री भानुगुप्त हैं। इनके साथ गोपराज ने अपने मित्रों का अनुगमन किया और यहाँ आये॥3॥ यह युद्ध कर जो लगभग नरेन्द्र (इन्द्र) के समान था स्वर्गगामी हुआ। उसकी भक्ति में भावयुक्ता, अनुरक्ता प्रिया और सुन्दरी भार्या चिता पर घनिष्ठतापूर्वक चढ़ गई॥4॥

---

1. सिद्धम् = एक प्रतीक द्वारा व्यक्त
2. ब = तथा बहुल-पक्ष तथा दि = दिवस
3. फ्लीट ने 'क्षल' पढ़ा है।
4. पढ़ें : वंशा०
5. यहाँ हो सकता है : ध्रुवराज, या गोपराज?
6. पढ़ें : वंश
7. लगता है वैन्य गुप्त पूर्वी गुप्त राज्य में शासक था तथा भानुगुप्त पश्चिमी भाग में शासक था। यह दो शाखाओं का साथ शासन बताता है।

16. विष्णुगुप्त का मंगराव अभिलेख

(Mangraov Inscription of Vishnu Gupta)

स्थान : बक्सर के समीप गाँव : मंगराव, जिला बक्सर, बिहार

भाषा : संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी

काल : आठवीं सदी

विषय : शिवमन्दिर के लिए तेल दान की व्यवस्था।

ओं महाराजाधिराजपरमेश्वर श्री विष्णुगुप्तदेवप्रवर्द्धमानविजय राज्य संवत्सरे गुप्तवंशे संवत् 110 (+) 7 श्रावण शुदि 2 चुन्दस्कीलातपोवन प्रतिष्ठित श्रीमित्रकेशवदेव प्रतिवद्धपुष्पपट्टे स्वसिद्धान्तभिरत अनेकशिवसिद्धातनतीर्थावगाहने पवित्रोकृतः तनुः कुट्टुकदेशीय अविमुक्तज्जः अंगारग्रामके सकल कुटुम्बिनां सकासादाचन्द्रार्कक्षिति समकालीनं तैलस्य पलमेकमुपक्रीय भगवतः श्री सुभद्रेश्वर देवस्य प्रदीपार्थ प्रतिपादतिवान्। एवं योन्यथा करोति यदत्रापायं स्तनदवाप्नोतीति। लिखिता देवदत्तेन संक्षिप्ता क्रमचीरिका। उत्कीर्णा सूत्रधारेण कुलादित्येन धीमता।

हिन्दी अर्थान्तर

ओऽम्। महाराजाधिराज परमेश्वर श्री विष्णुगुप्तदेव के वैभवपूर्ण वर्ष के 117वें साल में श्रावण शुदि द्वितीया मित्र केशवदेव के मन्दिर से सम्बन्धित पुष्पवाटिका में चुन्दस्कीला के तपोवन में कुटुकदेश का निवासी जो अपने सिद्धान्त में अनुरक्त हैं तथा जिसका शरीर शिव सम्बन्धी पवित्र स्थानों के जल से पवित्र हो गया है, अंगार ग्राम के कुटुम्बियों से क्रय करके एक पल तेल को भगवान श्री सुभद्रेश्वर के दीपक के निमित्त दान किया है, जो पृथ्वी, चन्द्र तथा सूर्य के समय तक स्थिर रहे। जो इस व्यवस्था को नष्ट करेगा वह पाप का भागी होगा। देवतत्त के क्रयलेख का संक्षिप्त किया। सूत्रधार कुलादित्य ने उत्कीर्ण किया।

ऐतिहासिक महत्त्व

बिहार के बक्सर जिले के मंगराव ग्राम से यह अभिलेख प्राप्त हुआ है। जो बहुत छोटा होने पर भी यह विभिन्न दृष्टियों से बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है। यह विष्णुगुप्त के शासनकाल के 17वें वर्ष में उत्कीर्ण है जो 'संवत' 117 में शासक था। 117 'संव' में र्सव शब्द आज भी विवाद का विषय है। मंगराव में सुभद्रेश्वर का एक मन्दिर था। उसी मन्दिर में तेल से दीप जलाने के लिए एक व्यक्ति द्वारा जो अङ्गार ग्राम का रहने वाला था यहाँ भूमि दान का वर्णन मिलता है।

अक्षरों विशेषताएँ

अक्षरों के निर्माण की दृष्टि से यह अभिलेख गुप्त शासकों के अवनति काल का है। अक्षरों की बनावट इतनी अधिक कोणदार हो गई है कि इसकी लिपि को कुटिल लिपि की संज्ञा दी जा सकती है। इसकी दाएँ की रेखाएँ कुछ अधिक लम्बी हैं।

इसमें स्वरों के चिह्न भी अब तक के सामान्य चिह्नों की अपेक्षा कुछ विशिष्ट प्रकार के बने हैं।

विशेष रूप से इस अभिलेख के अक्षर प, भ, म अपने बनावट में विशेषता रखते हैं। इनकी समता अफ़सद अभिलेख के अक्षरों से की जा सकती है, जो कुटिल लिपि के हैं।

अभिलेख की तिथि

यह विष्णुगुप्त के शासन काल के 17वें वर्ष में उत्कीर्ण किया गया है। इसके साथ ही 117 संव (संवत्) शब्द भी लिखा है। यह किस काल गणना का द्योतक है ? आज भी समस्या है। डॉ० अल्तेकर तथा डॉ० छाबरा के बीच इस विषय पर बहुत अधिक विवाद चला कि इसमें किसी काल गणना की तिथि का उल्लेख है अथवा नहीं।

डॉ० छाबरा ने अभिलेख में इस पाठ को इस प्रकार से पढ़ा है—

......सप्त......दशे सम्वत् 17'

इस पाठ के आधार पर इनका विचार है कि इसमें किसी काल गणना की तिथि का उल्लेख नहीं है पर जिस समय लिखा गया है उस समय के शासन के वर्ष का अंकों और अक्षरों में उल्लेख है। डॉ० अल्तेकर ने इसे इस प्रकार पढ़ा है—

'सम्व 117'

इनका विचार है कि कोई भी गुप्त शासक अपने राज्यारोहण से गिने जाने वाले शासन काल के वर्षों में अभिलेख नहीं लिखवाया है पर सबके अभिलेखों में गुप्त संवत् का ही प्रयोग है। इसलिए यहाँ भी किसी-न-किसी काल गणना का उल्लेख अवश्य है। इसमें 'सम्व' शब्द ही मिलता है। सम्भवतः इसका 'त' अपठनीय हो गया है या खोदने वाले के जल्दी के कारण छोड़ दिया है जिसके बाद 100 + 10 + 7 लिखा है। यदि हम इसे संवत मानने के आधार पर इस राजा की तिथि को देखें तो हमारी गणना सही प्रतीत होगी। लिपि के आधार पर भी यही तिथि समुचित प्रतीत होती है। इस प्रकार डॉ० अल्तेकर के अनुसार इस तिथि में प्रशासकीय काल तथा काल गणना के तिथि क्रम दोनों का ही उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार काल गणना के तिथि क्रम का इस अभिलेख में उल्लेख लगता है। पर यह गणना क्रम कौन-सी है ? स्पष्ट नहीं। यदि अक्षरों की बनावट पर ध्यान दिया जाय तो यह अभिलेख आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का है। इसलिए इस अभिलेख का वर्णित शासक गुप्त वंशीय शासकों के अन्तिम चरण का माना जा सकता है। यह आदित्यसेन के बाद ही गुप्त राजाओं के वंशावली में रखा जा सकता है क्योंकि आदित्यसेन के अफ़सद अभिलेख में अवनति काल के गुप्त शासकों की जो तालिका दी गई है, उसमें इसका नाम नहीं आता। अतएव यह उनके बाद का ही रहा होगा। इस क्रम के माधवगुप्त तथा कुमारगुप्त को बाणभट्ट ने 'मालव राजपुत्रौ' कहा है। ये हर्ष के समकालीन थे। इससे यह बी ज्ञात होता है कि माधव हर्ष के साथ देवगुप्त प्रथम के विरुद्ध युद्ध क्षेत्र में गया था। हर्ष 606 ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ था। इसलिए आदित्यसेन जो माधवगुप्त का उत्तराधिकारी था सातवीं शताब्दी के मध्य में मगध के सिंहासन पर था। अल्बरूनी से ज्ञात होता है कि हर्ष ने 606 ई० में एक संवत् स्थापित किया था जो उस समय उत्तरी भारत में प्रचलित था। नेपाल नरेश सूर्यदेव, अंशुवर्मन आदि के अभिलेखों में इसका प्रयोग हुआ है। आदित्यसेन का शाहपुर अभिलेख 66 में उल्लिखित है। यदि इसको गुप्त संवत् की तिथि स्वीकार कर लें तो इसका समय (319 + 66) = 385 ई० अर्थात् चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में पड़ेगा। पर यदि इसे हर्ष संवत् का माने तो यह (606 + 66)= 672 ई० पड़ता है। चूँकि यह हर्ष के समकालीन माधवगुप्त के बाद गद्दी पर बैठा इसलिए हर्ष के बाद ही इसकी तिथि रही होगी।

चीनी यात्री इत्सिङ्ग भारत में 8वीं शताब्दी में आया था। इसके विवरण में 'इस समय मगध के सिंहासन पर देववर्मन विद्यमान था। इसके बाद विष्णु गुप्त आया। अतः देववर्मन कोई दूसरा नहीं था पर देवगुप्त ही था। इसलिए देवगुप्त तथा विष्णुगुप्त आठवीं शताब्दी के शासक होंगे।

ऊपर हमने देखा है कि अवनति काल के गुप्त शासकों का लेख हर्ष संवत् में लिखा है क्योंकि हर्ष का संवत् भारत तथा नेपाल में पूर्ण प्रचलन में था। इस प्रकार विष्णुगुप्त की तिथि (606 + 117) = 723 ई॰ पड़ती है। यही तिथि अफ़सद अभिलेख के अक्षरों के क्रम में, इत्सिङ्ग के विवरण क्रम में तथा गुप्त शासकों की सूची के राजाओं के क्रम में ठीक बैठती हैं।

विष्णुगुप्त के तिथि की पुष्टि एक दूसरे आधार पर भी होती है। नेपाल नरेश शिवगुप्त का अभिलेख जो क्रमशः 113 तथा 119 का लिखा है से ज्ञात होता है कि आदित्यसेन की प्रपौत्री के साथ इसका विवाह हुआ था। अल्बरूनी के अनुसार ये अभिलेख हर्ष संवत् के हैं। इसलिए इन अभिलेखों का रचना क्रमशः 719 तथा 725 में माना जा सकता है। ऊपर के विवरण में आदित्यसेन के बाद देवगुप्त और फिर विष्णुगुप्त गद्दी पर बैठा। इस प्रकार वह आदित्यसेन की प्रपौत्री तथा विष्णुगुप्त की पुत्री हुई। अतएव विष्णुगुप्त की तिथि इन नेपाली अभिलेखों से 719 और 725 के लगभग ज्ञात होती है। यही तिथि विष्णुगुप्त के भारतीय अभिलेखों तथा हर्ष संवत् में लिखे उसके मंगराव अभिलेख के आधार पर भी सिद्ध होती है।

इस प्रकार विष्णुगुप्त 8वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का शासक था तथा इसका मंगराव अभिलेख हर्ष संवत् में लिखा गया है।

इस अभिलेख का शासक विष्णुगुप्त कौन था ?

इस समस्या का कारण यह है कि इतिहास में विष्णुगुप्त नाम के दो शासकों का हमें ज्ञान प्राप्त होता है—

1. नालन्दा अभिलेख में वर्णित कुमारगुप्त तृतीय का लड़का विष्णुगुप्त जो घटोतकच्छ गुप्त, प्रकटादित्य और प्रकाशादित्य के समकालीन था।

2. अवनति काल के गुप्त शासकों के वंश का राजा विष्णुगुप्त जो देवगुप्त द्वितीय का पुत्र था तथा आदित्यसेन का पौत्र था।

ऊपर के विवरण से मंगराव अभिलेख हर्ष संवत् के गणना क्रम में 723 ई॰ का ज्ञान होता है। आदित्यसेन के प्रपौत्री तथा विष्णुगुप्त की पुत्री के विवाह का विवरण में नेपाल के नरेश शिवदेव के तिथियुक्त अभिलेख का हमने ऊपर अध्ययन किया और देखा कि नेपाल नरेश की तिथि के समकालीन मंगराव के विष्णुगुप्त का पुत्र 8वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मगध के सिंहासन पर विराजमान था। यही तिथि मंगराव अभिलेख की भी है।

इसका प्रकार मंगराव का विष्णुगुप्त देवगुप्त का पुत्र था तथा आदित्य सेन का पौत्र, जबकि दूसरा विष्णुगुप्त कुमारगुप्त का पुत्र था जो 5 शताब्दी का शासक था। अतएव नाम की समता होने से ही हम पाँचवीं शताब्दी के शासक को आठवीं शताब्दी के शासक के साथ नहीं रख सकते।

●

गुप्तोत्तर अभिलेख

1. प्रभावती गुप्ता का पूना ताम्रपत्र अभिलेख
(Poona Copper Plate Inscription of Prabhawati Gupta)

स्थान : पूना जिला, महाराष्ट्र

भाषा : संस्कृत

लिपि : दक्षिण भारतीय नोकदार सिरवाली ब्राह्मी

काल : 13वाँ प्रशासन वर्ष (लगभग 5वीं शती ईस्वी)

विषय : गुप्त वंशावली, वैष्णव सन्त चनाल स्वामी को दङ्गुण नामक ग्राम दान तथा प्रशासनिक आदेश

मूल पाठ

अ. वाकाटक-ललामस्य

ब. [क्र] मप्राप्तनृर्पाश्रय(:) (।)

स. जनन्या युवराजस्य

द. शासनं रिपु-शास[न](नम्) (॥) 1

प्रथम पत्र

1. द्रि(दृ)ष्टम् (।) सिद्धम् (॥) जितं भगवता[1] (।) स्वस्ति नान्दिवर्द्धना दासीदुगुप्तादि-रा [जो][2] [म]ह[राज]-
2. श्रीघटोत्कचस्तस्य सत्पुत्रो महाराजश्रीचन्गुप्तस्तस्य सत्पुत्रो-
3. (ऽ)नेकाश्चमेघ-याजी[3] लिच्छवि-दोहित्रो[4] महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नो
4. महाराजाधिराजश्रीसमुद्रगुप्तस्तत्पत्पुत्रस्तत्पाद[5]परिगृहीतः
5. पृथिव्यामप्रतिरथस्सर्व्वराजोछेत्ता[6] चतुरुदधिसलिस्वादित-
6. यशा नेक[7]गोहिरण्य कोटीसहस्रपद परम-भागवतो महारा-

---

1. वाकाटक शासक शैव थे। पर परम वैष्णव चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री के विवाह के बाद वह वैष्णव धर्मानुयायी हो गया। इसीसे इस अभिलेख में : 'जितं भगवता' उल्लिखित है जैसा कदम्ब दान पत्र में : जितं भगवता विष्णुना यस्य वक्षसि'।
2. नन्दिवर्द्धन = नदरधन या नगरधन समीप म० प्र० के नागपुर जिले का रामटेक नामक स्थान। गुप्तादि राजो = प्रारम्भिक शासक 'गुप्त' यद्यपि कुछ लोगों ने इसे घटोत्कच्छ कहा है जो गलत है।
3. यह विश्वास से परे है कि समुद्रगुप्त ने कई अश्वमेघ यज्ञ किया था। इस कटक अभिलेख में समुद्रगुप्त की उपाधि इसके लड़के के लिए भी प्रयुक्त है। यह लेखक का दोष है।
4. पढ़ें : दौहित्रो
5. पढ़ें : स्तत्सत्पुत्रो०
6. पढ़ें : राजोच्छेता
7. पढ़ें : नेक या अनेक

7. जाधिराजश्रीचन्द्रगुप्तस्तस्य दुहिता[1] धारणसगोत्रा[2] नागकुलसम्भू-
8. ताया( )श्री-महादेव्या कुबेरनागायामुत्पन्नोभयकुलालङ्कारभूतात्यन्तभगवद्भक्ता
9. वाकाटकानां महाराजश्रीरुद्रसेनतस्याग्रमहिषी युवराज-
10. श्रीदिवाकरसेनजननी श्री-प्रभावतिगुप्ता सुप्रतिष्ठाहारे[3]

द्वितीय पत्र

11. विलवणकस्य पूर्वपार्श्वे शीर्षग्रामस्य दक्षिणपार्श्वे कदापिञ्चनस्यापरपा[र्श्वे]
12. सिदिविवरकस्योत्तरपार्श्वे ङ्गुणग्रामे[4] ब्राह्मणाद्यान्ग्रामकुटुम्बिन × कुशल-
13. मुक्त्वा समाज्ञापयति (।) विदितमस्तु वो यथैष ग्रामोस्माभिः स्वपुण्या-प्यायना[र्थं]
14. कार्त्तिक-शुक्ल-द्वादश्या भगवत्यादमूले निवेद्य भगवद्भक्ताचार्य्य-चनालस्वामिनेपूर्व्व-
15. दत्त्या[5] उदक-पूर्व्वमतिसृष्टो[6] यतो भवाद्भिरुचितर्म्यादया[7] सर्व्वाज्ञा × कर्त्तव्या(:) (।) पूर्व्व-
16. राज्जानुमता[ ]श्चात्र[8] चातुर्विद्याग्रहारपरीहारान्वितरामस्तद्यथाभट-छत्र[9]प्रावेश्यः
17. अ-चारासनचर्म्माङ्गारण्वक्रेणि-खानक[:][10] अकपा(र)म्पर(:*) अमेध्यः[11] अ-पुष्पक्षीरसन्दोहः
18. स-निधिस्सोपनिधिस्सकृप्तोपकृप्तः (।) न(त)देष भविष्यद्राजि (ज) भिस्संरक्षितव्य (:) परिवर्द्ध-

---

1. इससे ज्ञात होता है कि रानी के पिता का नाम देवगुप्त था जो चन्द्रगुप्त द्वितीय का दूसरा नाम था न कि परवर्ती गुप्त वंश का इस नाम का शासक।
2. यहाँ रानी ने अपने को धारण गोत्र का बतलाया है। पर यह उसके पति का गोत्र न होकर पिता का गोत्र है क्योंकि इसके उल्लेख के पूर्व वह पिता का नाम लेती है तथा बाद में माता का।
3. The district (also known from the Kothuraka grant, *Ep. Ind.*, XXXI, pp. 158f.) has been identified with the Hinganghat Tahsil of the Wardha District.
4. Pathak and Dikshit : दङ्गुणग्रामे. *Unguna* is possibly in the first part of the name *Hinganghat.*
5. दत्ति = gift; अपूर्व्वदत्त्या = according to the custom relating to things that were not previosuly granted.
6. Better read सृष्टः। यतो
7. Read भव॰
8. Read राजा
9. Read ॰भटच्छा॰. भट is probably a policeman, and छात्र (literally, an umbralla bearer) appears to be the leader of a group of *bhatas* and the same as चाट of other records.
10. Better ॰चर्माङ्गारः अ-लवणक्लिन्न॰. क्लिन्न-क्रेणि = moist commodity. क्रेणि = purchase ; here a marketebla object. this refers to the custom of boring certain trees for *audhbijja* salt and also sugar चारासन = pasturage (Fleet); but also चार = movint about, free movement (cf. पार of some records - free ferrying), and आसन = encampint. this refers to the king's touring officers. According to Mirashi, चार = grass for the horses of touring offirers; आसनचर्मन् = hides for their seats ; अंगार = charcoal for their cooking. Possibly we have to suggest अ-परंपरावलीई-ग्रहण।
11. पशुमेध्य is an instance of the *mayuravyamsakadi samasa.* This refers to the custom of taking on the king's part animals like goats, from the villages, for sacrificial purpose.

19. यितव्यश्च (।) यश्चास्मच्छासनमगणयमानस्स्वल्पामप्यत्राबाधा(ं) कुय्यात्कारयीत[1] वा
20. तस्य ब्राह्मणेरावेदितस्य[2] सदण्डनिग्रहं कुर्य्याम (।) व्यासगितश्चात्र[3] श्लोको भवति (।)
21. स्वदत्ताम्परदत्ता(ं) वा यो हरमेत वसुन्धरां(राम्) (।)
गवा(ं) शतसहस्रस्य हन्तुर्हरति दुष्कृतम् (।।) 2
22. संवत्सरे च त्रयोदशमे[4] लिखितमिद(ं) शासनम् (।) चक्कदासेनोत्कट्टितम् (।।)

हिन्दी अर्थान्तर

प्रथम-पत्र

वाकाटक वंश के भूषण, राजलक्ष्मी को वंशानुक्रम से पाने वाले युवराज की माता का, शत्रुओं से भी माना जाने वाला यह शासन (आज्ञा-पत्र) है।

सिद्धं ।। विष्णु की जय हो। कल्याण हो। नन्दिवर्धन स्थान से गुप्त आदि राजा महाराज घटोतकच थे। उनका सत्पुत्र महाराज श्री चन्द्रगुप्त उनका सत्पुत्र अनेक अश्वमेघ यज्ञ करने वाला लिच्छिवियों का दौहित्र महादेवी कुमारदेवी से उत्पन्न महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्त उसका सत्पुत्र उसके द्वारा स्वीकृत किया हुआ, पृथ्वी में जिसका सामना करने वाला कोई नहीं था, सभी राजाओं को नष्ट करने वाला, जिसका यश चारों समुद्रों के जल तक फैला था, कोटि सहस्र गौ, सुवर्ण का दान देने वाला, परम भागवत महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त की दुहिता (पुत्री), धारण गोत्र वाली, नागकुल की महादेवी कुबेर नाग से उत्पन्न, दोनों कुलों के कुलों की आभूषण भगवद्भक्तया वाकाटकों के महाराज श्री रुद्रसेन की, अग्रमहिषी (बड़ी पत्नी)।

द्वितीय पत्र

युवराज दिवाकर सेन की माता श्री प्रभावती गुप्ता सुप्रतिष्ठित नामक आहार में विल्वण ग्राम के पूर्व पार्श्व में शीर्षग्राम के दक्षिण पार्श्व में कदापिञ्जन के दूसरे पार्श्व में दङ्गुण नामक ग्राम कुटुम्बियों के कुशल मंगल के लिए कहकर ब्राह्मण को दिया गया। ज्ञात हो कि यह ग्राम अपने पुण्य की प्राप्ति के लिए कार्तिक शुक्ल द्वादशी को भगवत पाद मूल (पादुकाओं) पर निवेदन करके भगवद्भक्त आचार्य चलानस्वामी को पहले दिया गया पीछे जल पूर्वक (हाथ में जल के साथ) पुष्ट किया गया। आप को उचित मर्यादा के अनुसार सभी आज्ञाओं का पालन करना चाहिये। पूर्व राजाओं की अनुमति के अनुसार दिया गया है चारों विद्याओं के लिए अग्रहारा, तालाब और वाटिकाएँ, सैनिक तथा छत्र (मठों के दल के एक प्रमुख) के प्रवेश के लिए, दौरे वाले अधिकारियों के घोड़ों के लिए घास (चारा), उनके रहने के लिए स्थान (आसन चर्मन), भोजन पकाने के लिए कोयला (अङ्गार), कोमल भोज्य पदार्थ (किन्न-क्रेणि), यज्ञ के लिए पशु (पशुमेध्यः), पुष्प, क्षीर, पृथ्वी के अन्दर प्राप्त होने वाली सम्पत्ति (निधि), पृथ्वी तल पर प्राप्त होने वाली सामग्रियाँ (उपनिधि), निश्चित कर (कृप्त) और अनिश्चित कर (उपकृप्त)। जो इस आदेश के पालन करने में कमी या बाधा उत्पन्न करेगा या करायेगा

1. पढ़ें : रेयत
2. पढ़ें : ब्राह्मणे
3. पढ़ें : गीत
4. पढ़ें : त्रयोदशे तथा शासनम्, उत्कट्टित = खुदा हुआ

उसको ब्राह्मणों (ग्रन्थों) के विधान के अनुसार दण्ड दिया जायेगा। व्यास ने इस गीत में श्लोक लिखा है—अपना दिया हुआ या दूसरे द्वारा दी गई धरती का जो हरण करता है उस पर सैकड़ों हजारों गायों के हत्या का पाप लगता है।

यह आदेश तेरहवें शासन वर्ष में लिखा गया है। चक्रदास द्वारा खोदा गया है।

ऐतिहासिक महत्त्व

गुप्त राजकुमारी प्रभावती गुप्ता जिसका विवाह वाकाटक राजा रुद्रसेन द्वितीय से हुआ था जो अपने पति के अल्पायु में मरने के कारण अपने पुत्रों की संरक्षिका के रूप में शासन करती थी उस समय उसके पिता चन्द्रगुप्त (द्वितीय) का सहयोग उसके साथ था। इसी समय का यह दङ्गुण नामक ग्रामदान का दानपत्र है क्योंकि यह गुप्त लिपि में उत्कीर्ण है। लगता है कि कोई गुप्त शासन का कर्मचारी वाकाटक राज्य में रहता था जो मगध में आकर यह दान पत्र महारानी प्रभावती गुप्ता के आदेशानुसार खुदवाया होगा, अन्यथा इसकी लिपि वाकाटक कालीन ब्राह्मी रही होगी।

इसके प्रथम पत्र में उसने, वाकाटक वंश का वंशानुक्रम न बताकर अपने पिता के वंश का विवरण देते हुए पिता का नाम बड़े आदर से लिया है तथा अपने को गुप्त पिता और नागवंशीया माता का सन्तान बताकर वाकाटक परिवार में अपने विवाह का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट होता है कि वाकाटक शासन में भी गुप्तों का वर्चस्व था तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय अपनी पुत्री के शासन में यथोचित सहायता करता था।

यहाँ गुप्त वंशानुक्रम का उल्लेख गुप्त आदि राजा श्री घटोत्कच्छ-महाराज श्री चन्द्रगुप्त-महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्त-महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त तक किया गया है। यहाँ समुद्रगुप्त को सत्पुत्र, अनेक अश्वमेघ यज्ञों का करने वाला, लिच्छिवी वंश की पुत्री महादेवी कुमारदेवी से उत्पन्न बताया गया है। चन्द्रगुप्त के विषय में कहा गया है कि वह समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी, पृथ्वी पर अप्रतिम शक्तिवाला, सभी राजाओं को नष्ट करने वाला, जिसका यश चारों समुद्रों के जल का आस्वादन कर चुका था, अनेक करोड़ सहस्र गौ, सुवर्ण को देने वाला तथा परम भागवत था। अपने को वह चन्द्रगुप्त (द्वितीय) की पुत्री धारण गोत्र की, नागकुलोत्पन्न श्री महादेवी कुवेरनाग से उत्पन्न तथा दोनों कुलों की मर्यादा को बढ़ाने वाली, भगवत भक्त वाकाटक राजा श्री रुद्रसेन की अग्रमहिषी और श्री दिवाकर सेन की माता कहती है। इससे कई बातें प्रकाश में आती हैं:

1. गुप्त वंशानुक्रम का ज्ञान।
2. चन्द्रगुप्त प्रथम के वैवाहिक सम्बन्ध की पुष्टि।
3. कई अश्वमेघों का कर्त्ता समुद्रगुप्त।
4. चन्द्रगुप्त द्वितीय का यश समुद्रों तक फैला था जैसा मेहरौली के स्तम्भ में लिखा है।
5. वैष्णव धर्मानुयायी शासक। मेहरौली लेख में भी ऐसा कहा गया है।
6. उसका धारणा गोत्र का होना।
7. उसने नागवंश में वैवाहिक सम्बन्ध किया था। नाग वंश की लड़की चन्द्रगुप्त की अग्रमहिषी कुवेरनागा से चन्द्रगुप्त प्रभावती गुप्ता द्वारा उत्पन्न हुई थी। अतः चन्द्रगुप्त के अन्य विवाह भी हुए थे। मेहरौली में दक्षिणी सागर का वायु इसके वीर्य से सुगन्धित कहा गया है, यह इस बात की पुष्टि करता है क्योंकि दक्षिण-पश्चिम में अधिकार रखने वाले वाकाटकों के सम्बन्ध के कारण इसकी शक्ति

को बल मिला था। इसी के कारण यह पश्चिम की ओर विजय करते हुए बढ़ सका था जैसा मेहरौली लेख से ज्ञान मिलता है।

8. चन्द्रगुप्त द्वितीय एक महान् योद्धा था जिसने अनेक राजाओं को नष्ट किया था। यह मेहरौली के लेख से पूर्ण मेल खाता है।

9. वह बड़ा दानी था, जो मेहरौली के अनुरूप है कि आज भी वह मरकर 'कर्त्यास्थितः क्षितौ।'

10. यह वाकाटक शासक 'भगवत् भक्त' अर्थात् वैष्णव धर्मानुयायी था।

11. प्रभावती गुप्ता का विवाह रुद्रसेन से हुआ था। अतः वाकाटकों के साथ चन्द्रगुप्त ने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया था।

12. इसका पुत्र श्री दिवाकर सेन था जो रुद्रसेन के बाद वाकाटक सिंहासन पर आसीन हुआ।

इस लेख से मेहरौली का चन्द्र प्रभावतीगुप्त का पिता चन्द्रगुप्त (द्वितीय) ही रहा होगा ऐसा निःसंकोच कहा जा सकता है। यह इस अभिलेख की सबसे बड़ा ऐतिहासिक विशेषता है।

यहाँ विचारणीय है कि वाकाटकों तथा नागों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने का कारण क्या था ? इस संबंध में वि॰ ए॰ स्मिथ का यह कथन उल्लेखनीय है कि 'वाकाटक राज्य की भौगोलिक स्थिति ऐसी थी कि वह उज्जयिनी के शक-क्षत्रपों के विरुद्ध किसी भी उत्तरी भारत की शक्ति के लिए उपयोगी और अनुपयोगी दोनों ही सिद्ध हो सकते थे।' (The geographical postition of this king was such that he could be of much service or disservice to the northern invader of the dominions of the Saka Satraps of Gujrat & Saurastra'). इसी से डॉ॰ अल्तेकर की यह स्वीकृति अप्रासंगिक नहीं होगी कि ये वैवाहिक सम्बन्ध जानबूझ कर राजनीतिक उद्देश्य से किए गए होंगे। (It is not therefore unreasonable assmption that these matrimonial alliances were deliberately made with a poilitical motif.) डॉ॰ राय चौधरी ने भी इस बात को गुप्त राजाओं के सन्दर्भ में स्वीकार किया है कि 'गुप्त शासकों की वैदेशिक नीति में वैवाहिक सम्बन्ध बड़ी ही अहम भूमिका अदा करते थे।' यही कारण था कि पश्चिम की ओर बढ़ने के लिए, अपने राज्य को समीप के शत्रुओं से सुरक्षित रखने के लिए तथा दक्षिण में समुद्रगुप्त द्वारा अविजित क्षेत्रों में अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए चन्द्रगुप्त ने यह वैवाहिक सम्बन्ध किया हो।

इस अभिलेख से **दान पत्र की शैली तथा विशेषताओं का भी ज्ञान प्राप्त होता** जो निम्न है—

(1) इसे किसने प्रसारित किया तथा यह पत्र क्या है ? यहाँ बताया गया है कि वाकाटक वंश-भूषण, वंशानुक्रम से राज्य प्राप्त करने वाले युवराज की माता का है तथा शासन (आज्ञापत्र) है।

(2) राजा का धर्म क्या है ? जैसे यहाँ सिद्ध ! विष्णु की जय कहा गया है।

(3) दान-भूमि की चौहद्दी (सीमा) बताई गई है।

(4) दान का मूल उद्देश्य क्या है ? किसको तथा कब दिया गया है ? जैसे यहाँ पुण्य प्राप्ति के लिए ब्राह्मणों को दान दिया गया है कार्तिक शुक्ल द्वादशी को।

(5) देने की विधि क्या है ? पहले भगवत समर्पित करके दाता हाथ में जल लेकर दान दिया गया है।

(6) क्या-क्या दिया गया है ? यहाँ उल्लेख है कि रहने का स्थान, अग्रहारा, तालाब, वाटिकाएँ,

घोड़े का घास, कोयला, भोज्य पदार्थ, पशु, पुष्प, पृथ्वी के नीचे तथा तलपर होने वाली सामग्रियाँ, निश्चित और अनिश्चित कर दान दिया गया है।

(7) आदेश को उल्लंघन का दण्ड भी बताया गया है। यहाँ कहा गया है उल्लंघन करने तथा बाधा डालने का दण्ड शास्त्रीय विधि से दिया जायगा।

(8) नैतिक वाध्यता के लिए अन्त में किसी धर्म-ग्रन्थ का श्लोक उद्‌धृत किया जाता था जिससे आध्यात्मिक रूप से लोगों में भय व्याप्त हो जाय और अनजान में भी कोई इसका उल्लंघन न करे। यहाँ महाभारत का श्लोक उद्‌धृत करके ऐसा करने वाले को पाप का भागीदार बताया गया है।

2. मौखरी राजा ईशान वर्मन का हरहा अभिलेख
(Harha Inscription of Maukhari King Ishan Varman)

स्थान : हरहा, जिला–बाराबंकी, उत्तर प्रदेश

भाषा : संस्कृत

लिपि : उत्तरी ब्राह्मी

काल : 554 ई०

विषय : मौखरीवंश के राजाओं का परिचय ईशान वर्मन तक तथा सर्ववर्मन द्वारा भगवान क्षेमेश्वर के मन्दिर का पुनर्निर्माण कराना।

मूल-पाट

1. लोविष्कृत-संक्षयस्थिति कृतां यः कारणं वेधसाम्
ध्वस्तध्वान्तचयाः परास्तरजसो ध्यायन्ति यं योगिनः।
यस्यार्द्ध-स्थित-योषितोपि हृदये ना स्थायि चेतोभुवा
भूतात्मा त्रिपुरान्तकः स
2. जयति श्रेयः प्रसूतिर्भवः॥
आशोणां फणिनः फणोपलरुचा सैङ्घी वसानं त्वचं
शुभ्रां लोचनजन्मना कपिशयद्भासा कपालीवलीम् (।)
तन्वीं ध्वान्तनुदं मृगाकृतिभृतो विभ्रत्कलां मौलिना
दिश्यादन्ध-
3. कविद्विषः स्फुरदहि स्थेयः पदं वो वपुः॥
सुतशतं लभेनृपोश्वपति र्व्वैवस्वताद्यद्गुणोदितम।
तत्प्रसूता दुरितवृत्तिरुधो मुखराः क्षितीशाः क्षतारयः॥ 4[1]
तेष्वादौ हरिवर्म्मणोवनिभुजो भूतिर्भु
4. वो भूये।
रुद्धाशेषदिगन्तरालयशसा रुग्णारिसम्पत्त्विषा।

1. इससे स्पष्ट है कि मुखर या मौखरी परिवार सवित्री के पिता से अवतरित थे जो मद्र का शासक अश्वपति था। इसके 100 पुत्र थे वैवस्त की कृपा से।

सङगामे हुतभुक्प्रभाकपिशितं वक्त्रं समीक्ष्यारिभि-
र्यो भीतेः प्रणतस्ततश्च भुवने ज्वालामुखाख्यां गतः ।।
लोकस्थितीनां स्थितयेस्थि-

5. तस्य
मनोरिवाचारविवकेमार्ग्गे ।
जगाहिरे यस्य जगन्ति रम्याः
सत्कीर्त्तयः कीर्क्षयितव्यनाम्नः ।।
तस्मात्पयोधैरिव शीतरश्मि-
रादित्यवर्म्मा नृपतिर्ब्बभूव ।
वर्ण्णाश्रमाचार-विधि-प्रणोते-
र्यं प्राप्य

6. साफल्यमियाय धाता ।।
हुतभुजि मखमध्यासङ्गिनि ध्वान्त-नीलम्
वियति पवनजन्मभ्रान्तिविक्षेपभूयः ।
मुखरयति समन्तादुत्पतद्धूमजालम्
शिखिकुलमरुमेघाशङ्कि

7. यस्य प्रसक्तम् ।।
तेपानीश्वरवर्म्मेणः क्षितिपतेः क्षत्र-प्रभावत्सये ।
जन्माकारि कृतात्मनः वक्रतुगणेप्वाहूतवृत्त्र द्विषः ।
यस्योत्खातकलिस्वभावचरितस्याचारमार्ग्गं नृपा
यत्नेनापि ययाति-

8. तुल्ययशसो नान्येनुगन्तुं क्षमाः ।।
नीत्या शौर्य्यं विशालं सुहृदमकुठिनेनोमेच्छाङ्कुलेन ।
त्यागं पात्रेण वित्तप्रभवमपि ह्रया यौवनं संयमेन (।)
वाचं सत्येन चेष्टां श्रुतिपथविधिना प्रश्रये-

9. णोत्तमर्द्धिम्
यो बन्धनंनै व व्रजति कलिमयेध्वान्तमग्नेपि लोके ।। 9
यस्येज्यास्वनिशं यथाविधि हुतज्योतिर्ज्वलज्जन्मना ।
धूमेनाच्नभङ्गमेचकरुचा दिक्चक्कवाले तते ।
आयाता नव-

10. वारिभारविनमन्मेघावली प्रावृडि-
त्युन्मादोद्धतचेतसः शिखिगणा वाचालतामाययुः ।। 10
तस्मात्सूर्य्य इवोदयाद्रिशिरसो धातुर्म्मरुत्वानिव
क्षीरोदादिव तर्जितेन्दुकिरणः कान्तप्रभः कौस्तुभः ।

11. भूतानामुदपद्यत स्थितिकरः स्थेष्ठं महिम्नः पदम्
राजन्राजकमण्लाम्बर-शशी श्रीशानवर्म्मा नृपः ।। 11

लोकानामुपकारिणारिकुमुदव्यालुप्तकान्तिश्रिया ।
मित्रास्याम्बुरुहागरद्युतिकृता भूरि-

12. प्रतापत्विषा ।
येनाच्छादितसत्पथं कलियुगध्वान्तावमग्नञ्जग-
त्सूर्येणेव समुद्यता कृतमिदं भूयः प्रवृतक्क्रियम् ।। 12
जित्वान्ध्राधिपतिं सहस्त्रगणितत्रेधाक्षरद्वारणम्
व्यवल्गान्नियुताति —

13. संख्यतुरगान्भङाख रणे सूलिकाम् ।
कृत्वा चायतिमौचितस्थलभुवो गौडान्समुद्राश्रया-
नध्यासिष्ट नतक्षितीशचरणः सिंहासनं यो जिती ।। 13
प्रस्थानेषु बलार्णवाभिगमनक्षोभस्फुटद्भूतल-

14. प्रोद्भूतस्थगितार्क्कमण्डल-रुचा दिग्व्यापिना रेणुना ।
यस्यामूढ़ दिनादिमध्य-विरतौ लोकेन्धकारीकृते ।
व्यक्तिं नाडिकयैव[1] यान्ति जयिनो यामास्त्रियामास्विव ।। 14
प्रविशती कलिमारुतघट्टिता

15. क्षितिरलक्ष्यरसायतलवारिधौ ।
गुणशतैरवबध्य समन्ततः
स्फुटित-नौरिव येन बलादिघ्रता ।। 15
ज्याघातव्रणरूढिकर्क्कशभुजाव्याकृष्टशार्ङ्गच्युता-
न्यस्यावाप्य पतत्रिणो रणमुखे[2] प्राणानमुञ्च-

16. न्द्विषः ।
यस्मिन्शासति च क्षितिं क्षितिपतौ जातेव भूयस्त्रयी ।
तेन ध्वस्तकलिप्रवृतितिमिरः श्री-सूर्य्यवर्म्माजनि ।। 16
यो बालेन्दुसकान्ति कृत्स्नभुवनप्रेयो दधद्यौवनम्
शान्तः शास्त्रविचारणा-

17. हितमनाः पारङ्कलानाङ्गतः ।
लक्ष्मीकीर्त्तिसरस्वतीप्रभृतयो यं स्पर्धयेवाश्रिता
लोके कामितकामिभावरसिकः कान्ताजनो भूयसा ।। 17
सद्वृत्तेन बलात्कलेखन तितंतावत्प्रवृद्धात्मनो
बाणै–

18. स्तावदवस्थितं समृतिभुवः कान्ताशरीरक्षतौ ।
लक्ष्मणा तदावदकाण्डभङ्गजभयं त्यक्तम्परापाश्रयम् (यं) ।
यावन्नाविरकारि यस्य जनताकान्तं वपुर्व्वेधसा ।। 18
लक्ष्मणः शत्रुभुवः कुचग्रह-भयावेशभ्रम-

---

1. नाडिका = घटिका = जलघड़ी
2. शास्त्री के अनुसार रचमत्रे

19. ल्लोचना।
येनाकृष्य भुजेन विस्फुरदसिज्योतिकलासङ्गिना।
कान्ता मन्मथिनेव कामित-विदा गाढं निपीड्योरसा।
प्रायेणान्यमनुष्यसंश्रयकृतं भावं परित्याजिता॥ 19
तेनानतोन्नतिकृता

20. मृगयागतेन
दृष्टवाद्यमन्धकभिदो भवनं विशीर्णम् (।)
स्वेच्छासमुन्नतमकारि ललाम भूमेः
क्षेमेश्वरप्रथितनाम शशाङ्कशुभ्रम्।(।) 20
एकादशातिरिक्तेषु षटषु शाततविद्विषि।
शतेषु शरदां

21. पत्यौ भुवः श्रीशानवर्म्मणि॥ 21[1]
यस्मिन्कालेम्बुवाहा नवगवलरुचः प्रान्तलग्नेन्द्रचापा-
स्तन्वन्तयाशावितानं स्फुरदुरुतडितः सान्द्रधीरं क्वणन्तः।
वाताश्च वान्ति नीपात्लवकुसुमचयानम्रमूर्ध्नो

22. धुनाना-
स्तस्मिन्मुक्ताम्बुमेघति भवनमदो निर्म्मितं शूलपाणेः॥ 22
कुमारशान्तेः पुत्रेण गर्ग्गराकटवासिना।
नृपानुरागात्पूर्व्वं यमकारि रविशान्तिना॥ 23[2]
उत्कीर्ण्णा मिहिरवर्म्मणा (॥)

हिन्दी अर्थान्तर

1. त्रिपुर नामक राक्षस के नाश करने वाले, सम्पूर्ण जीवों की आत्मा एवं उनके कल्याण करने वाले शिव विजयी हों। उनकी पत्नी पार्वती हैं उनके ऊपर कामदेव का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ सका था, वे विश्व के उदय एवं संहार के कारण हैं तथा ब्रह्मा को भी जन्म देने वाले हैं, अज्ञानताओं दुष्टप्रवृत्तियों को विनष्ट करने वाले योगी भी उनके ध्यान में निमग्न रहते हैं।

2. अधक को मसलने वाले शिव आपको अमरत्व प्रदान करें, जिनके अंगों पर सर्प सुशोभित है, जिनके ललाट पर मृगाकृति को धारण करने वाली पतली चन्द्रमा की शोभा है, जो उनके नेत्रों से उत्पन्न प्रकाश के कारण कपिश वर्ण हो जाने वाली शुभ्र मुण्डों की माला धारण करते हैं, जो सर्प के मस्तक में छिपी हुई मणियों की प्रभा से सुशोभित सिह का चर्म धारण करते हैं।

3. अश्वपति नामक एक नरेश हुए, उन्हें वैस्वतके वरदान से सौ पुत्र उत्पन्न हुए। वे अपने गणों के कारण प्रकाशित थे। मौखरि नरेश उन्हीं के वंशज थे। वे शत्रुओं एवं पापाचार को नष्ट करने वाले थे।

---

1. तिथि 611 ईशानवर्मन के साम्राज्य में दिया गया है। यह तिथि विक्रम संवत् की है। इसके प्रयोग से लगता है कि मौखरी राजस्थान से यहाँ आए होंगे।

2. नृप से अभिप्राय राजा सूर्यवर्मन से है जो मगध पर शासन करता था।

4. प्राणियों के कल्याण के निमित्त उनसे सर्वप्रथम हरिवर्मा नामक नरेश उत्पन्न हुआ था। युद्ध में अंगारवत उसके लाल मुँह को देखकर उसके शत्रु डर कर उसके समक्ष नतमस्तक होते थे। अतएव वह पृथ्वी में ज्वालामुख के नाम से प्रसिद्ध था।

5. जिसका यश उसके नाम को चरितार्थ करता था। जिसकी सुन्दर कीर्ति संसार में प्रसिद्ध थी, जो नैतिक तत्त्वों को स्थिर करने में लगा रहता था तथा जो मनु के ही सादृश आचार एवं विवेक के मार्ग पर डटा रहता था।

6. जिस प्रकार समुद्र से चन्द्रमा का जन्म हुआ उसी प्रकार उस राजा से आदित्यवर्मा का जन्म हुआ था। वर्णाश्रम व्यवस्था की संस्थापना की दिशा में उसे पाकर विधाता भी सफल हो गया था।

7. यज्ञों के अवसर पर उसकी अग्निशाला से उठते हुए धुएँ अंधकार के समान वायु के वेग से गगन में चतुर्दिक फैल जाते थे। उन्हें देखने पर बादलों को संदेह में मोर प्रसन्न हो जाते थे।

8. राजनीतिक प्रभाव की वृद्धि में उसने ईश्वरवर्मा नामक क्षितिपाल को जन्म दिया था। उस पुण्यात्मा ने अपने कई यज्ञों में इन्द्र को भी आमंत्रित किया था। उसने अपने सदाचरण के द्वारा कलियुग की प्रवृत्ति को नष्ट कर दिया था। उसका यश ययाति के तुल्य था और विविध प्रयत्न करने पर भी उसकी समता अन्य राजा नहीं कर सकते थे।

9. अपनी राजनीति द्वारा विशाल शौर्य, सरसता द्वारा मैत्री, सद्वंश द्वारा महात्त्वाकांक्षा, पात्र-चयन द्वारा त्याग, विनम्रता द्वारा वित्त, प्रभव एवं संयम द्वारा यौवन, सत्य द्वारा वाणी, श्रुति के अनुरूप मार्ग के अवलम्बन द्वारा प्रयत्न तथा प्रणति द्वारा उत्थान को वह व्यक्त करता था। यद्यपि कलियुग के अंधकार में विश्व डूब रहा था फिर भी वह परिश्रम से कभी भी थकता नहीं था।

10. विविध यज्ञों में प्रज्ज्वलित अग्नि की लपटों से निरन्तर निकलती हुई धुएँ को जो अजन के लकीर के सदृश काली थी, दिशाओं में प्रसारित हो जाती थी। उनको देखने से मयूरों को जल में झुके हुए बादलों से युक्त वर्षा आने की आशंका हो जाती थी तथा वे इसी कारण चंचल हो जाते थे।

11. जिस प्रकार पूर्व में सूर्य उदित होता है, अथवा ब्रह्मा से इन्द्र का जन्म हुआ है या चन्द्रमा की रश्मियों के समान श्वेत आभा वाली कौस्तुभ मणिका का उदय क्षीर-सागर में हुआ है उसी भाँति ईश्वरवर्मा से ईशानवर्मा, नामक राजा उत्पन्न हुआ था जिसने सभी प्राणियों को स्थिरता प्रदान की। वह श्रेष्ठ महिमावान था तथा राजमण्डल रूपी आकाश में जो चन्द्रमा के समान था।

12. जो तेज से युक्त था, जो सूर्य की तरह विश्व का कल्याण करता था तथा अपनी शोभा द्वारा शत्रु रूपी कुमुद को नष्ट करता था तथा मित्ररूपी कमलों को प्रस्फुटित करता था। जिसने पृथ्वी को—जहाँ सत्य का पथ बन्द हो गया था उसे कलियुग के अन्धकार में नष्ट होने से बचाकर उचित मार्ग पर ला दिया था।

13. वह विजयी राजा था। दूसरे राजा भी उसके चरणों पर मस्तक झुकाते थे। उसने सहस्रों तिहरे मतवाले हाथी वाले सेना के स्वामी आंध्रपति को जीता था, छलांग मारने वाले असंख्य अश्वों से युक्त सेना वाले शूलिकों को युद्ध में परास्त किया था तथा गौड़ों को पृथ्वी से हटाकर समुद्र में शरण लेने के लिए बाध्य करते हुए उसने अपने सिंहासन को जीता था।

14. उसकी सेना समुद्र के समान विशाल थी। जिस समय वे विजय के लिए चलती थी तो उनके पदी चाप से उड़ने वाले धूल चारों ओर उड़ने लगती थीं तथा सूर्य का प्रकाश उससे आच्छादित हो जाता था। उस समय सम्पूर्ण संसार अंधकारमय हो जाता था। उस अवसर पर यह ज्ञात नहीं होता था कि यह दिन का आदि, मध्य अथवा अन्त काल है। जल-घड़ी से जैसे रात्रि के समय ज्ञान होता है उसी प्रकार जल-घड़ी के समय का ज्ञान होता था।

15. जब पृथ्वी कलियुग के कुप्रभाव के कारण अलक्ष्य रसातल रूपी समुद्र में डूब रही थी उसी समय ईशानवर्मा ने इसे सैकड़ों रस्सी से नौका बाँधने की तरह गुण से बाँध दिया था।

16. उसने धनुष की प्रत्यंचा को चढ़ाकर, बाणों के कठोर आघात द्वारा शत्रुओं को घायल कर दिया था जिसके परिणामस्वरूप वे यज्ञ में बलिदान की तरह चढ़ा दिए गए थे। उसके शासन काल में तीनों वेद फिर से जाग्रत हो गए थे। उसी राजा से सूर्यवर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने कलियुग के अन्धकार को नष्ट किया।

17. वह सम्पूर्ण विश्व के लिए नव चन्द्रमा की तरह अत्यन्त सुन्दर यौवन को धारण किया था। वह शान्त स्वभाव वाला, शास्त्रों में गतिशील, परोपकारी तथा अनेक कलाओं में पारंगत था। उसमें लक्ष्मी, कीर्ति एवं सरस्वती आदि ईर्ष्यापूर्वक उसी प्रकार निवास करती थी जिस प्रकार रसिक प्रेमियों के लिए उनकी प्रेमिकाएँ अत्यन्त इच्छुक दिखाई देती हैं।

18. जब तक सशक्त कलियुग ने अपने प्रभाव से सदाचरण को दबा रखा था, कामदेव ने अपने बाणों से रमणियों के शरीर को घायल कर दिया था, लक्ष्मी ने दूसरे व्यक्तियों के आश्रय में, असंयम भंग होने के डर से, जाना छोड़ दिया था उस समय तक विधाता ने उससे लोकप्रिय शरीर की रचना नहीं की थी।

19. जिसकी भुजाएँ उसके तलवार के प्रकाश से सुशोभित थी। जिस प्रकार चतुर प्रेमी अपनी आपट लोचना पत्नी का आलिंगन करता है, उसके मनोभाव को जानकर, कि वह दूसरे पुरुष के पास काम भावना से जाने के विचार का परित्याग कर दे उसी प्रकार इसने शत्रुओं की लक्ष्मी को ग्रहों के भय से अपने हृदय से आवेश में आकर लगा लिया था।

20. इसने निम्न व्यक्तियों को उच्च पद प्रदान किया था। शिकार के लिये गए हुए अंधकासुर के नाश करने वाले शिव के अत्यन्त जीर्ण मन्दिर को उस राजा ने देखा। उसने अपनी रुचि के अनुसार इसको विस्तृत कराया। वह मन्दिर चन्द्रमा के समान श्वेत तथा संसार में अद्वितीय क्षेमेश्वर नाम से विख्यात था।

21. जब ईशानवर्मा पृथ्वी पर शासन करता था उस समय 611 शरद ऋतुएँ व्यतीत हो चुकी थीं।

22. जिस ऋतु में वितान की तरह काले बादले किनारे-किनारे इन्द्रधनुष से युक्त होकर फैल जाते हैं तथा चपला चमकने और कड़कने लगती है उसी समय भगवान शूलपाणि (त्रिशूलधारी-शंकर) के इस मन्दिर को बनवाया गया था, जो बिना जल वाले बादलों की शोभा से सुशोभित होता था।

23. गर्गशतक के निवासी कुमारमात्य के पुत्र, रविशान्ति नामक कवि ने राजा के प्रति निष्ठा के कारण यह प्रशस्ति लिखा था तथा इसे महमिवर्मा ने उत्कीर्ण किया था।

ऐतिहासिक महत्त्व

मौखरी शासक ईशानवर्मा का हरहा शिलालेख उत्तर प्रदेश के बाराबंकी जिले के हरहा नामक गाँव में मिला है। इस अभिलेख की निम्नांकित विशेषताएँ हैं—

1. यह मौखरी शासकों के अभिलेखों से भिन्न प्रकार का है जिसमें मौखरी शासक ईशानवर्मा की कृतियों का विवरण है। यह इस वंश का पहला शासक है जिसकी उपाधि यहाँ महाराजाधिराज मिलती है।

2. इस अभिलेख में 611 तिथि अंकित है। पर ज्ञात नहीं कि यह तिथि किस काल-गणना के क्रम की है।

3. इसमें ईशानवर्मन के पुत्र का नाम सूर्यवर्मन लिखा गया है। सूर्यवर्मन नामक व्यक्ति का ज्ञान किसी भी दूसरे स्रोत से नहीं होता है।

4. यह अभिलेख गुप्त शासकों के बाद की उत्तरी लिपि में अंकित है।

5. इस अभिलेख में अर्धविराम (,) का प्रयोग मिला है तथा पूर्ण विराम के लिए भी (।।) चिह्न है। अनुस्वार के लिए अर्ध म का प्रयोग किया गया है तथा इसे पंक्ति की सीध से कुछ नीचे करके लिखते थे।

6. इसका लेखक रविशंकर है जिसका ज्ञान, हीरीषेण की तरह, किसी दूसरे स्रोत से नहीं होता है।

7. इससे शैव धर्म पर प्रकाश डालता है।

उद्देश्य

इस अभिलेख का उद्देश्य है सूर्यवर्मन द्वारा भगवान शंकर के टूटे हुए मन्दिर का पुनर्निर्माण कराना था। इस मन्दिर के अधिष्ठाता शिव का नाम भागवान क्षेमेश्वर है।

इस अभिलेख से ईशानवर्मन तक मौखरी वंश के राजाओं के नाम तथा क्रम का ज्ञान होता है।

इसमें ईशानवर्मन की कृतियों तथा उसके विचारों का उल्लेख है जिसकी पुष्टि हमें इसकी मुद्राओं, इसके विजय तथा महाराजाधिराज की उपाधि से होता है।

मौखरी वंश का उद्भव

पाणिनि के अष्टाध्यायी से ज्ञात होता है कि किसी व्यक्ति का नाम मोखरियाः था। सम्भवतः यही इस परिवार का प्रमुख व्यक्ति था। ईशानवर्मन के हरहा अभिलेख से भी यही ज्ञान मिलता है।

ईस्वी संवत् के पहले के उत्कीर्ण बड़वा यूप अभिलेख में मौखरी शब्द का उल्लेख हुआ है।

गया की मुद्राओं (सील) पर भी मौखरी का नाम मिलता है।

अवनति काल के गुप्त राजाओं के सामन्त के रूप में मौखरियों का विवरण बराबर तथा नागार्जुनी कोण्डा के गुहालेखों से प्राप्त होता है।

कौमुदी महोत्सव से भी इनका वर्णन हुआ है।

ऊपर के विवरणों के आधार पर ज्ञात होता है कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों के अभिलेखों से मौखरियों का नाम आया है। बड़वा, मथुरा, दक्षिणी भारत आदि में मौखरियों की स्थिति इससे ज्ञात होती है। इस सम्बन्ध में यह समस्या है कि इन विभिन्न क्षेत्रों के मौखरी क्या एक ही शाखा

के थे अथवा विभिन्न शाखाओं के जो परस्पर सम्बन्धित थे ? अगर इन्हें विभिन्न शाखाओं का मान लिया जाय तो यह मानना होगा कि उस समय भारतवर्ष में एक ही साथ कई मौखरी परिवार निवास करते थे।

इस अभिलेख में जिन मौखरी वंशजों का उल्लेख है वह कनौज के मौखरी है जिनका ज्ञान हरहा अभिलेख, असीरगढ़ मुद्रा (सील) और दूसरे लघु अभिलेखों से भी होता है। बाणभट्ट के हर्षचरित तथा ईशानवर्मन के हरहा अभिलेख एवं इन राजाओं के सिक्कों के आधार पर ज्ञात होता है कि इनका सम्बन्ध कन्नौज से रहा होगा।

ये क्षत्रिय थे। बाणभट्ट ने हर्षचरित में लिखा है—'सोम सूर्य वंश इव पुष्यभूति मुखर वंशौ'। पुष्यभूति ने भी मौखरी वंश के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया था। चूँकि गुप्त शासक भी क्षत्रिय थे। अतः इन्होंने मौखरियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया था। इससे स्पष्ट है कि मौखरी क्षत्रिय थे।

अभिलेख में वर्णित सूर्यवर्मन

इस अभिलेख में वर्णित राजा ईशानवर्मन का उत्तराधिकारी सर्ववर्मन था। पर इसका उत्तराधिकारी होना इस वंश के किसी भी दूसरे अभिलेख—असीरगढ़, नालन्दा आदि से ज्ञात नहीं होता और न बाणभट्ट के विवरण से ही पुष्ट होता है। ईशानवर्मन तथा इसके बाद के शासक सर्ववर्मन, अवन्तिवर्मन आदि के भी कुछ सिक्के मिले हैं। पर सूर्यवर्मन के सिक्के का अभाव सदा खटकता है। इसलिए यह समस्या है कि इसे इस वंश का उत्तराधिकारी कैसे स्वीकार किया जाय ? इसके विषय में निम्नांकित सम्भावनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं—

1. कुछ विचारकों ने सूर्यवर्मन तथा सर्ववर्मन को एक ही व्यक्ति माना है। पर ऐसा कोई भी विवरण प्राप्त नहीं जिससे यह ज्ञात हो कि किसी राजा का अभिलेख और सिक्कों पर उसका दूसरा नाम खुदा हो। इस अभिलेख से यह भी ज्ञात होता है कि ईशानवर्मन का उत्तराधिकारी सूर्यवर्मन था तथा उसका उत्तराधिकारी सर्ववर्मन था। अतएव दोनों नामों के बीच समता का तर्क स्वीकार नहीं किया जा सकता।

2. दूसरा विचार यह है कि ये दोनों व्यक्ति सिंहासन के लिए परस्पर युद्ध किए थे। पर इस घटना का विवरण न तो इस वंश के हरहा अभिलेख से मिलता है और न नालन्दा या असीरगढ़ अभिलेख से ही। इसलिए यह मत मान्य नहीं प्रतीत होता। प्रायः युद्ध के बाद सिक्के कुछ परिवर्तित प्रकार के होते हैं। यह भी सर्ववर्मन के सिक्के से ज्ञात नहीं होता है।

3. तीसरा विचार इस सम्बन्ध में यह है कि सूर्यवर्मन अपने भाई द्वारा अधिकार से वंचित कर दिया गया था। यदि वास्तव में में ऐसी बात थी तो सूर्यवर्मन के पिता इसका उल्लेख किए होते। पर ऐसा कुछ ज्ञात नहीं। यह भी ज्ञात नहीं कि कोई भी राजा अपने दूसरे नाम से सिक्का चलाया है।

4. ईशानवर्मन के सभी पुत्रों में यह सबसे अधिक योग्य था क्योंकि इस अभिलेख में एक पंक्ति है—'तेन ध्वस्तकलि प्रवृत्तिनिमिराः श्री सूर्य्यवर्मा जनि'। सम्भवतः यह गद्दी का अधिकारी होने के पहले ही मर गया था। इसी से इसका ज्ञान किसी भी दूसरे अभिलेख से नहीं मिलता है। यही विचार कुछ अधिक मान्य प्रतीत होता है।

तिथि

हरहा अभिलेख के अक्षरों की तुलना गुप्त शासक आदित्यसेन के अफसद अभिलेख से की जा सकती है। आदित्यसेन की तिथि शाहपुर अभिलेख में 66 दी गई है। उस समय हर्ष संवत् प्रचलित था। सम्भवतः यह (हर्ष सं॰ 606 + 66) = 672 ई॰ में शासन करता था। इसलिए इसी के लगभग इसकी तिथि भी निर्धारित की जा सकती है।

अफसद अभिलेख में इसके बाद के गुप्त राजाओं की वंश तालिका दी गयी है तथा उनके कार्यों का विवरण भी हैं। इसमें इस वंश के चौथे राजा कुमारगुप्त के विषय में ज्ञात होता है कि उसने ईशानवर्मन को हरा दिया था। सम्भवतः ईशानवर्मन कुमारगुप्त का समकालीन रहा होगा। कुमारगुप्त आदित्यसेन के बहुत पहले गद्दी पर बैठा था। इसलिए यह 672 ई॰ के पहले ही शासन करता होगा।

माधवगुप्त कुमारगुप्त का पौत्र था और हर्ष का समकालीन था। इसकी पुष्टि-हर्ष-चरित से भी होती है। हर्ष की तिथि 606 ई॰ है। जब इसके समकालीन कुमारगुप्त का पौत्र था तो कुमारगुप्त अवश्य ही इसके बहुत पहले शासन करता होगा। इसलिए कुमारगुप्त की तिथि छठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रखी जा सकती हैं।

दूसरी ओर हम यह देखते हैं कि ग्रहवर्मा हर्ष के समकालीन था तथा उसका बहनोई भी था। इसका विवाह हर्ष की बहन राज्यश्री से हुआ था। वह अवन्तिवर्मा का पुत्र तथा ईशानवर्मा का पौत्र था जैसा कि बाण के हर्ष-चरित से ज्ञात होता है। इसके अनुसार भी हम यह तिथि छठीं शताब्दी ई॰ के उत्तरार्द्ध में स्वीकार कर सकते हैं।

इस अभिलेख में अंकित तिथि 611 है पर यह किस संवत् में है ज्ञात नहीं। इस समय तो हर्ष संवत् प्रचलित था नहीं। उत्तरी भारत में गुप्त संवत् ही प्रचलित था। पर गुप्त संवत् के अनुसार इसकी तिथि (319+611)=930 ई॰ पड़ती हैं जो ऊपर के विवरण से ठीक नहीं बैठती हैं। इसीलिए यदि हम इसे शक संवत् में स्वीकार करें तो गणनानुसार (611 – 57) 554 ई॰ पड़ती है। यही तिथि ऊपर के विवरण के मेल में उचित प्रतीत होती है। अतएव स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि यह तिथि शक संवत् में है।

श्लोक की ऐतिहासिकता की व्याख्या

जित्वान्ध्राधिपति सहस्रगणितत्रेधाक्षरद्वारणं
व्यावल्गन्नियुतातिसंख्यतुरगान्भङ्ख्वा रणे शूलिकान्।
कृत्वा चायतिमोचितस्थलभुवो गौड़ान्समुद्राश्रया—
न्ध्यासिष्ट नतक्षितीश्चरणः सिहासनं यो जिती॥ (13)

हरहा अभिलेख की उपर्युक्त पंक्तियों से ज्ञात होता है कि ईशानवर्मन एक महान् विजेता था। इसने हर्ष से पहले उत्तरी भारत के अधिकांश भागों को जीत लिया था और उसके बाद शेष भारत को जीतने की इसने योजना बनाई थी। इसमें आन्ध्रों को उसने सबसे पहले जीता। उसके बाद शूलिकों को पराजित किया और तब गौड़ प्रदेश की ओर गया। वहाँ से अजेय ध्वज हाथ में लेकर घर की ओर लौटा। उसके लिए आन्ध्र सबसे समीप था। इसीलिये इसने शूलियों तथा गौड़ों के मार्ग में इसे पराजित किया। मार्ग में उसको अवनति काल के गुप्त राजा कुमारगुप्त का भी सामना मगध में करना पड़ा था। पर पश्चिम दक्षिण मार्ग में गोदावरी की ओर चलते हुए, जहाँ आन्ध्र बसे थे, उसे किसी सशक्त सैन्य बल का सामना नहीं करना पड़ा।

पुनः कलिङ्ग देश में बसे शूलिकों पर विजय करना बड़ा ही सरल था। अभिलेख से ज्ञात होता है कि इसी के पड़ोस के गौड़ थे जो समुद्र के किनारे उत्तरी पश्चिमी बंगाल में बसे थे। दूसरे अभिलेखों से ज्ञात होता है कि कुमारगुप्त एक महान् शासक था जिसने विजेता ईशानवर्मन को पराजित किया था। यह घटना सम्भवतः मौखरी शासक के अन्तिम चरण की मानी जा सकती है जब वह अपनी विजय का क्रम पूर्ण कर चुका होगा तभी उसे इस पराजय का सामना करना पड़ा होगा।

आन्ध्र प्रदेश की 300 हाथियों वाली सेना को इसने पराजित किया था। परन्तु इस अभिलेख या किसी दूसरे में कहीं भी यह उल्लिखित नहीं कि आन्ध्र प्रदेश का शासक कौन था ? तिथि की समता के आधार पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि यहाँ का शासक माधव था। इसी ने ईशानवर्मन का सामना कर उसे पराजित हुआ होगा।

इस विजय क्रम का दूसरा शत्रु था शूलिक। शूलिकों की स्थिति के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। कुछ लोगों ने इसे मूलक का विकृत रूप माना है। मार्कण्डेय पुराण में इसके प्रथम व्यक्ति का नाम अश्वपति आया है। ये पंजाब में बसे थे। यह बात कुछ ठीक नहीं प्रतीत होती कि ईशानवर्मन दक्षिण से सुदूर उत्तर-पश्चिम की ओर गया हो और किसी ने भी इसके मार्ग में गतिरोध न उत्पन्न किया हो। दूसरा कारण असम्भावना का यह प्रतीत होता है कि आन्ध्र के पड़ोस में ही इसे जब गौड़ विजय करना था तो क्यों यह गौड़ों की समस्या को छोड़ मूलक की ओर बढ़ा। इसलिए मूलक के साथ शूलिकों की समता सम्भव नहीं है। विचारकों का एक वर्ग यह मानता है कि यह स्थान चोलराज्य में था। इसी का नाम सम्भवतः कुछ दूसरे अभिलेखों में चेलिका मिला है। शूलिका चेलिका शब्द का विकृत रूप मात्र है। यह घटना एक तमिल ग्रन्थ के आथार पर भी सत्य प्रतीत होती है कि हरिवर्मन को चोलों ने पराजित किया था तथा उसके तीसरे उत्तराधिकारी ईशानवर्मन के शासन काल में उस राजा से बाँध बनवाने के लिए कर माँगा था। ईशानवर्मन शक्तिसम्पन्न शासक था। इसके लिए यह अपमान की बात थी। इसलिए उसने कर देने से इनकार कर दिया। यही दोनों के बीच शत्रुता का कारण बना। अपने पूर्वज हरिवर्मन के पराजय का बदला लेने के लिए ईशानवर्मन इस तात्कालिक घटना को कारण बनाकर चोल राज्य पर आक्रमण कर दिया। यह विचार पं० हरप्रसाद शास्त्री का है। श्री रामचन्द्रन के अनुसार यह स्थान कलिंग में होगा। पर कलिंग चोल शासकों के अधीन था ऐसा ज्ञात नहीं। कलिंग के इस प्रकार की सैनिक कीर्ति का भी ज्ञान नहीं मिलता। इसलिए यही समुचित और विश्वसनीय प्रतीत है कि शूलिक चोल थे।

गौड़ प्रदेश उत्तरी पश्चिमी बंगाल में था। यहाँ का शासक कौन था ? ज्ञात नहीं। पर गौड़ों ने इस भूमि को जीता था। सम्भवतः इसी पराजय का बदला लेने के लिए उसने कन्नौज पर आक्रमण किया और बीच में पड़ने वाले मगध के प्रदेश को अछूता छोड़ दिया था।

इस अभिलेख में यह उल्लिखित है कि अनेक कन्याओं ने इसके समक्ष सिर झुकाया। इससे स्पष्ट है कि यह बड़ा ही शौर्य सम्पन्न था तथा विभिन्न देशों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया था। इस प्रकार इन पंक्तियों से राजनीतिक अवस्था, शासक का गौरव तथा उसका विजय क्रम ज्ञात होता है।

3. मौखरी शासक का बड़वा यूप अभिलेख
(Badwa Yup Inscription of Maukhari Ruler)

स्थान : बड़वा, राजस्थान

भाषा : संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी उत्तरी

काल : 6वीं शती

विषय : प्रारम्भिक मौखरियों की स्थिति।

[1]

1. सिद्ध(द्धम्)(।) क्रितेहि[1] 200 (+) 90 (+) 5 फ[ा]ल्गुण-शुक्लस्य[2] पञ्चे[3] दि० श्रि-महासेनापतेः मोखरेः बल-पुत्रस्य बलवर्द्धनस्य यूपः (।) त्रिरात्रसंमितस्य दक्षिण्यं[4] गवां सहस्रं[1000][5] (।)

[2]

2. सिद्धं (।) क्रितेहि[6] 200 (+) 90 (+) 5 फ[ा]ल्गुण-शुक्लस्य पञ्चे[7] दि० श्री-माहसेनापतेः मोखरेः बलपुत्रस्य सोमदेवस्य यूपः (।) त्रिरात्रसंमितस्य दक्षिण्यं गव[ां] सह[स्रं][1000] (।)

[3]

3. क्रितेहि 200(+)90(+)5 फ[ा]ल्गुण-शुक्ल्स्य पञ्चमे [ि]द० श्रो-महासेनापते[ः][मो]खरे-
4. बलि-पुत्रस्य बलसिंहास्य यूपः (।) त्रिरात्रसंमितस्य दक्षिण्यं गवां सहस्रं [1000] (।)

ऐतिहासिक महत्त्व

मौखरी राजाओं का यह सबसे पुराना और पहला अभिलेख है। यह एक यूप पर खुदा है। यूप शब्द की विस्तृत व्याख्या आगे की जायगी। यहाँ इस प्रसङ्ग में इतना मात्र जान लेना ही पर्याप्त है कि यूप से साधारणतया अभिप्रेत है—स्तम्भ। जो एक विशिष्ट प्रकार का होता है। इसीलिए सामान्य स्तम्भों से इसमें अन्तर स्थापित करने के लिए इस 'यूप' की संज्ञा से इसे सम्बोधित किया जाता है।

इस अभिलेख का महत्त्व इसकी कुछ विशिष्ट विशेषताओं से है—इसमें जहाँ 'कृत् संवत्' का प्रयोग किया गया है वहीं 'यूप' का उल्लेख है तथा मौखरियों की एक नई शाखा—बड़वा के मौखरी, का भी ज्ञान प्राप्त होता है। इसलिए इन तीनों विशेषताओं का विवेचन आवश्यक है।

---

1. पढ़ें : कृते। इसका अभिप्राय है कि कृत युग के 295 वर्ष व्यतीतय होने पर
2. पाठ : फाल्गुन
3. पढ़ें : पञ्चमे, दि दिवसे
4. दक्षिणा, त्रिरात्र-सम्मित से अभिप्राय है, यज्ञ से।
5. अल्तेकर : सहप्रुं(स्रं). 1000 का एक चिह्न यहाँ बना है। एक उर्ध्वाधिर रेखा पर त्रिकोण।
6. पढ़ें : कृतैः
7. पढ़ें : फाल्गुन-शुक्लस्य पञ्चमे

कृत युग

कृत युग का प्रयोग बड़वा यूप लेख के पहले डॉ॰ अल्तेकर के अनुसार अभिलेखों में पाँच बार हो चुका है। इनमें से प्रारम्भिक तीन सन्दर्भों में तो 'कृत' शब्द का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से मिलता है पर बाद के दो में इनका प्रयोग 'मालव' शब्द के साथ हुआ है। इससे साधारणतया यही ज्ञात होता है कि यह अभिलेख विक्रम संवत् का है।

डॉ॰ फ्लीट ने 'कृत' शब्द का अर्थ 'यातेशु' बताने का प्रयास किया है। पर इस शब्द के प्रयोग से अर्थ स्पष्ट है कि 'कृत' से अभिप्राय एक विशिष्ट संवत् से है।

महामहोपाध्याय श्री हरप्रसाद शास्त्री ने इस सम्बन्ध में यह मत प्रतिपादित किया है कि 'कृत' संसार के काल-चक्र के विभाजन के चार चक्रों में से प्रारम्भिक चक्र का नाम है जिसका प्रयोग प्राचीन भारत में किया जाता था। इनका यह सिद्धान्त विजयगढ़ तथा गांधारी के अभिलेखों पर आधारित है जो 428 तथा 480 में समाप्त होने वाले सम्वत् में उत्कीर्ण किए गए हैं। पर नवीन विचारकों को यह मत मान्य नहीं है।

डॉ॰ भण्डारकर के अनुसार अभी किसी भी निश्चित मत तक नहीं पहुँचा जा सकता कि 'कृत' का वास्तव में अभिप्राय क्या है ? उनके अनुसार न तो यह किसी राजा का नाम है और न किसी राजवंश का ही। परन्तु जिसे आज विक्रम संवत् कहते हैं उसे जनता या ज्योतिषयों द्वारा निर्मित किया गया था। इसलिए इसे कृत (निर्मित) संवत् के नाम से संबोधित किया जाता है। परन्तु किसी भी ऐसे ज्योतिषी के विषय में ज्ञात नहीं जो 57 ई॰ पू॰ में किसी संवत् अथवा काल गणना विधि का अन्वेषण किया हो।

डॉ॰ अल्तेकर के अनुसार अन्य संवतों की तरह इसके संस्थापक के नाम के पीछे इस संवत् का नाम दिया गया होगा। किन्तु इस प्रकार के किसी व्यक्ति के नाम का उल्लेख नहीं मिलता जिसके आधार पर कहा जाय कि अमुक व्यक्ति ने जो इस नाम का था इस संवत् को प्रारम्भ किया। ऐसा समझा जाता है कि इस संवत् के संस्थापक वासुदेव थे जिसने अपने पुत्र रोहिणी के नाम के पीछे इस सवत् का यह नामकरण किया था। इसी से यह सम्भावना होती है कि विक्रम संवत् कृत द्वारा स्थापित किया गया था। यह सम्भव है कि विश्वरूप के अनुसार कृत को फल की बात ज्ञात थी। इसलिए यह सम्भव है कि इस प्रकार के युग को स्थापित करने के समय कृत ने शकों के ऊपर ख्यातिमान विजय अवश्य की होगी। डॉ॰ अल्तेकर ने कहा है कि कृत शब्द का प्रयोग तद्धति पद्धति में होना चाहिए इसलिए कृत के स्थान उपयुक्त शब्द 'कृताः' है। पर लेखकों की भूल के कारण सम्भवतः इस प्रकार का व्याकरण सम्बन्धी दोष यहाँ प्रयोग में दिखाई पड़ता है।

डॉ॰ स्टेनकोनो ने कालकाचार्य कथानक के सम्बन्ध में बताया है कि इस संवत् का संस्थापक विक्रमादित्य रहा होगा जो उज्जैयिनी का शासक था। उसने इस भू-भाग से चूँकि शकों को भगा दिया था इसी की प्रसन्नता में अपनी इस कीर्ति को जीवित रखने के लिए कृत संवत् को प्रचलित किया होगा। पर पुरालेखों के आधार पर स्टेनकोनो का विचार मान्य नहीं प्रतीत होता है। भारतीय पुरालेख्यों से ज्ञात होता है कि प्राचीनतम ज्ञात अभिलेख जिसमें विक्रम शब्द का प्रयोग है वह 794 विक्रम संवत् का है, जबकि विक्रमादित्य का ज्ञान उक्त कथानक के एक राजा के रूप में सबसे पहले 11वीं शताब्दी में होता है। अतः इस तर्क के आधार पर 7वीं शताब्दी में विक्रम की स्थिति पूर्णतया अज्ञात हो जाती है जबकि पुरालेख इसकी स्थिति का विवरण देते हैं।

डॉ॰ कीलहार्न का इस प्रसंग में दूसरा मत है। इसके अनुसार पाँचवीं से नवीं शताब्दी तक यह संवत् मालवा के राजकुमारों द्वारा प्रयोग किया जाता था तथा वहाँ की जनता भी इसका प्रयोग करती थी। पर नवीं शतब्दी में इसका यह पुराना नाम समाप्त हो गया। इस समय से इसे विक्रम संवत् के नाम से ठीक उसी प्रकार सम्बोधित किया जाने लगा जैसे गुप्त संवत् को पीछे बल्लभी संवत् के नाम से जाना जाता है।

डॉ॰ राजबली पाण्डेय के अनुसार विक्रमादित्य प्राचीन काल में मालव गणराज्य के राजा थे। इसकी राजधानी मालवा थी। इतिहास में इनका एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इन्होंने शकों को उनके राज्य से बहिष्कृत किया था। शकों का बहिष्कार वास्तव में एक महान् कार्य था। इस कार्य को स्थायी रूप से स्मरण रखने के लिए इन्होंने एक संवत् चलाया जिसका नाम 'कृत' संवत् रखा। इस संवत् के प्रचलन का ज्ञान एक श्लोक से भी होता है जिसमें वर्णित है कि 'कलि समाप्त हो चुका है, द्वापर जम्हाई ले रहा है, त्रेता खड़ा है और कृत चल रहा है।' शक जो बहिष्कृत हो चुके थे तथा जिनका विजय समाप्त हो चुका था उंका विजय फिर 57 से 78 ई॰ तक होता रहा। इस युद्ध मे अवन्ति क्षेत्र का मालव प्रदेश अभी विजय अभियान से बचा रहा। इसलिए स्वतन्त्र मालवों द्वारा कृत संवत् को मालव संवत् के नाम से अपने गौरव के स्मृति स्वरूप अपनाया गया। यह नामकरण पुनः चौथी शताब्दी ई॰ की परिस्थिति के कारण फिर बदल गया। इस समय विक्रमादित्य नामक एक राजा था। इसने गणराज्यों को जीतना प्रारम्भ किया। अपने इस विजयकीर्ति की परम्परा को स्थायी बनाने के लिए इसने 319-20 ई॰ से एक संवत् प्रचलित किया। पर इसका संवत् मालवा तथा राजपूताना आदि में बहुत अधिक व्यापक न हो सका। जब इसके वंश का राजा कुमारगुप्त गद्दी पर बैठा तो उसने देखा कि मालवा तथा राजपूताना आदि में मालव संवत् ही अभी तक प्रचलित है। इसलिए इसने इसके स्थान अपनी विजयी कीर्ति के आधार पर इसी मालव संवत् को विक्रम संवत् का नाम दिया। तभी से कृत तथा मालव संवत् का नया नाम विक्रम संवत् हो गया।

डॉ॰ फ्लीट ने 'कृत' राजाओं की एक वंशावली का भी उल्लेख किया है।

डॉ॰ रायचौधरी, डॉ॰ कीलहार्न आदि विद्वानों के विचार में मालव संवत् अथवा विक्रम संवत का प्रचलन 58 ई॰ में हुआ था। पर डॉ॰ राजबली पाण्डेय तथा डॉ॰ अनन्त सदाशिव अल्तेकर के अनुसार इस काल गणना का प्रचलन अपने दूसरे नाम से 57 ई॰ पू॰ में ही हो चुका था।

यूप का महत्त्व

'यूप' का साधारणतया अर्थ स्तम्भ से है। पर यह एक विशिष्ट प्रकार का पूजा स्तम्भ होता था जो धार्मिक भावना से अभिप्रेत एक विशिष्ट आकृति का बनता था। धर्मग्रन्थों के अनुसार यूप का निर्माण लकड़ी का होना चाहिए। ऐतरेय ब्राह्मण में बताया गया है कि पूजा में यज्ञ के अन्त में यूप स्थापित करना चाहिए। पर अभी तक पुरातत्त्वविदों को उस काल का कहीं भी लकड़ी का यूप प्राप्त नहीं हो सका है। जो भी यूप मिले हैं वे साधारणतया दूसरी शताब्दी ई॰ के हैं। सम्भवतः कालान्तर में बौद्ध धर्म सम्बन्धी स्तम्भों को देखकर ब्राह्मणों के मन में भी इस प्रकार की भावना जाग्रत हुई होगी कि ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित स्तम्भ निर्मित किए जायँ। इस भावना से प्रेरित ब्राह्मण धर्मानुयायियों ने यज्ञों की स्मृति को बनाए रखने के लिए विशिष्ट प्रकार के स्तम्भों का निर्माण प्रारम्भ किया होगा। इस प्रकार 'यूप' की रचना का मूल आधार अशोक स्तम्भ ही स्वीकार किया जा सकता है।

बड़वा यूप के अतिरिक्त चार अन्य यूप और भी मिले हैं जिनसे विभिन्न वैदिक यज्ञों की स्मृति आज जीवित हो उठती है।

परन्तु जहाँ हमें ब्राह्मण धर्मग्रन्थों से यूप निर्माण तथा यज्ञों की परम्परा के ज्ञान प्राप्त होता है वहीं गृह-सूत्रों तथा धर्म-सूत्रों में इसका विरोध दिखाई पड़ता है। इस विरोध का कारण है कि ये सूत्र-ग्रंथों के लेखक बौद्ध तथा जैन धर्म के प्रचार के तत्काल बाद होने वाले ब्राह्मण पुनर्जागरण युग के हैं तथा श्रमण परम्परा के विरोधी हैं, किन्तु श्रमण धर्म की छाप उन पर है। इसलिए इनके ग्रन्थों में 'यज्ञों' की परम्परा का पूर्ण अभाव है। विष्णु बौद्धायन, आश्वल्यायन आदि सूत्रकारों ने तो यूप निर्माण की यहाँ तक निन्दा की है कि ये 'यूप' इतने अधिक अपवित्र हैं जितनी एक स्त्री अपने मासिक धर्म के समय अपवित्र होती है। हिरण्येशिन ने लिखा है कि इनके छूने मात्र से यज्ञ के सभी प्रकार के पाप स्पर्शकर्त्ता के ऊपर आ जाते हैं।

परन्तु सूत्र-युग के बाद जब वैदिक धर्म का पुनर्जागरण प्रारम्भ हुआ तब से यूपों का निर्माण पुनः प्रारम्भ हो गया तथा धर्म-सूत्रों की मान्यताएँ इस सम्बन्ध में समाप्त हो गयी।

इन यूपों के निर्माण के सम्बन्ध में धर्म ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि ये 5 से 15 हाथ तक की ऊँचाई के बनाये जाते थे। कोई-कोई 17 हाथ ऊँचे होते थे। ये बिल्कुल सीधे बनते थे। कहीं से भी एक ओर यह कभी झुका नहीं रहता था। ऊपरी सिरे से थोड़ा-सा नीचे इस स्तम्भ में एक कंटक बना रहता था जिससे बाहर से देखने में यूप की आकृत ब्रह्मचारी की-सी प्रतीत हो। इसीलिए इस पर ब्रह्मचारियों के शरीर पर पड़े हुए यज्ञोपवीत की तरह एक उपवीत की आकृति बनी होती थी। इसकी आकृति को दूर से देखने पर ऐसा ज्ञात होता है कि यह षटकोण है। पर इसका वह भाग जो भूमि के अन्दर गाड़ा जाता था वह गोल होता था। किसी भी यूप के बीच में माला की तरह की रेखाएँ नहीं दिखाई पड़तीं। प्रायः यूपों के ऊपर कपड़े भी लपेटे जाते थे तथा इन्हें एक आधार पर स्थापित किया जाता था जैसा कि समुद्रगुप्त के सिक्कों पर बने यूप की आकृति से ज्ञात होता है। पर बड़वा यूप में इसका पूर्ण अभाव दीखता है। धार्मिक ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि यूप विभिन्न प्रकार के होते थे। पर ये विविध प्रकार, उत्खनन द्वारा अभी तक प्राप्त नहीं हो सके थे।

बड़वा यूप के मौखरी

यह यूप मौखरी वंश से संबंधित है। मौखरियों की विभिन्न शाखाएँ इतिहासकारों को ज्ञात हैं। इन शाखाओं की पहचान इनकी स्थिति की भिन्नता के आधार पर की जाती है। मौखरी बिहार, कन्नौज, बड़वा आदि विभिन्न स्थानों में स्थित थे। सम्भवतः ये सभी अलग-अलग शाखा के थे, क्योंकि इनमें कोई परस्पर सम्बन्ध नहीं ज्ञात होता। बड़वा यूप से जिस मौखरी परिवार का ज्ञान प्राप्त होता है उसका प्रमुख व्यक्ति था बल। यह सम्भवतः मौखरी वंश की दूसरी शाखाओं की अपेक्षा अधिक पुरातन था।

इस अभिलेख में जिन लोगों का उल्लेख है उनका ज्ञान किसी भी दूसरे स्रोत से नहीं होता। इसके प्रमुख व्यक्ति की उपाधि थी महासेनापति। सम्भवतः यह बहुत अधिक बलशाली था क्योंकि पुष्यमित्र शुंङ्ग की उपाधि केवल सेनापति को ही मिलती है जबकि यह महासेनापति कहा गया है। यह निश्चय नहीं कि यह किसका महासेनापति था। इस समय कुषाण शासकों की शक्ति अत्यन्त शिथिल हो गई थी। इनके लिए यह असम्भव था कि राजपूताना पर अधिकार स्थापित करें। इसलिए यह समीचीन प्रतीत होता है कि ये मौखरी शक-क्षत्रपों के अधीन रहे होंगे। मौखरी परिवार की यही शाखा सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर चुकी थी क्योंकि दूसरे किसी भी मौखरी वंश के विषय में ज्ञात नहीं कि उसका प्रमुख व्यक्ति महासेनापति जैसे उच्च पद का अधिकारी रहा हो।

4. आदित्य सेन अफसद शिलालेख

(Aphsowd Stone Inscription of Aditya Sen)

स्थान : अफसद, तहसील — नवादा, जिला — गया, बिहार

भाषा : संस्कृत

लिपि : उत्तरी ब्राह्मी

काल : लगभग 672 ई०

विषय : मागध गुप्त शासकों का ज्ञान आदित्य सेन तक तथा आदित्य सेन के विषय में व्यापक विवरण देना।

मूल-पाठ

ओम[।।]
आसीद्दन्तिसहस्त्र गाढकटको विद्याधरा ध्यासितः।
सद्वशः स्थिर उन्नतो गिरिरिव श्रीकृष्णगुप्तो नृपः।।
दृप्तारातिमदान्धवारणघटाकुम्भस्थलीः क्षुन्दता।
यस्यासंख्य रिपुप्रतापजयिना दोष्णा मृगेन्द्रायितम्।। 1।।
सकलः कलङ्करहितः क्षततिमिरस्तोयधेः शशाङ्क इव।
तस्मादुदपादि सुतो देवः श्रीहर्षगुप्त इति।। 2।।
यो योग्याकालहेलावनतदृढ़धनुर्भीभिबाणौघपाती
मूर्तैः स्वस्वामिलक्ष्मी वसति बिमुखितैरीक्षितः सास्त्रुपातमं।।
घोराणामाहवानं लिखितमिव जयं श्लाध्यमाविर्द्दधानो।
वक्षस्युद्दामशस्त्र-व्रण-कठिनकिणग्रन्थिलेखाच्छलेन।। 3।।
श्रीजीवितगुप्तोभूक्षितीश चूड़ामणिः सुतस्तस्य।
योद्दृप्तवैरिनारीमुखनलिनवनैकशिशिरकरः।। 4।।
मुक्तामुक्तपयः प्रवाहशिशिरासुत्तुङ्गतालीवन–
भ्रम्यद्दन्तिकरावलूनकदलीकाण्डासु वेलास्वपि।।
श्च्योतत्स्फारतुषारनिक्षेरपयः शीतेपि शैले स्थिता—
न्यस्योच्चैर्द्विषतो मुमोच न महाघोरः प्रतापज्वरः।। 5।।
यस्यातिमानुषं कर्म दृश्यते विस्मयाज्जनौघेन।
अद्यापि कोशवर्धन तटात्प्लुतं पवनजस्येव।। 6।।
प्रख्यातशक्तिमाजिषु पुरः सरं श्री कुमारगुप्तमिति।
अजनयदनेकं स नृपो हर इव शिखिवाहनं तनयम्।। 7।।
उत्सर्पद्वातहेलाचलितकदलिकावीचि मालावितानः।
प्रोद्यूधूलीजलौघभ्रमित गुरुमहामत्तमातङ्गशैलः।
भीमः श्रीशानवर्मक्षिपतिशशिनः सैन्यदुग्धोदसिन्धु—
र्लक्ष्मीसंप्राप्तिहेतुः सपदि विमथितो मन्दरीभूय येन।। 8।।

शौर्यसत्यव्रतधरो यः प्रयागगतो धने।
अम्भसीव करीषाग्नौ मग्नः स पुष्पपूजितः॥ 9॥
श्रीदामोदरगुप्तोऽभूत्तनयस्य भूपतेः।
येन दामोदरेणेव दैत्या इव हता द्विषः॥ 10॥
यो मौखरेः समितिषूद्धतणहूणसैन्या—
वल्गद्धटा विघटयन्नुरूवारणानाम्॥
सम्मूर्च्छितः सुरवधूर्वरयं (यन्) ममेति।
तत्पाणि पङ्कज सुखस्पर्शाद्विबुद्धः॥ 11॥
गुणवद्द्विजकन्यानां नानालङ्कार यौवनवतीनाम्।
परिणायितवान्स नृपः शतं निसृष्टाग्रहाराणाम्॥ 12॥
श्री महासेनगुप्तोभूत्तस्माद्वीराग्रणीः सुतः।
सर्ववीरसमाजेषु लेभे यो धरि वीरताम्॥ 13॥
श्रीमत्सुस्थितवर्मयुद्धविजयश्लाघापदाङ्क मुहुः।
र्यस्याद्यापि निबुद्धकुन्दकुमुदक्षुण्णाच्छहार तम्॥
लौहित्यस्य तटेषु शीतलतलेषूत्फुल्लनागद्रुम—
च्छायासुप्तविबुद्धसिद्धमिथुनैः स्फीतं यशो गीयते॥ 14॥
वसुदेवादिव तस्माच्छ्रीसेवनशोभोदितचरणयुगः।
श्री माधव गुप्तोभून्माधव इव वि मैकरसः॥ 15॥
.............अनुस्मृतो धुरि रणे श्लाघावतामग्रणीः।
सोजन्यस्य निधानमर्थनिचयत्यागोद् घुराणां धवरः॥
लक्ष्मी सत्यसरस्वतीकुलगृहं धर्मस्य सेतुर्दृदः।
पूज्यो नास्ति स भूतले .... सद्गुणैः॥ 16॥
चक्रं पाणितलेन सोप्युदवहत्तस्यापि शार्ङ्गं धनुः॥
र्नाशायासुहृदां सुखाय सुहृदां सस्याप्यसिर्नन्दकः॥
प्राप्ते विद्विषतां बधे प्रतिहत् .... तेनाप ...।
.....डरिभ..... न्याः प्रणेभुर्जनाः॥ 17॥
आजौमया विनिहिता बलिनो द्विषन्तः।
कृत्यं न मेस्त्यपरमत्यिवधार्य वीरः।
श्री हर्षदेवनिञ्जसङ्गमवाञ्छया च।
.........॥ 18॥
श्रीमान्ब वभुव दलितारिकरीनद्रकुम्भ—
मुक्तारजः पटलपांसुमण्डलाग्रः॥
आदित्यसेन इति तत्तनयः क्षितीशः—
चूणामणिर्द्द............॥ 19॥

............भागतमरिध्वंसोऽसमाप्तं यशः।
श्लाघं सर्वधनुष्मतां पुर इति श्लाघं परां विभ्रति॥
आशीर्वादपरम्पराचिर सकृद्.............॥
...........यामासम्॥ 20॥
आजौ स्वेदच्छलेन ध्वजपटशिखया मार्जतो दानपङ्क।
खड्ग क्षुण्णेन मुक्ताशकलसिकतिलीकृत्य...........।
...........मत्तमातङ्गघातं।
तद्गन्धा कृष्टसर्पद्वहलपरिमलभ्रांतमत्तालिजालम्॥ 21॥
आबद्धभीमविकटभ्रुकुटी कठोर—
सङ्ग्रणाम...............
...............ववल्लभभृत्यवर्ग—
गोष्ठीषु पेशलतया परिहासशीलः॥ 22॥
सत्यभर्तृव्रता यस्य मुखोपधान तापसी
परिहास..........॥ 23॥
.............सकलरिपुबल ध्वंसहेतुर्ग्गरीया
न्रिस्त्रिंशोत्खातघातश्रमजनित जडोप्यूर्जितस्वप्रतापः।
युद्धे मत्तेभ कुम्भ स्थल..........
.... श्वेतातपत्रस्थगित वसुमतीमणडलो लोकपालः॥ 24॥
आजौ मत्तगजैन्द्रकुम्भदलनस्फीतस्फुरद्दोर्युगौ
ध्वस्तानेकरिपुप्रभाव.......यशोमण्डलः।
न्यस्ताशेषनरेन्द्रमौलिचरणस्फारप्रतापनलो
लक्ष्मीवान्समराभिमानविमलप्रख्यातकीर्तिर्नृपः॥ 25॥
येनेयं शरदिन्दुबिम्बधवला प्रख्यातभूमण्डला
लक्ष्मी सङ्गमकांक्षया सुमहती कीर्तिश्चिरं कोपिता।
याता सागरपारमद्भुततमा सापत्न्य वैरादहो
तेनेदं भवनोत्तमं क्षितिभुजा विष्णोः कृते कारितम्॥ 26॥
तज्जनन्या महादेव्या श्रीमत्या कारितो मठः।
धार्मिकेभ्य स्वयंदत्तः सुरलोक गुहोपमः॥ 27॥
शङ्खेन्दुस्फटिक प्रभा प्रतिसमस्फारस्फुरच्छीकरं
नक्रक्रान्तिचलत्तरङ्ग विलशत्पक्षिप्रनृत्यत्तिमि।
राज्ञा खानितमद्भुतं सुपयसा पेपीयमानं जनै—
स्तस्यैव प्रियभार्यया नरपतेः श्रीकोणदेव्या सरः॥ 28॥

यावच्चन्द्रकला हरस्य शिरसि श्रीः शार्ङ्गिनो वक्षस
ब्रह्मास्ये च सरस्वती कृतः.............।
भोगे भूर्भुजगाधिपस्य च तडिद्यावदा घनस्योदरे
तावत्कीर्तिमिहातनोति धवलामादित्यसेनोनृपः ।। 29 ।।
सूक्ष्मशिवेन गोडेन प्रशस्तिर्व्विकटाक्षरा।
...........मिता सम्यगृधार्मिकेण सुधीमता ।। 30 ।।

हिन्दी अर्थान्तर

1. कृष्णगुप्त नामक राजा के सेना में सहस्रों हाथी थे जैसे ऊँचे और सुदृढ़ पर्वत सहस्रों हाथियों के झुंडों तथा विद्याधरों से घिरा होता है तथा सुन्दर बाँसों से शोभायमान होता है। वह उच्च परिवार में पैदा हुआ था तथा विद्याव्यसनी लोगों द्वारा आवृत था। वह पर्वत की तरह स्थिर, असंख्य प्रतापी शत्रुओं को जीतने वाला तथा मतवाले सिंह के समान शत्रु सेना के मदमत्त कुंजरों का मस्तक विदीर्ण करने वाला था।

2. कृष्णगुप्त से हर्षगुप्त उत्पन्न हुआ उसी प्रकार जैसे समुद्र से निष्कलंक चन्द्रमा उत्पन्न होकर अधंकार का विनाश करता है।

3. वह ठीक समय पर धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर बाणों की वर्षा करता था तथा लक्ष्मी उसको अपने पति की तरह वरण करती थी। शत्रु उसके सम्मुख अश्रुपूरित हो जाते थे तथा उसके वक्ष पर बने हुए गाँठ जो कठोर शस्त्र के आघात के परिणाम से लगता था मानों श्रेष्ठ वंश लिखा हुआ है।

4. राजाओं में श्रेष्ठ उसका जीवित गुप्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके सम्मुख अभिमानी शत्रुओं की पत्नियों का मुख उसी प्रकार खिल उठता था जैसे कुमुदनी चन्द्रमा के प्रकाश से स्फुटित हो उठती है।

5. वह राजा अपने शत्रुओं के लिए महाज्चर तुल्य था। उसके शत्रु चाहे समुद्र तटवासी हों, जो स्वच्छन्द जल प्रवाह से शीतल रहता है तथा वहाँ के ताल-वृक्षों के वन में उगे केले के वृक्षों को हाथी अपने सूढ़ से गिरा देते हैं, अथवा वे बर्फीली प्रवाह वाली धाराओं वाले पर्वत पर रहते हों; वह कभी छोड़ता नहीं था।

6. उसके लौकिक कार्य से लोग वैसे ही चकित होते हैं जैसे हनुमान के समुद्र तट से छलांग मारने पर।

7. इस राजा से कुमारगुप्त उसी प्रकार उत्पन्न हुआ जैसे शिव से मयूर वाहन वाले कार्तिकेय उत्पन्न हुए थे। यह शक्तिशाली तथा कुशल योद्धा था।

8. श्री ईशानवर्मा नामक श्रेष्ठ शासकी सेना को युद्ध क्षेत्र में कुमारगुप्त ने उसी प्रकार कुचल दिया जिस प्रकार देवासुर संग्राम में लक्ष्मी के निवासस्थान क्षीर सागर को मन्दर पर्वत के सहारे प्रमथित किया गया था। उस क्षीर सागर की लहर सेना के अभियान के समय उड़ने वाली हवा से आलोकित केले के वृक्ष थे तथा सेना के हाथी उसके दृढ़ चट्टान थे एवं उनके पैरों से जो धूलि उड़ती थी वह जल के थपेड़ों के समान प्रतीत होती थी।

9. वह शौर्ययुक्त, सत्यव्रती तथा धनवान राजा प्रयाग आया। यहाँ उसने उपलाओं की बनी अग्नि में पुष्प आदि से युक्त होकर उसी प्रकार प्रवेश किया जैसे जल में कोई प्रवेश कर रहा हो।

10. इसको दामोदर की तरह शत्रुविनाशी दामोदर गुप्त नामक पुत्र पैदा हुआ।

11. इसने हूणों को पराजित करने वाले, मदमस्त चाल वाले गजों की सेना को जो मौखरी नरेशों की थी विघटित कर दिया। वह मूर्छित था किन्तु पति तुल्य स्वीकार करने वालों सुरवधुओं के स्पर्श से पुनः जीवित हो गया।

12. उस राजा ने युवा तथा गुणवाली ब्राह्मण कन्याओं को आभूषणों से अलंकृत करके विवाह कराया तथा सैकड़ों गाँवों को अग्रहारा दान में दिया।

13. उसका वीर पुत्र महासेनगुप्त हुआ। वह वीर समाज का पराक्रमी था।

14. उसने सुस्थित वर्मा पर विजय प्राप्त किया था जिससे कुमुदनी, मल्लिका या मौलेसरी के स्वच्छ माला के समान उसे यश प्राप्त हुआ था। इसका ज्ञान सिद्ध मिथुनों द्वारा लौहित्य नदी के दोनों तटों पर नगर लताओं की छाया में निद्रा भंग पर गाया जाता था।

15. लक्ष्मी द्वारा सेवित कृष्ण का जन्म जैसे वासुदेव से हुआ था उसी प्रकार माधवगुप्त नामक उसका पराक्रमी पुत्र हुआ।

16. वह सभी राजाओं में स्मरणीय, युद्ध क्षेत्र मे अग्रगण्य, सज्जनता का धाम, अर्थसंचय तथा व्यय में सर्वश्रेष्ठ था। अपने सद्गुणों के कारण वह पृथ्वी पर अत्यन्त पूज्य था।

17. उसके हाथ में चक्र, शार्ङ्ग, आनन्ददायक तलवार था जिससे वह मित्रों को जहाँ सुख देता था वहीं शत्रुओं का विनाश करता था। वह शत्रु संहारक था।

18. उसने यह सोचकर कि युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं का मैंने संहार कर दिया है उससे मान लिया कि अब और कुछ करना शेष नहीं है। उसने श्रीहर्ष के साथ मैत्री स्थापित करने की इच्छा की............

19. राजाओं के प्रधान आदित्यसेन उसका पुत्र था। उसके तलवार से शत्रु दल के हाथियों के गले में पड़ी हुई मोती की मालाओं से मोतियाँ निकालकर धूल में मिला दी गई थीं।

20. वह प्रशंसनीय था तथा शत्रुओं के संसार से उसे महान यश प्राप्त था। वह श्रेष्ठ धनुर्धर था तथा सभी उसको आशीर्वाद देते थे।

21. उसकी तलवार युद्ध क्षेत्र के हाथियों के मद से सनी थी तथा टूटे हुए गले की माला के मोती के चुर्ण से ढँकी थी। पसीना पोंछने के बहाने वह उसे ध्वज के रेशमी वस्त्र से साफ करता था। मद के सुगन्ध से मस्त भ्रमर उस तलवार पर आकर बैठते थे।

22. जहाँ वह कर्मचारियों के बीच परिहास करता वहीं युद्ध क्षेत्र में विकट भृकुटी धारण करता था।

23. उसकी सत्यपरायणी स्त्री नियम और व्रती थी............

24. वह महान बलवान शत्रु विनाशक था, तलवार प्रयोग करने से थका हुआ होकर भी उसका प्रताप चमकता रहता था, जो हाथियों का मस्तक युद्ध क्षेत्र में तोड़ता था और संसार का रक्षक था।

25. उसकी दोनों भुजाएँ युद्ध क्षेत्र में गजों के मस्तक पर प्रहार करने से और भी बड़ी होती थी। उसका तेज सूर्य मण्डल की तरह था तथा वह शत्रुओं का प्रभाव नष्ट करने वाला था। उसके चरण सभी राजाओं के मस्तक पर विराजमान रहते थे। उसके युद्ध की ख्याति चारों दिशाओं में फैली थी। वह लक्ष्मीवान था।

26. उस राजा की कीर्ति शरदकालीन चन्द्रमा की निर्मल छटा के समान इस धरती पर फैली थी जो कुछ समय के लिए धन-लोलुपता के कारण बाधित हो गई थी। जिस राजा ने विष्णुमन्दिर का निर्माण किया था उसकी कीर्ति सागर के पार प्रदेशों में भी व्याप्त थी।

27. यह उसकी माता श्रीमती देवी द्वारा पुण्यात्माओं के लाभ हेतु बनवाया गया था जो स्वर्ग में भव्य गृह की तरह दीखता था।

28. उसकी स्त्री श्रीकोणदेवी ने एक सरोवर बनवाया था जिसके मीठे जल का पान बड़ी रुचि से लोग करते थे। उसका जल इन्द्र, मणि और शंख की तरह धवल था। उसमें राजहंस, मकर और मत्स की क्रीड़ाओं द्वारा हिलोरें उठती थीं।

29. जब तक शंकर के मस्तक पर चन्द्रमा की छठा सुशोभित है, विष्णु के वक्षस्थल पर लक्ष्मी हैं तथा सरस्वती ब्रह्मा के मुख में हैं, शेषनाग के फण पर पृथ्वी टिकी हैं तथा समुद्र के गर्भ में बिजली है तब तक आदित्यसेन नामक राजा की शुभ कीर्ति चारों ओर फैलती रहेगी।

30. यह प्रशस्ति विकट अक्षरों से युक्त श्रीमान धर्मपरायण सूक्ष्मशिवनामक व्यक्ति द्वारा उत्कीर्ण कराई गई है।

ऐतिहासिक महत्त्व

प्रस्तुत अभिलेख बिहार प्रदेश के गया जिले से प्राप्त हुआ है जिसमें मागध गुप्त शासकों का इतिहास उसके प्रथम शासक कृष्णगुप्त से लेकर आठवें शासक आदित्यसेन गुप्त तक मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि मागधगुप्त शासक मगध के ही रहने वाले थे। इससे इनके आदि स्थान विषयक विभिन्न मत इसके बाद अमान्य हो जाते हैं।

कृष्णगुप्त

यह इस वंश का संस्थापक था। इसके विद्याध्यासन की उच्चतर स्वर में प्रशंसा की गई है। इसकी सेना में बहुत अधिक संख्या में हाथी थे तथा यह पर्वत के सदृश उन्नत थी। 'असंख्यरिपुप्रताप–जयिना'–वह असंख्यक शत्रुओं को जीत चुका था। यह गुप्त शासकों का सामन्त रहा होगा, तभी इसकी उपाधि यहाँ 'नृप' दी गई है जो सामन्तों द्वारा धारण की जाती थी। रिपुओं को जीतने के सम्बन्ध में डॉ॰ रायचौधरी ने टिप्पणी किया है कि यह यशोधर्मन के साथ युद्ध कर उसको पराजित किया होगा।

हर्षगुप्त

इसको यहाँ कलंकरहित तथा अंधकार का नाश करने वाला बताया गया है। यह कई युद्धों का विजेता है जिसके वक्षस्थल पर शस्त्रों के आघात के चिह्न पड़े थे। इतिहासकारों ने इसे नरसिंह गुप्त का सामन्त माना है। डॉ॰ सिन्हा के अनुसार यह नरसिंहगुप्त के साथ हूण युद्ध में भाग लिया था।

जीवितगुप्त–प्रथम

इसकी उपाधि— 'क्षितिशचूड़ामणि' दी गयी है। इससे स्पष्ट होता है कि यह हर्षगुप्त से श्रेष्ठ शासक था। यहाँ उल्लिखित है कि समुद्र तटवर्ती शत्रुओं को इसने ज्वर से पीड़ित कर दिया था। डॉ॰ सिन्हा तथा वसाक इस शत्रु की समता गौड़ों से करते हैं। आगे हिमालय शैलस्थिनानि में शत्रुओं को पराजित किया था। इतिहासकारों ने इस शत्रु की समता नेपाल के लिच्छिवियों से की है। ऐसा अनुमान है कि विष्णुगुप्त के सामन्त के रूप में इसने समुद्रतट से हिमालय तक के युद्धों में भाग लिया था।

कुमारगुप्त

गुप्तों की अधीनता समाप्त कर यह स्वयं स्वतन्त्र शासक बन गया था। इसका समकालीन मौखरी शासक ईशानवर्मा था जो स्वयं स्वतन्त्र हो चुका था। दोनों के बीच युद्ध हुआ जिसमें ईशानवर्मा पराजित हुआ। इससे कुमारगुप्त का प्रभाव गंगा नदी के किनारे प्रयाग तक फैल गया। इसने प्रयाग में प्रज्चलित अग्नि में कूद कर अपने शरीर को भस्म कर दिया था। यह आत्महत्या (sucide) द्वारा शरीर त्याग की क्रिया इस प्रथा के चलन को स्पष्ट करता है।

दामोदरगुप्त

जैसे नारायण ने दैत्यों का नाश किया—येन दामोदरेणैव दैत्या इव हता द्विषः—उसी प्रकार इसने अपने शत्रुओं का नाश किया। इसने ब्राह्मण युवतियों का पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न कराया तथा सैकड़ों ग्रामों को दान दिया।

महासेनगुप्त

यह वीरों में सर्वाग्रणी बताया गया है। इसने कामरूप के राजा सुस्थित वर्मा को पराजित किया था।

माधवगुप्त

यह महासेन का पुत्र तथा हर्ष का प्रगाढ़ मित्र था। इसी से लगता है कि यह मालवा में हर्ष के साथ रहता था। अतः इसे मालवगुप्त की संज्ञा दी गई है। वह अनेक शत्रुओं के विजेता कहा गया है तथा सज्जनता की मूर्ति, धार्मिक, सरस्वती तथा लक्ष्मी का निवासस्थान और वीरों का आभूषण बताया गया है।

आदित्यसेन

माधवगुप्त का यह पुत्र वैष्णव धर्म का अनुयायी तथा अनेक धर्मों के प्रति सहिष्णु था। इसने जनता के हित के लिए लोक कल्याणकारी कार्य किया था, जैसे उसकी पत्नी कोण देवी प्रजाहितार्थ एक सरोवर का निर्माण कराई थी। यहाँ इसे 'परमयशस्वी' कहा गया है।

इस प्रकार इस अभिलेख से मागधगुप्तों का इतिहास आदित्यसेन तक प्राप्त होता है।

5. हर्ष का बाँसखेड़ा का ताम्रपत्र लेख—संवत् 22
(Banskhera Copper Plate Inscription of Harsh—Samvat 22)

स्थान : बांसखेड़ा, जिला—शाहजहाँपुर, उ० प्र०

भाषा : संस्कृत

लिपि : उत्तर ब्राह्मी

काल : अनिर्दिष्ट सं० 22 (= लगभग 628 ई०)

विषय : हर्षवर्धन के पूवजों तथा उसकी उपलब्धियों का वर्णन

मूल-पाठ

1. श्री स्वस्ति महानौहस्त्यश्वजयस्कंधावाराच्छ्रीवर्द्धमानकोट्या महाराजाश्रीनरवर्द्धनस्तस्य-पुत्रस्तत्पादानुध्यातश्श्रीवजिणीदेव्यामुत्पन्नः ⌣ परमादित्यभक्तो महाराज-श्रीराज्यवर्द्धन-स्यतस्य पुत्रस्तत्पादानु—

2. ध्यातश्श्रीमदप्सरोदेव्यामुत्पन्नः × परमादित्यभक्तो महाराज-श्रीमदादित्यवर्द्धन-स्तस्यपुत्रस्तत्पा-दानुध्यातश्श्रीमहासेनगुप्तादेव्यामुत्पन्नश्चतुस्समुद्रातिक्रांतिकीर्तिः × प्रतापानुरागोप —

3. नतान्यराजो वर्णाश्रमव्यवस्थापनप्रवृत्तचक्र एकचक्ररथ इव प्रजानामार्त्तिहरः × परमादित्यभक्तः × परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्री प्र (भा) कर (व) र्द्ध (न) स्तस्य पुत्त्रस्तत्पादा —

4. नुध्यातस्सितयशः × प्रतानविच्छुरितसकलभुवनमंडलः × परिगृहीत-धनदवरुणेंद्र-प्रभृतिलोकपाल-तेजास्सपथोपार्जितानेकद्रविणभूमिप्रदा (नसं) प्रीणितार्थिहृदयो —

5. तिशयितपूर्व्वराचरितो देव्याममलयशोमत्याम् श्रीयशोमत्यामुत्पन्न × परमसौगतस्सुगत इव परहितैकरतः × परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीराज्यवर्द्धनः। राजानो युधि दु —

6. ष्टवाजिन इव श्रीदेवगुप्तादयः कृत्वा येन कशाप्रहारविमुखास्सर्व्वे समं संयताः। उत्खाय द्विषतो विजित्य वसुधांकृत्वा प्रजानां प्रियं प्राणानुज्झितवानरातिभवने सत्यानुरोधेन यः। तस्या —

7. (नुजस्त) त्पादानुध्यातः × परममाहेश्वरो महेश्वर इव सर्वसत्वानुकम्पा परमभट्टारकमहाराजा-धिराजश्रीहर्षः अहिच्छत्रभुक्तावंगदीयवैषयिकपश्चिमपथक स (म्बद्ध) मर्कट सा —

8. गरे समुपगतान्महासामंतमहाराजदौस्साधसाध निकप्रमातारराजस्थानीयेकुमारामात्यापरिक विषयपतिभटचाटसेवकादान्प्रतिवासिजानपदांश्च समाज्ञापयति विदितम् —

9. स्तु यथायमुपरिलिखितग्रामस्स्वसीमापर्यन्तस्सोद्रङ्गस्सर्व्वराजकुलाभाव्य प्रत्यायसमेतस्सव्वपरि-हृतपरिहारो विषयादुद्धतपिंड× पुत्र पोत्रनुगश्चद्राकक्षितिसमका —

10. (ली) नो भूमिछिद्रन्यायेन मया पितुः × परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीप्रभाकरवर्द्धनदेवस्य मातुर्भट्टारिकामहादेवीराज्ञीश्रीयशोमतीदेव्या ज्येष्ठभ्रातृपरमभट्टारक —

11. महाराजाधिराजश्रीराज्यवर्द्धनदेवपादानाञ्च पुण्ययशोभिवृद्धये भारद्वाराजसगोत्र-बह्वचच्छन्दोगसब्रह्मचारिभट्टबालचंद्रभद्रस्वामिभ्यां प्रतिग्रहधर्मणाग्रहारत्वेनप्रतिपा —

12. दितो विदित्वा भवद्भिस्समनुमन्तव्यः × प्रतिवासिजानपदैरप्याज्ञाश्रवणविधेयैर्भूत्वा यथासमुचित-तुल्यमेयभागभोगकरहिरण्यादिप्रत्याया एतयोरेवोपनेयास्सेवोपस्थानञ्चक —

13. रणीयमित्यपि च। अस्मत्कुलक्रमदायुरमुदाहरद्भिरन्यैश्च दानामिदमभ्यनुमोदनीयम् लक्ष्म्यास्त-डित्सलिलबुदबुदचंचलाया दानं फलं परयशः × परिपालनञ्च कर्मणा म —

14. नसा वाचा कर्त्तव्यं प्राणिभिर्हितं हर्षेणैतत्समाख्यतन्धर्म्मार्ज्जनमनुत्तमम्। दूतकोत्र महाप्रमातार-महासामन्तश्रीस्कंदगुप्तः महाक्षपटलाधिकरणाधिकृत महासामन्तम्

15. हाराज (भान) समादेशादुत्कीर्ण —

16. ईश्वरेणदेमिति सम्वत् 20 2 —

17. कार्त्ति वदि 1 (।)

18. स्वहस्तो मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य (॥)

हिन्दी अर्थान्तर

श्रीस्वस्ति, नाव, हाथी और घोड़ों से युक्त वर्द्धमान कोटि के महान् सैनिक शिविर से (यह घोषित किया गया)—

1. एक महाराज नरवर्द्धन थे। उनकी रानी वज्रिणी देवी से उनके पदानुध्यात आदित्य के परमभक्त महाराज राज्यवर्द्धन पैदा हुए।

2. महाराज राज्यवर्द्धन की रानी अप्सरो देवी से महाराज आदित्यवर्द्धन उत्पन्न हुए जो पादानुध्यात और परम आदित्य भक्त थे। महाराज आदित्यवर्द्धन की रानी महासेनगुप्ता देवी से परम भट्टारक महाराजाधिराज प्रभाकरवर्द्धन उत्पन्न हुए। कुलपिता के पदानुध्यात और आदित्य के परम भक्त थे। इनका यश चारों समुद्रों को पार कर गया था। अन्य राजा उनके प्रताप एवं अनुराग से उन्हें मस्तक झुकाते थे।

3. इन्होंने बल प्रयोग द्वारा वर्णाश्रय-व्यवस्था को प्रतिष्ठित किया और प्रजा के दुःखों को सूर्य की भाँति नष्ट किया। उनकी निर्मल यशवाली रानी यशोमती देवी से उन्हीं की भाँति बुद्ध के परम-भक्त परोपकारी परमभट्टारक महाराजाधिराज राज्यवर्द्धन

4. पिता के पादानुध्यात और परमादित्य भक्त हुए। इनका उज्ज्वल यश और प्रताप संपूर्ण भुवन-मंडल में फैल गया। कुवेर, वरुण और इन्द्र आदि लोकपालों के तेज को ग्रहण कर सत्य और सन्मार्ग से प्राप्त द्रव्य, भूमि आदि प्रार्थियों को देकर उनके हृदय को संतुष्ट किया।

5. इनका चरित्र अपने पूर्वज राजाओं से दिव्य था।

6. इन्होंने देवगुप्त आदि राजाओं को युद्ध में एक साथ ही इस प्रकार दलित किया जैसे दुष्ट घोड़ों को चाबुक के प्रहार से रोका या घुमाया जाता है। उन्होंने अपने शत्रुओं का मूलोच्छेदन कर पृथ्वी को विजित किया और प्रजा के हित के कर्मों को करते हुए प्रतिज्ञा-पालन के लिए शत्रु के भवन में प्राण का उत्सर्ग कर दिया।

7. महाराज राज्यवर्द्धन के छोटे भाई उनके पादानुध्यात, परम शैव तथा शिवजी की तरह प्राणिमात्र पर अनुकम्पा करने वाले परमभट्टारक महाराजाधिराज श्रीहर्ष ने अहिछत्र भुक्ति के अन्तर्गत संगदीय विषय के पश्चिम पथ से सम्बद्ध मर्कट-सागर

8. (ग्राम) में एकत्रित महासामंत, महाराज, दौस्साधसाधनिक[1], प्रमातार, राजस्थानीय, कुमारामात्य, उपरिक, विषयपति, चाट, भट, सेवक और निवासियों के लिए निम्नलिखित आज्ञा प्रसारित किया—

9.10.11. सबको विदित हो कि मैंने अपने पिता परमभट्टारक महाराजाधिराज प्रभाकरवर्द्धन, माता परमभट्टारिका महारानी यशोमती देवी और पूज्य अग्रह महाराज राज्यवर्द्धन के पुण्य और यश की वृद्धि के लिए अपनी सीमा तक फैले ऊपर लिखित गाँव को—उस सम्पूर्ण आय सहित, जिस पर राजवंश का अधिकार था, सब प्रकार के भारों से मुक्त तथा अपने जिले से अलग कर चन्द्र, सूर्य और पृथ्वी की स्थिति तक पुत्र-पौत्र आदि के लिए भूमिछिद्र न्याय से—भरद्वाजगोत्रीय ऋग्वेदीय भट्ट बालचन्द तथा भरद्वाजगोत्रीय सामवेदीय भट्ट भद्रस्वामी को अग्रहार के रूप में दान दिया है।

---

1. यह राज्य के उच्च कर्मचारियों के पद थे। सम्भवतः आज के दुसाध का बोधक है।

12. ऐसा मानकर आप लोग इसे स्वीकार करें। इस गाँव के निवासियों को चाहिए कि हमारी आज्ञा को मान कर तुल्य, मेय, भाग, भोग, कर, सुवर्ण आदि इन दोनों ब्राह्मणों को दें और इनकी सेवा करें।

13. इसके अतिरिक्त हमारे महान् कुल से संबंध रखने वाले और दूसरों को भी इस दान का अनुमोदन करना चाहिए। जल के बुलवूले तथा बिजली की भाँति लक्ष्मी चंचला हैं। उनका कार्य दान देना और दूसरों के यश की रक्षा करना है।

14. मन से, वाचन से और कार्य से प्राणिमात्र का हित करना चाहिए। इसको हर्ष ने पुण्यार्जन करने की उत्तम रीति बतलाई है। महाप्रमातार, महासामंत श्रीस्कंदगुप्त यहाँ दूतक हैं और महाक्षपटल के कार्यालय में सामंत

15. महाराज (भान) की आज्ञा से

16. ईश्वर ने इसे उत्कीर्ण किया संवत् 22

17. कार्तिक बदी 1, हस्ताक्षर महाराजाधिराज श्रीहर्ष।

ऐतिहासिक महत्त्व

यह ताम्रपत्र महाराजाधिराज श्री हर्षवर्द्धन द्वारा लिखवाया गया है। यह उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले के बांसखेड़ा नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। यह पत्र विवरण तथा रचना कौशल में ठीक उसी प्रकार का है जैसा कि मधुबन का ताम्रपत्र। सैनिक शिविर से प्रसारित एक अग्रहारा दान का आदेश इस ताम्रपत्र में अंकित है।

इसमें मौखरी राजाओं की वंशावली दी गई हैं। इस वंश में एक महाराजा नरवर्द्धन थे। उनके पुत्र (राज्यवर्धन) की स्त्री अप्सरा देवी से आदित्यवर्धन उत्पन्न हुआ था। इनकी रानी महासेनगुप्ता देवी से प्रभावकर वर्धन पैदा हुआ था। यह परम प्रतापी राजा था। इसकी कीर्ति शीघ्र ही फैल गई। इसकी रानी यशोमती देवी से राज्यवर्द्धन पैदा हुआ। इसने देवगुप्त आदि राजाओं को एक ही साथ युद्ध भूमि में पराजित किया था। शत्रु-गृह में इसकी शीघ्र ही मृत्यु हो गई। इसके बाद इसका छोटा भाई हर्षवर्धन जो इस ताम्रपत्र का नायक है सिंहासनासीन हुआ।

इस ताम्रपत्र में इसने निम्नांकित अधिकारियों को संबोधित कर कहा है कि इनकी जानकारी के लिए यह प्रसारित किया जा रहा है। ये अधिकारी हैं—

1. दौस्साधसाधनिक—

आज के दुसाध-जो ग्राम रक्षा का कार्य करते हैं। चूँकि उस समय भी ये दुःसाध्य कार्य ही करते थे इसलिए इन्हें दौस्साधसाधनिक कहा जाता था।

2. प्रमातार

2. राजस्थानीय

4. कुमार मात्य—

राजकुमार के मन्त्री

5. उपरिक

6. विषयपति—

जिलाधीश

7. चाट—

ऐसे सैनिक जो नियमानुसार राज्य की ओर से नियुक्त नहीं थे पर स्वयं स्वतन्त्र रूप से राज्य में विचरण करते रहते थे।

8. भट्ट—

ये भी एक प्रकार के सैनिक थे। ये राज्य की ओर से नियमानुसार नियुक्त किए जाते थे। इनका कार्य गाँव की रक्षा करना था।

इसके बाद उन गाँवों का विवरण है जो अग्रहारा दाना के लिए इस प्रतापी राजा ने ब्राह्मणों को दिया था। पुनः वहाँ के निवासियों को संबोधित करके हर्ष ने निम्नांकित कर तथा सेवाओं को उन्हीं ब्राह्मणों को देने का आदेश दिया है जिन्हें अग्रहारा दान दिया गया था। ये कर हैं—

1. तुल्य 2. भोग 3. मेय
4. कर 5. भाग 6. सुवर्ण आदि।

इससे यह ज्ञात होता है कि उस समय राजा इन विभिन्न प्रकार के करों को लेता था। पर इन सभी करों की वास्तविक परिभाषा ज्ञात नहीं है।

यहाँ वर्णित है कि हर्ष का साम्राज्य जनपदों में विभक्त था। इसे विषय कहते थे। इस विषय में महाप्रमातार महासामन्त श्री स्कन्दगुप्त दूतक थे और महाक्षपटल के कार्यालय में सामन्त ईश्वर ने महाराज की आज्ञा से इसे लिखा था।

बाद में संवत् 22 का उल्लेख है। पर यह पता नहीं कि यह संवत् किस गणना क्रम में है। इस सम्बन्ध में सामान्य धारणा है कि हर्ष ने चूँकि अपने नाम के साथ एक संवत् चलाया था अतः यह हर्ष संवत् की ही तिथि रही होगी। इसलिए इस अभिलेख की तिथि (606 + 22) = 628 ई० मानी जा सकती है।

अन्तिम पंक्ति में महाराजाधिराज श्री हर्ष लिखा है। यह हर्ष का हस्ताक्षर प्रतीत होता है।

इस प्रकार यह अभिलेख राजनीतिक महत्त्व के साथ ही प्रशासकीय महत्त्व का भी है। इसमें जहाँ राजा की वंशावली का उल्लेख है वहीं विभिन्न प्रकार के कर, अधिकारियों आदि का भी ज्ञान मिलता है।

6. हर्ष का मधुबन ताम्रपत्र लेख

(Madhuban Copper Plate Inscription of Harsha)

मूल पाठ

1. ॐ स्वस्ति महानौहस्त्यश्वजयस्कंधावारात् कपित्थकायाः महाराजश्रीनगरवर्द्धनस्तस्य-पुत्रस्तत्पादानुध्यातश्श्रीवज्रिणीदेव्यामुत्पन्नः परमादित्यभक्तो महाराजश्रीराज्यवर्द्धन—
2. स्यस्यपुत्रस्तत्पादानुध्यातश्श्रीमदप्सरोदेव्यामुत्पन्नः परमादित्यभक्तो महाराज श्रीमदादित्यबर्द्धन-रतस्पुत्रस्यततृपादानुध्यातश्श्रीमहा—
3. सेनगुप्तादेव्यामुत्पन्नश्चतुस्समुद्रातिक्रांतकीर्तिः प्रतापानुरागोपनतान्यराजो वर्णाश्रमव्यवस्थापन-प्रवृत्तचक्र एकचक्ररथ इव प्रजानाभर्त्तिहरः—
4. परमादित्यभक्तः परमभट्टारकमहाराधिराज श्रीप्रभाकरवर्द्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यातस्सि-तयशः प्रतानविच्छुरितसकलभुवनमण्डलः परिगृहीत—

5. धनदवरुणेन्द्रप्रभृतिलोकपालतेजास्सत्पथोपार्ज्जितानेकद्रविणभूमिप्रदान संप्रीणितर्थिहृद-योतिशयितिपूर्व्वराजचरितो देव्यमामलयशोमत्याम्—

6. श्रीयशोमत्यामुत्पन्नः परमसौगतस्सुगत इव परहितैकरतः परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीराज्यवर्द्धनः। राजानो युधि दुष्टवाजिन इव श्रीदेवगुप्ता—

7. दय कृत्वा येन कशाप्रहारविमुखास्सर्वे समं संयतः। उत्खाय द्विषतो विजित्य वसुधाङ्कृत्वा प्रजानां प्रियं प्राणानुज्झितवानरातिभवने सत्यानुरोधेन यः। तस्यानुज—

8. स्तपादनुध्यात् परममाहेश्वरो महेश्वर इव सर्वसत्वनुकम्पो परमभट्टारक महाराजाधिराजश्रीहर्षः श्रीवस्तिभुतौ कुण्डधानिवैषयिकसोमकुण्डकाग्रामे—

9. समुपगतान् महासामन्तमहाराजदौस्साधनिकप्रमातारराजस्थानीयकुमारामात्योपरिकविषय-पतिभटचाटसेवकादीन् प्रतिवासजानपदांश्च समा—

10. ज्ञापयति अस्तु वः सम्विदितम्मयम् सोमकुण्डका ग्रामो ब्राह्मणवामरथ्येन कूटशासनेन भुक्तक इति विचार्य यतस्तच्छासनम् भुङ्त्वा तस्मादाक्षिप्यच स्वसीमा—

11. पर्यन्तः सोद्रङ्गस्सवर्वराजकुलाभाव्यप्रत्यायसमेतस्सर्व्वपरिहृतपरिहारो विषयाः दुद्धृतपिण्डः पुत्रपौत्रानुगश्चन्द्रार्कक्षितिसमकालीनो—

12. भूमिछिद्रन्यायैन मया पितुः परभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीप्रभाकरवर्द्धन देवस्य मातुर्भटारिका-महादेवीराज्ञीश्रीयशोमतीदेव्या—

13. ज्येष्ठभ्रातृपरमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीराज्यवर्द्धनदेवपादानञ्च पुण्ययशोभिवृद्धये सावर्णिसगोत्रच्छदोगसब्रह्मचारिभट्टवातस्वामि—

14. विष्णुवृद्धसगोत्रवह्वचसब्रह्मचारिभट्टशिवदेवस्वामिभ्याम् प्रतिग्रहधर्मण ग्रहारत्वेन प्रतिपादितो विदित्वा भवद्भिस्समनुमन्तव्यः प्रति—

15. वासिजानपदैरप्याज्ञाश्रवणविधेयैर्भत्वा यथासमुचिततुल्यमेयभागभोगकरहिरण्यादिप्रत्याया एतयोरेवोपनेयास्सेवोपस्थानाञ्च करणीयमित्य—

16. पिच अस्मत्कुलक्रममुदारमुदाहरद्भिरन्यैश्च दानमिदमभ्यनुमोदनीयम् लक्ष्म्यास्तडितत्स-लिलबुद्बुदचञ्चलाया दान फलं परयशः परिपालनञ्च कर्मणा—

17. मनसा वाचा कर्तव्यं प्राणीभिर्हितं हर्षेणैतत्सभाख्यातन्धर्म्मार्ज्जन मनुत्तमम् दूतकोत्र महाप्रमातारमहासामंतश्रीस्कंदगुप्तः महाक्षपटलाधिकरणाधि—

18. कृत सामंतमहाराजेश्वरगुप्तसमादेशच्चोत्कीर्ण्णमगर्ज्जरेण सम्वत् 25 मार्गशीर्ष वदि 6

स्वहस्तो मम महाराजाधिराज श्रीहर्षस्य

हिन्दी अर्थान्तर

1. ॐ स्वस्ति ! नाव, हाथी, घोड़ों से युक्त कपित्थका के महान् सैनिक शिविर से (घोषित) महाराज नरवर्द्धन (की रानी) वज्रिणी देवी से उनके पदानुध्यात, परमादित्यभक्त महाराज राज्यवर्द्धन पैदा हुए।

2. इनकी रानी अप्सरा देवी से उनके पादानुध्यात् महाराजत आदित्यवर्द्धन हुए।

3-4. उनकी रानी महासेनगुप्त देवी से परमभट्टारक महाराजाधिराज प्रभाकरवर्द्धन हुए, जो अपने

पिता के चरणों के ध्यान में अनुरक्त और आदित्य के परम भक्त थे। इनका यश चारों समुद्रों के पार फैला था। अन्य राजे उनके प्रताप तथा प्रेम के कारण उन्हें सिर झुकाते थे। इसने वर्णाश्रम-व्यवस्था की स्थापना के लिए अपना बल प्रयोग किया और सूर्य की भाँति प्रजा के दुःख का अन्त किया।

5-6. उनकी निर्मल यशवाली पत्नी यशोमती देवी से बुद्ध के परम भक्त और उन्हीं की भाँति परोपकारी परम भट्टारक महाराजाधिराज राज्यवर्द्धन पैदा हुए। ये भी पिता के चरणों में अनुरक्त परमादित्य परम भक्त थे। इनका उज्ज्वल यश संपूर्ण भुवन मंडल में फैल गया। इन्होंने कुवेर, वरुण और इन्द्र आदि लोकपालों के तेज को धारण कर सत्य और सन्मार्ग से अर्जित द्रव्य, भूमि आदि याचकों को देकर उनको मन से सन्तुष्ट किया। इनका चरित्र अपने पूर्वज राजाओं से उत्तम था।

7. साथ ही इन्होंने देवगुप्त आदि राजाओं को युद्ध में इस प्रकार दलित किया, जैसे दुष्ट घोड़ों को चाबुक के प्रहार से रोका या घुमाया जाता है। इन्होंने अपने शत्रुओं को समूल नष्ट कर पृथ्वी को जीत लिया और प्रजा का हित करते हुए प्रतिज्ञा-पालन के लिए शत्रु के घर में प्राण त्याग दिया।

8. इन्हीं महाराज राज्यवर्द्धन के छोटे भाई उनके चरणों के ध्यान में रत, परम माहेश्वर तथा माहेश्वर की तरह प्राणियों पर दया करने वाले परमभट्टारक महाराजाधिराज हर्ष ने श्रावस्ती भुक्ति के अन्तर्गत कुंडधानी विषय के सोमकुण्डका ग्राम में

9. एकत्रित महासामंत, महाराज, दौस्साधसाधनिक, प्रमातार, राजस्थानीय कुमारामात्य, उपरिक, विषयपति, चाट, भट, सेवक और निवासियों के लिए निम्नलिखित आज्ञा-पत्र जारी किया—

10-13. सर्वसाधारण को विदित हो कि यह सोमकुण्डका नामक गाँव, जिसे वामरथ्य ब्राह्मण ने अपने अनुचित तर्क से, अपने अधिकार में कर लिया था, उसके प्रमाण को मैंने गलत सिद्ध करके उस गाँव को उससे वापिस ले लिया। मैंने अपने पिता पदमभट्टारक महाराजाधिराज प्रभाकरवर्द्धन, माता परमभट्टरिका महारानी यशोमती देवी और पूज्य अग्रज महाराज राज्यवर्द्धन के पुण्य और यश की वृद्धि के लिए, अपनी सीमा तक फैले इस गाँव को उसकी संपूर्ण आय सहित, जिस पर राजवंश का अधिकार था सभी प्रकार के भारों से मुक्त और अपने जिले से अलग कर चंद्र, सूर्य और पृथ्वी की स्थिति तक पुत्र-पौत्र आदि के लिए भूमिछिद्र न्याय से सावर्णिगोत्रीय सामवेदी भट्टवातस्वामी

14. तथा विष्णुवृद्धगोत्रीय ऋग्वेदी भट्ट शिवदेव स्वामी को अग्रहार के रूप में दान दिया। ऐसा मानकर आप इसे स्वीकार करें।

15. इस गाँव के निवासियों को चाहिए कि हमारी आज्ञा को शिरोधार्य कर तुल्य, मेय, भाग, भोग, कर, सुवर्ण आदि इन्हीं दोनों ही ब्राह्मणों को दें और इन्हीं की ही सेवा करें।

16. रिक्त हमारे महान् कुल से संबंध रखने वाले और दूसरों को भी इस दान का अनुमोदन करना चाहिए कि जल के बुलबुले तथा बिजली की भाँति चंचला लक्ष्मी है उसका कार्य दान देना और दूसरों के यश की रक्षा करना है।

17. मनसे, वचन से और कर्म से जीवों का हित करना चाहिए। इसको हर्ष ने पुण्यार्जन करने की उत्तम रीति बतलाई। इस विषय में महाप्रमातार महासामंत श्रीस्कंदगुप्त दूतक हैं और महाक्षपटल के कार्यालय में

18. सामंत महाराज ईश्वर गुप्त की आज्ञा से गुर्जर ने इसे उत्कीर्ण किया संवत् मार्गशीर्ष वदी 6 को।

हस्ताक्षर महाराजाधिराज श्रीहर्ष।

7. पुलकेशी द्वितीय का अयहोल लेख

(Aihol Inscription of Pulkeshi II)

स्थान : अयहोल, जिला — बीजापुर

भाषा : संस्कृत

लिपि : दक्षिणी ब्राह्मी

काल : वि० सं० 556 (= 499 ई०)

विषय : पुलकेशिन द्वितीय तक चालुक्य शासकों का वर्णन, पुलकेशिन द्वितीय की कीर्ति का उल्लेख।

मूल-पाठ

जयति भगवाञ्जिनेन्द्रो वीतजरामरणजन्मनो यस्य।
ज्ञानसमुद्रान्तर्ग्गतमखिलंञ्जगन्तर्रपमिव ॥ 1 ॥

तदनु चिरमपरिमेय श्चलुक्य कुलविपुलनिधिर्ज्जयति।
पृथिवी मौलिललाम्नां यः ⌣⌢ प्रभवः ⌣⌢ पुरुषरत्नाम् ॥ 2 ॥

शूरे विदुषि च विभजन्दानंमानंश्च युगपदेकत्र।
अविहितयाथासंख्योजयति च सत्याश्रयस्सुचिरम् ॥ 3 ॥

पृथिवीवल्लभशब्दो येषामन्वर्त्थतांश्चिरञ्जातः।
तव्दंशेषु जिगीषुषु तेषु बहुष्व्प्यतीतेषु ॥ 4 ॥

नाना हेतिशताभिधातपतितभ्रान्ताश्वपत्तिद्विपे
नृत्यद्भीमकबन्धखड्गकिरणज्वालासहस्रणे।
लक्ष्मीर्भावितचापलपि च कृता शौर्य्येण येनात्मसा—
द्राजासीज्जयसिंहवल्लभ इति ख्यातश्चलुक्यान्वयः ॥ 5 ॥

तदात्मजोभूद्रणरागनामा
    दिव्यानुभावो जगदेकनाथः।
अमानुषत्वं किल यस्य लोकाः
    स्सुप्तस्य जानाति वपुः प्रकर्षात् ॥ 6 ॥

तस्याभवत्तनूजः पोलेकेशी यः श्रितेन्दुकान्तिरपि।
श्रीवल्लभोप्ययासीद्वातापिपुरीवधूवरताम् ॥ 7 ॥

यस्त्रिवर्ग्गपदवीमलं क्षितौ
नानुगन्तुमधुनापि राजकम्।
भूश्व येन हयमेधयाजिना
प्रापितावभृथमज्जना बभौ ॥ 8 ॥

नलमौर्यकदम्बकालरात्रिः—
स्तनयस्तस्य बभूब कीर्तिवर्म्मा।
परदारनिवृत्तचित्तवृत्ते—
रपि धीर्यस्य रिपुश्रीयानुकृष्टा ॥ 9 ॥

रणपराक्क्रमलब्धजयश्रिया
सपदि येन विरूग्णमशेषतः।
नृपतिगन्धगजेन महौजसा
पृथुकदम्बकदम्बकदम्बकम् ॥ 10॥

तस्मिन्सुरेश्वरविभूतिगताभिलाषे
राजाभवत्तदनुजः किल मङ्गलेशः।
यः पूर्वपश्चिम समुद्र तटोषिताश्च—
सेनारज, पटर्विनम्ति दिग्वितानः॥ 11॥

स्फुरन्मयूखैरसिदीपिकाशर्तै—
र्व्युदस्यमातङ्गतमिस्रसञ्चयम्।
अवाप्तवान्यो रणरङ्गमन्दिरे
कटच्छुरिश्रीललनापरिग्रहम्॥ 12॥

पुनरपिचजघृक्षोस्सैन्यमाक्क्रान्तसालम्
रूचिरबहुपताकं रेवतीद्वीपमाशु।
सपदि महदुदन्वत्तीयसंक्क्रान्तबिम्बिम्
वरुणंबलमिवाभूदागतं यस्य वाचा॥ 13॥

तस्याग्रजस्य तनये नहुषानुभावे
लक्ष्म्या किलभिलषिते पोलेकेशिीनामम्नि
सासूयमात्मनि भवन्तमतः पितृव्यम्
ज्ञात्त्वापरुद्धचरितव्यवसायबुद्धौ॥ 14॥

स यदुपचित मन्त्रोत्साहशक्तिप्रयोग—
क्षपितवलविशेषो मङ्गलेशःसमन्तात्
स्वतनयगतराज्यारम्भयत्नेन साद्धं
निजमतनु च राज्यंञ्जीवितंञ्चोज्झति स्म॥ 15॥

तावत्तच्छत्रभङ्गो जगदखिलमरात्यन्धकोरापरुद्धं
यस्यासह्यप्रतापद्युतिततिभिरिवाक्क्रान्तमासीत्प्रभातम्।
नृत्यद्विद्युत्पताकैः प्रजविनि मरूति क्षुण्णपर्यान्तभागै—
र्ग्गर्जद्भिर्व्वारिवाहैरलिकुलमलिनं व्योम यातं कदा वा॥ 16॥

लब्धवा कालं भृवमुपगते जेतुमाप्पायिकाख्ये
गोविन्दे च द्विरदनिकरैरुत्तरांम्भैमरथ्याः।
यस्यानीकैर्युधि भथरसज्ञात्वमेकः प्रयात—
स्तत्रावाप्तंफलमुपकृतस्यापरेणापि सद्यः॥ 17॥

वरदातुङ्गतरङ्गरङ्गविलसद्ध्रस्धंसावलीमेखलां
वनवासीमवमृतःसुरपुरप्रस्पर्धिनीं सम्पदा।
महता यस्य बलार्ण्णवेन परितःसञ्छादितोर्वीतलं
स्थलदुर्गञ्जलदुर्ग्गतामिव गतं तत्तत्क्षणे पश्यताम्॥ 18॥

गङ्गालुपेन्द्रा व्यसनानि सप्त
हित्वपुरोपार्जितशम्पदोऽ पि।
यस्यान्नुभावोपनताःसदास-
न्नासन्नसेवामृतपानशौण्डः ।। 19।।
कोङ्कणेषु यदादिष्ट चण्डदण्डाम्बुवीचिभिः
उदस्तास्तरसा मौर्यपल्वलाम्बुसमृद्धयः ।। 20।।
अपरजलधेर्लक्ष्मीं यस्मिन्पुरीम्पुरभित्प्रभे
मदगजघटाकारैर्नावां शतैर्रवमन्दति।
जलदपटलानीकाकीर्णन्नवोत्पलमेचक
जलनिधिरिव ब्योम व्योन्नस्सभोभवदम्बुधिः ।। 21।।
प्रतापापनता यस्य लाटमालवगुर्जराः।
दण्डोपनतसमन्तचर्य्या चार्या इवाभवन् ।। 22।।
अपरिमितविभूतिस्फीतसामन्तसेना—
मुकुटमणिमयूखाक्क्रान्तपादारविन्दः ।।
युधि पतितगजेद्रानीकबीभत्सभूतो
भयविगलितहर्षो येन चाकारि हर्षः ।। 23।।
भुवमुरुभिरनीकैश्शासतौ यस्य रेवा—
विविधपुलिनशोभावन्ध्य विन्ध्योपकण्ठः।
अधिकतरमराजत्स्वेन तजोमहिम्ना
शिखरिभिरिभवर्ज्यो वर्ष्मणां स्पर्द्धयेव ।। 24।।
विधिवदुपचिताभिश्शक्तिभिश्शक्रकल्प—
स्तिसृभिरपि गुणौधैस्वैश्च माहाकुलाद्यैः
अगमदधिपतित्वं यो महाराष्ट्रकाणां
नवनवतिसहस्रग्रामभाजां त्रयाणाम् ।। 25।।
गृहिणां स्वस्वगुणैस्त्रिवर्गतुङ्गा।
विहितान्यक्षितिपालमानभङ्गाः।
अभवन्नुपजातभीतिलिङ्गा।
यदनीकेन सकोसलाः कलिङ्गाः ।। 26।।
पिष्टं पिष्टपुरं येन जातं दुर्ग्गमदुर्ग्गगम्—
चित्रं यस्य कलेर्वृत्तम् जातं दुर्ग्गमदुर्ग्गगमम् ।। 27।।
सन्नद्धवारणघटास्थगितान्तरालं
नानायुधक्षतनरक्षतजाङ्गरागम्।
आसीज्जलं यदवमर्द्दतमभ्रगर्भ
कौनालमम्बरमिवोर्ज्जित सान्ध्यरागम् ।। 28।।

उद्‌धूतामलचामरध्वज शतच्छत्रान्धकारैर्बलैः
शौर्य्योत्साहरसोद्धतारिमथनैर्मौलादिभिः ष्षडविधैः
आक्रान्तात्मबलोन्नतिम्बलरजःसञ्छन्नस्काञ्चीपुर —
प्राक्रारान्तरितप्रतापकरोद्यः पल्लवानांम्पतिम् ।। 29 ।।
कावेरी हतशफरीविलोलनेत्रा
चोलानां सपदि जयोद्यतस्य यस्य
प्रश्योतन्मदगजसेतुरूद्धनीरा
संस्पर्शं परिहरति स्म रत्नराशेः ।। 30 ।।
चोलकेरलपाण्ड्यानाम् योभूत्तत्र महर्द्धये ।
पल्लवानीकनीहार तुहिनेतरर्दधितिः ।। 31 ।।
उत्साहप्रभुमन्त्रशक्तिसहिते यस्मिन्समस्ता दिशो
जित्वा भूमिपतीन्विसृज्य महितानाराद्धय देवद्विजान् ।
वातापीन्नगरीप्रविश्य नगरीमेकामिवोर्म्मिमांम्
चञ्चन्नीरधिनीलनीरपरिरखां सत्याश्रये शासति ।। 32 ।।
त्रिशंत्सु त्रिसहस्त्रेषु भारतादाहवादितः ।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु गतेष्वब्देषु पञ्चसु ।। 33 ।।
पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च ।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम ।। 34 ।।
तस्याम्बुधित्रयनिवारितशासनस्य
सत्याश्रयस्य परमाप्तवता प्रसादम्
शैलं जिनेन्द्र भवनं । भवनम्महिम्नां
निर्मापितं मतिमता रविकीर्त्तिनेदम् ।। 35 ।।
प्रशस्तेर्व्वसते, श्चास्या जिनस्य त्रिजगद्गुरोः ।
× कर्ताकारयिता चापि रविकीर्तिः × कृति स्वयम् ।। 36 ।।
येनायोजि नवेश्मस्थिरमर्त्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म ।
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रित —
कालीदासभारविकीर्तिः ।। 37 ।।
मूल वल्लिवेल्मल्तिकवाडमच्चनूर्ग्गाङ्गिवूर्पुलिगिरे
गण्डवग्राम मा इति अस्य भुक्तिः । गिरि (रे) स्त
टात्पश्चिमाभिगत निमूवारिय्यवत् महापथान्तपुरस्य
सि (सी) मा उत्तरतः दक्षिणतो

हिन्दी अर्थान्तर

1. भगवान विष्णु की जय हो, जो वृद्धावस्था, मृत्यु और जन्म की शंका से मुक्त हैं। समुद्र में निहित टापू की तरह उनके ज्ञान रूपी समुद्र में सम्पूर्ण संसार टापू की तरह समाहित है।

2. इनके बाद का समुद्र रूपी विशाल चालुक्य वंश स्थायी तथा असीम है। यह कुल रूपी समुद्र पुरुष रत्नों का उद्भव स्थल है जो रत्न पृथ्वी के मस्तक के आभूषण हैं।

3. सत्याश्रय (इस वंश का शासक) चिर विजय हो जो दान और मान के वितरण में वीर और विद्वानों में भेद न कर दोनों में ही दान और मान का समान वितरण करता था।

4. विज के इच्छुक चालुक्य वंश में उत्पन्न पहले के राजाओं के बीच यह 'पृथ्वी बल्लभ' नाम की सार्थकता चिरकाल तक बनाए रखा।

5. जयसिंह बल्लभ इस वंश का राजा हुआ। उसने शस्त्रों के सैकड़ों आघात से भ्रान्त होकर अश्व पंक्ति, पदाति तथा हस्ति सेना आदि के नाचते हुए, मयंक चमचमाती तलवार से युक्त युद्ध में व्याप्त चंचला लक्ष्मी को अपने शौर्य से जीत लिया था।

6. रणराज इसका पुत्र था। उसके सोए हुए शरीर की विशालता को देखकर संसार उसे देवता मानता था। वह संसार का स्वामी था।

7. उसका पुत्र पुलकेशी हुआ जो चन्द्र-कान्ति का आश्रय लेकर लक्ष्मीवल्लभ होने पर भी वातापिपुर के श्री कुल-वधू का पद प्राप्त किया था।

8. पुलकेशी जिसके त्रिवर्ग पद को समझने में राजमण्डल समर्थ नहीं हुआ उसने अश्वमेघ यज्ञ किया तथा यज्ञ की समाप्ति के समय स्नान द्वारा उसने पृथ्वी को चमत्कृत कर दिया था।

9. उसका पुत्र कीर्तिवर्मा नल, मौर्य और कदम्ब राजाओं के लिए कालरात्रि था। यद्यपि उसने दूसरों की स्त्री से चित्त हटा लिया था फिर भी राजलक्ष्मी ने उसे आकर्षित किया था।

10. कीर्तिवर्मा ने पराक्रम से विजय लक्ष्मी प्राप्त किया। राजाओं के मदमत्त कुंजर के समान कदम्ब वंश को कदम्ब वृक्ष की तरह उखाड़ दिया था।

11. इन्द्रपद की प्राप्ति की इच्छा वाला कीर्तिवर्मा के मरने पर उसका यह अनुज राजा बना। पूर्वी समुद्र तट से पश्चिमी समुद्र तट तक उसके पड़ाव के घोड़ों की टाप से उड़ी धूल ऐसी फैली जैसे चन्दवा फैला दिया गया हो।

12. उसने शत्रुओं के हाथी रूपी अन्धकार को सैकड़ों तलवार रूपी दीपकों से नष्ट कर 'कटच्छुरी'—कलचूरी—वंश की राजकन्या से युद्ध मण्डप में विवाह किया था।

13. पुनः उसने पताकाओं से युक्त विजय की इच्छा से रेवती द्वीप को चारों ओर से सेनाओं से घेर लिया था। समुद्र में उसके सैन्य मण्डल का प्रतिबिम्ब ऐसा लगता था मानो मंगलेश की आज्ञा पाकर वरुण की सेना ही आ गई हो।

14. कीर्तिवर्मा, जो मंगलेश का बड़ा भाई था उसका लड़का पुलकेशिन राजा बना। वह नहुष की तरह प्रभावशाली तथा लक्ष्मी का प्रियपात्र था। चाचा मंगलेश को अपने प्रति ईर्ष्यालु जानकर, जिसका स्वभाव रोका नहीं जा सकता था, उससे युद्ध हुआ जिसमें मंगलेश मारा गया।

15. पुलकेशिन की बढ़ती मन्त्र शक्ति तथा उत्साह शक्ति से मंगलेश की सम्पूर्ण शक्ति विनष्ट हो गई थी। उसने अपने पुत्र को राज्य दिलाने के प्रयास में अपने राज्य और प्राणों से हाथ धो दिया।

16. मंगलेश के राज्य के अन्त के साथ ही सम्पूर्ण विश्व शत्रुरूपी अन्धकार में विलीन हो गया। किन्तु पुलकेशिन ने अपने पराक्रम से पुनः नया प्रकाश आलोकित किया। अथवा नाचती हुई विद्युत रूपी पताकाओं से युक्त वायु से टूटे हुए किनारों वाले, मेघ गर्जन से युक्त आकाशमण्डल भ्रमरों की कालिमा से जैसे युक्त हो जाता है जबकि वेग से पवन चलता हो।

17. आप्यायिक और गोविन्द नाम के राजाओं ने अपनी हस्ति सेना भीमरथी नामक नदी के उत्तरी तट पर भेजा था जबकि मंगलेश का राज्य समाप्त हो चुका था तथा पुलकेशिन का नवजात राज्य प्रारम्भ हो रहा था। इनमें से एक पुलकेशिन की सेना से भयाक्रान्त होकर भाग गया था तथा दूसरा आत्मसमर्पण का फल प्राप्त कर उससे मैत्री कर लिया।

18. जिस (पुलकेशिन) ने सेना रूपी समुद्रा के द्वारा वनवासी नगरी को चारों ओर से आच्छादित कर लिया है तथा अपनी समृद्धि में इन्द्र को भी लज्जित करने वाला तथा वरदा नदी की उत्तुङ्ग तरंगों की रंगशाला में पलने वाले हंस की अवलि रूपी कर्धनी से घिरी उस नगरी को विध्वंस कर दिया।

19. प्राचीन काल की उपार्जित सम्पत्ति के होने पर भी जिन्होंने सप्त व्यसनों का त्याग कर दिया था, वे 'गङ्ग' और 'आलुप' वंश के राजा पुलकेशिन के प्रभाव से उसके समीप रहकर उसके सेवा रूपी अमृत का पान मस्ती से करते थे।

20. कोंकण प्रदेश मे मौर्यरूपी लघु जलाशय प्रचण्ड सेना रूपी जल राशि के द्वारा बहा दी गई थी।

21. त्रिपुर को मारने वाले भगवान शंकर की आभा वाले पुलकेशिन ने मदमत्त हस्ति सेना की तरह सहस्रों नौकाओं से लक्ष्मी की तरह पश्चिमी समुद्र की नगरी मौर्य-पुरी पर आक्रमण कर दिया। तब सेना की तरह मेघमाला से व्याप्त नव-कुसुमित नील-कमल के समान नीला नभ समुद्र के समान तथा समुद्र आकाश के समान दीखने लगा।

22. जिनके प्रभाव से झुके हुए लाट, मालव और गुर्जर देश के राजा मानो सेना के प्रभाव से झुके हुए सामन्तों की सेवा विधि में निपुण हो गए हों,

23. अपरिमित विभूति से समृद्ध, सामन्त सेना के मुकुटमणि से सुशोभित चरणकमल है जिसका, युद्ध क्षेत्र में हाथियों की सेना के नष्ट होने से वह हर्ष भी पुलकेशिन से भयाक्रान्त होकर हर्षरचित हो गया।

24. पुलकेशिन इस पृथ्वी पर जब अपनी विशाल सेना के साथ शासन कर रहा था तब बालू से परिपूरित शोभा वाले नर्मदा नदी का तटीय भाग और हाथियों से रहित पहाड़ों की भाँति शरीर से प्रतिस्पर्धा रखने वाले विन्ध्याचल पर्वत का पार्शवर्ती भाग अपने तेज से अत्यधिक शोभा युक्त हो गया।

25. पुलकेशिन में मन्त्रशक्ति, उत्साहशक्ति और प्रभुशक्ति का समन्वय था। वह कुलीनता में इन्द्र के समान था। उसका आधिपत्य तीनों महाराष्ट्र प्रदेश के निन्यानवे गाँवों तक था।

26. वह धर्म, अर्थ और काम को पूर्ण करने में गृहस्थोचित तथा सर्वश्रेष्ठ था। कोशल और कलिंग के राजा जो दूसरे राजाओं के अभिमान को नष्ट करने वाले थे वे भी इससे डरते थे।

27. उसने पिष्टपुर नगर को, जो दुर्ग से युक्त था, अपनी विजय के द्वारा दुर्ग रहित बना दिया था। उसमें कलियुग के दुर्गुण प्रवेश तक नहीं कर सके थे।

28. कुनाल झील पुलकेशिन द्वारा विजित हुआ था। इसे सन्नद्ध हाथियों की घटाओं से युक्त और विविध प्रकार के घायल घावों से निकलनेवाले लाल रंग के रक्त रूपी अंगराग की तरह का जल बादलों से युक्त और संध्या काल के लाल आकाश-सा दिखाई देता था।

29. पुलकेशिन ने अर्जित तथा मौल आदि छः प्रकार के सैनिकों के सहयोग से, जो वीरता और उमंग से भरे हुए थे तथा लहराते हुए पताका, चंबर और छत्रों से आच्छादित थे, पल्लव राजा महेन्द्रवर्मन की सशक्त सेना को परास्त किया। उसने काञ्ची नगरी के प्रताप को उसकी चाहरदीवारी में, अपनी सेना के अभियान में उड़ाये गये धूलि के आच्छादन से, नजरबन्द कर दिया था।

30. कावेरी नदी का प्रवाह जो द्रुत गति से बहने के कारण मछली के चंचल नेत्रों की तरह अपने गति में अस्थिर था वह पुलकेशिन के मद चूते हुए हाथियों के सेतु से अपने प्रवाह के रुक जाने से समुद्र में पहुँचने के मार्ग में ही रुक गया।

31. पुलकेशिन सूर्य के समान था जिसके समक्ष पल्लवों की सेना ओस कण के समान थी तथा वही चोल, पाण्ड्य तथा केरल के राजाओं के पराजय के बाद इसके समृद्धि के हेतु हुआ। अर्थात् पल्लवों के पराजय के बाद चोल, पाण्ड्य, केरलों ने इसकी अधीनता स्वीकार कर लिया।

32. पुलकेशिन का नाम 'सत्याश्रय' था। उसमें उत्साहशक्ति, प्रभुशक्ति और मन्त्रशक्ति थी। उसने दिशाओं के राजाओं को जीतकर तथा उनको विदा करके तेजयुक्त देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करके दूसरी पृथ्वी के समान वातापी नगरी में प्रविष्ट होकर जो चंचल समुद्र के नीचे जल भरी हुई खाई से घिरी थी, शासन कर रहा था।

33. महाभारत युद्ध के 3735 वर्ष बाद

34. तथा कलियुग में शक शासकों के संवत् (शक संवत्) के 556 वर्ष बाद

35. तब पुलकेशिन जो सत्याश्रय नाम से विख्यात था तथा जिसका शासन तीनों समुद्र पर्यन्त था उसकी कृपापूर्ण सहायता से यह पत्थर का जैन मन्दिर अपने गौरव का प्रतीक स्वरूप रविकीर्ति ने बनवाया।

36. रविकीर्ति ने ही इस मन्दिर का निर्माण कराया तथा तीनों भुवन के स्वामी भगवान् जिन की इस प्रशस्ति को बनवाया था।

37. रविकीर्ति ने जो बुद्धिमान था अपने अर्थ विधान के लिए पत्थर का यह दृढ़ जैन मन्दिर बनवाया था तथा भारवी और कालिदास के यश को अपनी कविता द्वारा अर्जित किया था।

ऐतिहासिक महत्त्व

दक्षिणी भारत के बादामी जिले में अयहोल नामक एक गाँव है। उस गाँव में रविकीर्ति ने एक जैन मन्दिर का निर्माण कराया तथा इस मन्दिर की दीवार पर एक लेख भी उत्कीर्ण कराया। यह मन्दिर अयहोल ग्राम के मेंगुटी नामक क्षेत्र में बना है। यही स्थान था जहाँ जैन भिक्खु जैनेन्द्र रहता था। इस अभिलेख से पुलकेशिन द्वितीय के व्यक्तित्व तथा कृतित्व के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण मिलता है। इसीसे इसे पुलकेशिन द्वितीय का अयहोल अभिलेख कहते हैं।

पुलकेशिन चालुक्य वंशीय शासक था। चालुक्य शासकों को उनकी स्थिति के अनुसार दो शाखाओं में विभिक्त किया जा सकता है—एक पूर्वी तथा दूसरे पश्चिमी शाखा के चालुक्य। पश्चिमी शाखा के राजाओं की राजधानी बादामी थी। इसका पुरातन नाम वाटपीपुर (वातापी) था। यह कथा प्रचलित है कि यही कहीं अगस्त ऋषि ने वातापी नामक राक्षस की हत्या की थी इसीसे इस स्थान

का नाम वातापी पड़ा जो पीछे वाटपीपुर तथा बादामी नाम से जाना जाने लगा। चालुक्यों की दूसरी शाखा जिसे पूर्वी चालुक्य कहते हैं आन्ध्रप्रदेश में शासन करती थी। इनकी राजधानी वेंगी थी। पर जहाँ तक इस अभिलेख का प्रश्न है यह पश्चिमी शाखा के चालुक्य वंश से संबंधित है।

इस अभिलेख का विषय है पुलकेशिन द्वितीय का लूट, उसकी विजय तथा उसके कार्य। इस अभिलेख में तिथि भी दी गई है। यद्यपि अन्य अभिलेखों की तरह इसकी तिथि स्पष्ट नहीं है। इसके 34वें श्लोक में शक संवत् 554 उल्लिखित है। इससे ज्ञात होता है कि यह शासक (554 + 78) 632 ई० में था।

यह अभिलेख शुद्ध संस्कृत में लिखा है। इसकी शैली काव्यगत है तथा शब्दावली एवं रचना साहित्यिक है। यह कवि संस्कृत साहित्य के इतिहास में भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अलंकार शास्त्र के लिए यह विशेष प्रसिद्ध है। इसने कालिदास के रघुवंश तथा भारवी के किरातार्जुनीय से भावों और शैली को ग्रहण किया है। रघुवंश में रघु के विजय के सम्बन्ध में जो श्लोकों हैं उनमें से कुछ श्लोक यहाँ भी मिलते हैं। इसलिए यह अभिलेख जहाँ इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है वहीं साहित्य की दृष्टि से भी।

इसके अक्षर दक्षिण भारतीय प्रकार के चालुक्य शैली के हैं। इसमें कुछ, बहुत ही विशिष्ट चिह्नों का प्रयोग हुआ है जैसे जिह्वामूलयि। विसर्ग के स्थान यहाँ उपयधमानीय का प्रयोग हुआ है।

वर्ण विषय

यह अभिलेख जैन भिक्खु जैनेन्द्र की प्रार्थना के साथ प्रारम्भ होती है। इसमें चालुक्य वंश के प्रारम्भिक शासकों के सम्बन्ध में विवरण मिलता है। बल्लभ उपाधिकारी राजा जयसिंह इस वंश का आदि शासक था। इसके बाद इसका उत्तराधिकारी रणराज सिंहासनासीन हुआ। यह पश्चिमी विश्व का स्वामी कहा गया है। इसका पुत्र पुलकेशिन द्वितीय था। इसे लाक्षणिक रूप में वातापीपुर का स्वामी तथा देवीश्री का पति कहा गया है। इसने अवश्मेघ यज्ञ किया था। इसके बाद इसका लड़का गद्दी का उत्तराधिकारी बना। इसका नाम कीर्तिवर्मन था। इसकी प्रशंसा बड़े ही उच्च शब्दों में की गयी है। इसने दक्षिणी भारत में अनेक विजय किया था।

इसके विजयों का उल्लेख 9वें श्लोक में किया गया है, यथा—

नीलमौर्यकदम्बकालरात्रिस्तनयतस्य बभूव कीर्तिवर्मा।

परद्यर निवृत्ति चित्र वृत्तेरपि धीर्यस्य रिपुश्रियानुकृष्टा।।

इससे ज्ञात होता है कि इसने नल, मौर्य तथा कदम्बों को जीत लिया था। इनकी समता निम्न की जा सकती है

1. नल—इस परिवार की समता कलिंग तथा बरार में शासन करने वाले नल परिवार से की जा सकती है। ये दक्षिणी कोंकण के रहने वाले थे। यह स्थान वर्तमान बम्बई प्रेसिडेन्सी में है।

2. मौर्य—यह भी दक्षिणी भारत की एक जाति थी जो आज बम्बई प्रेसिडेन्सी के समुद्री तट पर रहती थी।

3. कदम्ब—ये बम्बई के धारवाड़ जिले के शासक थे। इनका शासन केन्द्र बनवासी था। कीर्तिवर्मन ने इन्हें पराजित किया था। इस समय कदम्ब शासक कृष्ण वर्मन द्वितीय पराजित हुआ था।

कीर्तिवर्मन के बाद इसका छोटा भाई मंगलेश गद्दी पर बैठा। यह बड़ा ही प्रतिभासम्पन्न शासक था। इसने भी बहुत विस्तृत विजय की थी। इसके विषय का वर्णन 11, 12 और 13वें श्लोक में मिलता है। इसमें वर्णित है कि मंगलेश ने पूर्वी और पश्चिमी घाट के बीच के प्रदेशों को जीत लिया था। इसके अतिरिक्त उत्तरी तथा मध्य भारत के कलचूरियों को भी इसने जीता। इसके अनुसार उस समय का कलचूरी शासक शंकरगण का पुत्र था जो मध्यप्रदेश के हैहय वंशीय राजाओं में प्रसिद्ध था। इसके बाद इसने रेवती को विजित किया जो आरकान घाट पर बसे थे जहाँ चालुक्य राजाओं के सिक्के बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं। यह भी कहा जा सकता है पश्चिमी घाट पर यह एक छोटा-सा द्वीप था। इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इस शासक ने मालवा तथा गुजरात को भी जीत लिया था जहाँ कलचूरी शासन रहे थे।

11वें श्लोक से ज्ञात होता है कि कीर्तिवर्मन का पुत्र पुलकेशिन द्वितीय अपने चाचा मंगलेश के सिंहासनारोहण के कारण राज्य छोड़कर जंगल में चला गया था। वहाँ से उसने पड़ोसी राज्यों से धीरे-धीरे शक्ति संचित किया और मंगलेश को पराभूत कर अपना यश बढ़ा लिया।

इसके बाद पुलकेशिन के राजनीतिक कार्यों का ज्ञान प्राप्त होता है। 17 से 24वें श्लोक में पुलकेशिन द्वितीय के राजनीतिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। इसने गोविन्द अप्पायिका नामक राजा को हराया तथा मैसूर प्रदेश के बनवासी के राजा को भी पराजित किया था। इसके बाद इसने कोंकण तथा मौर्य जाति के लोगों को पराजित किया। इसने लाट, मालव तथा गुजरात को भी जीता। इन राज्यों के राजाओं ने पुलकेशिन द्वितीय के सम्मुख अपना मस्तक झुका लिया था।

इस अभिलेख के 23वें श्लोक से हर्षवर्धन तथा पुलकेशिन द्वितीय के बीच युद्ध का विवरण दिया गया है। कन्नौज के शासक हर्षवर्द्धन ने अपनी स्थिति उत्तरी भारत में बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण बना लिया था। वह उत्तरी भारत के अधिकांश प्रदेशों को जीतने के पश्चात् दक्षिण की ओर विजय करने का निश्चय किया। पर वह इस आक्रमण में पराजित हुआ। उसकी यह पराजय विंध्य पर्वत में हुई थी। पुलकेशिन द्वितीय से पराजित होकर यह यहाँ लौटने के लिए बाध्य हुआ। यह युद्ध लगभग 630 ई० में हुआ था। दोनों दलों की सेनाओं को इस युद्ध में कठोर विपत्ति का सामना करना पड़ा था। यद्यपि हर्ष के पराजय का सीधा विवरण इस अभिलेख से नहीं मिलता परन्तु इसके वर्णन से अवश्य स्पष्ट होता है कि हर्ष की सेना इस अभियान में असफल रही तथा उसे पराजित होना पड़ा था।

पुनः पुलकेशिन ने कांची के पल्लवों को पराजित किया तथा कोशल और कलिंग को भी जीत लिया। इस प्रकार उसने सम्पूर्ण दक्षिणी भारत पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। यहाँ कोशल से अभिप्राय दक्षिणी कोशल से है। इसने वातापी को अपनी राजधानी बनाया तथा अपना नाम सत्याश्रय धारण किया। इसी के दरबारी कवि रविकीर्ति ने जैनेन्द्र का मन्दिर भी निर्मित कराया था।

हर्ष के पराजय की घटना उसके समय भारत में आए हुए चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होती है। इन दोनों शासकों के बीच परस्पर युद्ध 630 ई० के लगभग हुआ होगा। पुलकेशिन 'दक्षिणापथ पृथीव्याः स्वामी' था। इसने अपना साम्राज्य महाकोशल तथा कलिंग तक फैला लिया था।

25वें श्लोक से ज्ञात होता है कि इसका अधिकार महाराष्ट्रिक पर भी हो चुका था। इस नगर में कुल 99 सहस्त्र गाँव थे। अपने विजय क्रम में पुलकेशिन इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हुआ पर उसने पिष्टिपुर को भी जीत लिया। यह गोदावरी के तट पर स्थित था। यहाँ इसका अनुज विष्णुवर्धन शासन करता था। इसने वेंगी को केन्द्र बनाकर अपनी एक अलग राजधानी स्थापित कर चालुक्यों की एक दूसरी शाखा को स्थापित किया था। चोल शासकों ने भी इसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। इस प्रकार यह दक्षिणी भारत के पूर्वी तट पर पीठापुर के और दक्षिण तक विजय कर लिया था। कावेरी को पार कर और दक्षिण की और भी बढ़ा था। इधर यह केरल तथा पाण्ड्य प्रदेश तक गया। इन प्रदेशों के शासक पल्लवों का विरोध कर रहे थे। इस अभियान में पल्लवों ने भी पुलकेशिन द्वितीय को सहायता दी थी। डॉ० भण्डारकर के अनुसार पहले पल्लव पराजित हुए और पीछे चोल, केरल, पाण्ड्य आदि भी पुलकेशिन द्वितीय द्वारा जीत लिए गए। इस प्रकार दक्षिण में अपनी शक्ति बढ़ाकर वह वातापी नगर में प्रवेश किया तथा यहाँ अपनी राजधानी बनाया। इस राजा ने अपना नाम सत्याश्रय रखा। राजधानी स्थापित करने के बाद वहाँ इसने अनेक यज्ञ किया। पुलकेशिन के विजय की पुष्टि ह्वेनसांग भी करता है। वह इसे 'बुलेकिशे' नाम से सम्बोधित करता है तथा यह कहता है कि एक विजेता क्षत्रिय, आश्रयदाता एवं अनेक यज्ञों का कर्ता था। इसने अपना राज्य भी बहुत अधिक विस्तृत किया था।

इस प्रकार पुलकेशिन के दिग्विजय का वर्णन करने के बाद प्रशस्तिकार ने लिखा है कि तीर्थंकर जितेन्द्र का मण्डल रविकीर्ति ने बनाया था कि यह सत्याश्रय के अधीनस्त आश्रय प्राप्त कर चुका था। सत्याश्रय तीनों समुद्रों से घिरे हुए पृथ्वी का स्वामी था।

रविकीर्ति की तुलना कालिदास तथा भारवी से की गई है। इसकी काव्यगत कुशलता इन साहित्य शिरोमणियों की तरह रही है।

8. शशांक कालीन गंजाम ताम्रपत्र अभिलेख
(Ganjam Copper Plate Inscription of Sasanka)

स्थान : गंजाम, प्रांत उड़ीसा

भाषा : संस्कृत

लिपि : उत्तर भारतीय ब्राह्मी

काल : गु० सं० 300 (619 ई०)

विषय : शशांक के समय के दान पत्र

सन्दर्भ : पाण्डेय, हि० ए० लि० इ०, पृ० 147

मूल-पाट

(प्रथम पत्र)

1. ओं स्वस्ति। चतुरुदधिसलिलवीचोमेखलानिलीनायां सद्वीपा—
2. गरपत्तनवत्या वसुंधरायां गौप्ताब्दे वर्षशतत्रये वर्त्तमाने
3. महाराजाधिराजश्रीशशांकराज्ये शासति गगनतल—
4. वनि[:] सतृभागीरथावतारितार्या हिमवद्गिरेरुपरि—

5. पतनादनेकशिलासंहातविभिन्नवहिः ⌣ पातालात्तर्ज्जलौधैः
6. सुरसरित इव विविधतरुवरकुसुमसञ्छन्नोभयतटा—

(द्वितीय पत्र—प्रथम ओर)

7. न्त विनिपतितजलाशायायाः श[ा] लिभासरितः कुला [प] कण्ठा
8. द्वेजयकोङ्गे दात्महाराजमहासामन्तश्रीमाधवराजस्य प्रियतनयो
9. महाराजा यशोमतिस्तस्यापि प्रियसूनुः स्वगुण [म] रीचिनिकर—
10. प्रबोधित शिलोद्भवकुलकमलो विकोशनीलोत्पल—
11. प्रतिस्पर्द्धि[नी] खड्गधारानिशि तनिश्शेषप्रतिहतरिपु
12. वलो दीनानाथ कृपणवनीपकोपभुज्यमानविभवः स्वभु—
13. जपरिधयुगलोपार्ज्जितनृपश्री [:] कमलविमलरुथर

(द्वितीय पत्र—दूसरी ओर)

14. तनुर्ज्जगन्म[ण्ड] लमण्डन श्रुतधैर्यगुणान्वितांमहावृषभपर्यङ्क—
15. ककुधोपधानविन्यस्तवाहोर्व्वालचन्द्रोद्योतितजटाकलापैकदे—
16. शस्य भगवतस्स्थित्युत्पत्तिप्रलयसृष्टिसंहारकारणस्य
17. तृभुवन गुरो ⌣ पादभक्तः परमब्रह्मण्यो महाराज महासा—
18. मन्तश्रीमाधवराजः कुशली कृष्णगिरिविषयसंबद्धच्छवल
19. क्खयग्रामे वर्तमानभविष्य क्कुमारामात्योपरिकतदायुक्तकानन्याश्च
20. यथाहि पूजयति मानयति च [।] विदितमस्तु भवतामयं ग्रामो—

(तृतीय पत्र—प्रथम ओर)

21. स्माभिरर्द्धेण मातापित्रोरात्मनश्च पुण्याभिवृद्धये सलिलधारापुर
22. स्सारेणा चन्द्राक्र्कसमकालीनाक्षयानीयेभरद्वाजसगोत्रायाङ्गि......
23. रसवार्हस्पत्य प्रवराय छरम्पस्वामिने सूर्योपरागे प्रतिपादित [:]॥
24. उक्तञ्च स्मृति शास्त्रे।
    बहुर्व्वसुधा दत्ता राजभिस्यगरादिभिः [।]
25. यस्य यस्य यदाभूमितस्य तस्य तदा फलम्॥
    षष्टिं वर्ष सहस्रा—
26. णि स्वर्गे भोदिति भूमिदः [।]
    आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके
27. वसे[त]॥
    स्वदत्तां परदत्ताम्बा [।] यो हरेत वसुन्धरा [म्।]
    सविष्ठायां

(तृतीय पत्र—दूसरी ओर)

28. [कृमि] र्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते ॥
    मा भुतु फलशङ्का व[ः] परदत्ते—
29. ति पार्थिवा[ः] ॥ स्वदाना [त्] फलमानन्त्य [॥] परद
    [त्तानुपालने] ः।........
30. ....
31. [प्र] यच्छति ॥

ऐतिहासिक महत्त्व

गौड़ाधिपति शशांक का यह दानपत्र उड़ीसा राज्य के गंजाम नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। यह तीन ताम्रपत्रों पर अंकित है। इनमें पत्र संख्या एक पर केवल एक ही ओर का अंकन स्पष्ट है। दूसरी ओर का अंकन पूर्णतया अस्पष्ट है। इसके साथ ही यहाँ एक मुद्रा संलग्न है जिस पर एक सांढ की आकृति बनी है जिसका पैर आगे की ओर झुका है।

इसके अक्षर कोणदार हैं तथा इस पर रेखाएँ बनी हैं। यह गुप्त अक्षरों से बदलकर नागरी अक्षरों की ओर मोड़ प्रस्तुत करता है। यह सम्पूर्ण लेख शुद्ध साहित्यिक शैली में उत्कीर्ण हैं। इसकी रचना गद्य में है, केवल अन्तिम भाग पद्य में लिखा गया है।

यह अभिलेख तिथियुक्त है। इस पर 300 तिथि उत्कीर्ण हैं। यद्यपि उस समय चूँकि हर्ष संवत् ही उत्तरी भारत में प्रचलित था फिर भी इसमें लिखा है कि यह गुप्त संवत् के 300 में था इसलिए यह (319 + 300) = 619 ई० में उत्कीर्ण किया गया होगा। इसमें उल्लिखित—

'वसुंधरायाम् गौप्ताब्दे वर्ष शतत्रेय वर्तमान महाराजाधिराज श्री शशांक राजे शासति'।

इस अभिलेख की उपर्यंकित तिथि से इसका काल सातवीं शताब्दी में होना सिद्ध होता है। साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि इसकी उपाधि 'महाराजाधिराज' थी। यही बात मुद्राओं तथा दूसरे समकालीन अभिलेखों से भी इसके विषय में ज्ञात होती है।

इस अभिलेख के महाराजाधिराज शशांक की तुलना कर्णसुवर्ण—गौड़—नरेश शशांक से की जा सकती है जिसने हर्ष के बड़े भाई थानेश्वर के राजकुमार राजवर्धन की हत्या की थी। यह घटना हर्ष के बांसखेड़ा ताम्र-पत्र में भी वर्णित है। ह्वेनसांग तथा हर्षचरित के रचयिता बाणभट्ट के अनुसार गौड़ का एक राजा नरेन्द्रगुप्त था जिसने राज्यवर्धन की हत्या की थी। हर्षचरित के अनुसार राज्यवर्धन का हत्यारा शशांक था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ह्वेनसांग का शशांक, हर्षचरित का नरेन्द्रगुप्त तथा इस पत्र का शशांकराज सम्भवतः एक ही व्यक्ति हैं।

इस अभिलेख की तिथि से ज्ञात होता है कि जब बंगाल में शशांक शासन करता था तब उत्तरी भारत में हर्ष का राज्य था। गंजाम से प्राप्त इस अभिलेख में शशांक के लिए प्रयुक्त महाराजाधिराज की उपाधि तथा इसके एक सामन्त के लिए प्रयुक्त महासामन्त उपाधि सिद्ध करता है कि गंजाम में भी इसका अधिकार था। यह सामन्त माधवराज था जिसका जन्म शीलोद्भव परिवार में हुआ था जो शिव की उपासना करता था।

यहाँ प्राप्त मुद्रा अभिलेखों से यह ज्ञात होता है कि 'सैन्य भीत' इसके समय खड़ी रहती थी। शशांक कर्ण-सुवर्ण का शासक तथा गौड़ प्रदेश का भी अधिपति था। बंगाल एवं बिहार का प्रदेश भी उसके अधीन था। हर्ष ने इसे अपने भाई का बदला लेने के लिए कब और कहाँ पराजित किया था ज्ञात नहीं। हर्षचरित से केवल इतना मात्र पता चलता है कि हर्ष ने दृढ़ प्रतिज्ञा की थी कि जब तक 'मैं पृथ्वी को गौड़ों से रहित नहीं कर लूँगा तब तक शान्तपूर्ण जीवन नहीं व्यतीत कर सकता।' हर्षचरित तथा ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि हर्ष ने सिंहासनारोहण के 6 वर्ष बाद तक ही युद्ध किया था। इसके बाद वह युद्ध से पूर्णविरत हो गया। इस प्रकार हर्ष अपने शासनकाल में (606+6)=612 ई० तक ही युद्ध करता रहा। पर यह अभिलेख 619 का है जबकि शशांक अपने को गंजाम के अभिलेख में महाराजाधिराज की उपाधि से सम्बोधित करता है तथा ग्रामदान देता है। तब यह कैसे कहा जा सकता है कि शशांक को हर्ष से कभी युद्ध करना पड़ा था तथा इसकी पराजय हुई थी। हर्षचरित जो हर्ष के दरबारी कवि बाणभट्ट की रचना है तथा जिसमें हर्ष की उपलब्धियों का उल्लेख है वह भी इस विषय पर मूक है। रोहतासगढ़ से प्राप्त मुद्रा लेख से ज्ञात होता है कि शशांक महासामन्त था। यह मुद्रा लगभग 606 ई० की है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शशांक गौड़ प्रदेश का उस समय महासामन्त होगा। सम्भवतः हर्ष ने इसे पराजित कर उस प्रदेश को अधिकृत कर लिया हो। पर हर्ष कभी अपने भाई के हत्यारे को इस परिस्थिति में जीवित नहीं छोड़ता। इसलिए उस समय तक शशांक किसी का सामन्त रहा होगा और पीछे शासक बन गया होगा। इसी से पहले के स्वतन्त्र रोहतासगढ़ मुद्रालेख में जहाँ उसके लिए केवल सामन्त शब्द ही प्रयुक्त है वहीं गंजाम ताम्रपत्र में महाराजाधिराज की उपाधि से उसे सुशोभित किया गया है।

इस दान पत्र से इसके उत्कीर्ण कराने वाले माधवराज की वंशावली के विषय में भी ज्ञान प्राप्त होता है। इसमें उड़ीसा प्रदेश के कृष्णगिरि जिले के छवलख्य नामक ग्रामक के दान का विवरण है जो भारद्वाज गोत्र के एक ब्राह्मण को सूर्यग्रहण के अवसर पर दिया गया है।

यह अभिलेख इसलिए भी विशेष महत्त्व का है कि इससे ज्ञात होता है कि जिस समय उत्तरी भारत में हर्ष सम्वत् प्रचलित था उसी समय पूर्वी भारत में गुप्त संवत् में ही गणना की जाती थी।

शशांक शैव धर्मोपासक बताया गया है। इसकी पुष्टि उसके सिक्कों से भी होती है तथा इसके कार्यों से भी। इसके सिक्कों पर शिव महादेव की आकृति अंकित है। इसने बोध गया के बौद्ध मन्दिर को विनष्ट करा दिया था एवं बोधिवृक्ष को उखड़वा कर गंगा में फिकवा दिया था तथा उसके जड़ में आग लगा दिया था।

9. धर्मपालदेव का खलीमपुर ताम्रपत्र लेख
(Khalimpur Copper Plate Inscription of Dharmapal Deo)

स्थान : खलीमपुर, बंगलादेश

भाषा : संस्कृत

लिपि : उत्तरी ब्राह्मी, मगध प्रकार

काल : 9वीं शती

विषय : धर्मपाल का शासनकाल

संदर्भ : पाण्डे, पूर्वोक्त, पृ॰ 225

मूल-पाठ

ओं स्वस्ति। सर्व्वज्ञातं श्रियमि-व स्थिरमआस्थितस्य वज्रासनस्य बहुमारकुलोपलम्भाः। देवया महा-करुणया परिपालितानि रक्षन्तु वो दश बलानि दिशौ जयन्ति॥ 1॥

श्रिय इव सुभागायाः सम्भवो वारिराशिश शशरधर इव भासो विश्वमूआ ह्लादयन्त्याः। प्रकृतिरवनिपानां सन्ततेरुत्तमाया अजनिदयितविष्णुः सर्व्वविद्यावदातः॥ 2॥

आसादीसागराद व्वींमु गुर्वीभिः कीर्त्तिभिः कृती।

मण्डयन् खंडितारातिः श्लाध्यः श्रीवप्यटस्तेतः॥ 3॥

मात्स्यन्यायमूपोहितुम् प्रकृतिभिलक्ष्म्याः करनग्राहितः श्रीगोपाल इति क्षितीशङशिरसां चूड़ामडिस्त्सुतः। यस्यानुक्रियते सनातन यशोरार्शिरदिशामाशये श्वेतिम्ना...यदि पौर्ण्णमास रजनी ज्योत्स्नातिभारश्रिया॥ 4 ॥

शीतांशोरिवे रोहिणी हुतभुजः स्वाहेव तेजोनिधेः शर्वाणीव शिवस्य गृह्यकतपेभद्रेव भद्रात्मजा। पौलोमीव पुरन्दरस्य दयिता देह श्रीदेवीत्यभूदेवी तस्य विनोदभूरभुर लक्ष्मीर्-खि क्षमा पतेः॥ 5॥

ताभ्याम् श्रीधर्म्मपालः समजनि सुजमास्तू मानवदानः* स्वामी भूमीपतीनाम्-अखिलवसुमती मंडलं शासदेकः। चत्वारसूतीरमज्जतकरिगणचरणन्यस्तमुद्राः समुद्रा यात्राम् यस्य क्षमन्ते न भुवनपरिखा विश्वप्वाशाजिगीशोः॥ 6॥

यस्मिनउद्दामलीलाचलितबलभरे दिग्जनाय प्रवृत्ते यान्त्याम्बिश्वश्वम्भरायां चलितगिरितिरश्चीनताम् तद्वशेन।

भाराभुग्नावमजजन्मणिविधुरशिरश्चक्रसहायकार्थम् शेषे णोदस्तदोष्ण त्वरिततरम्अधोधस्शुतम्-एवंआनुयातम्॥ 7॥

यप्रस्थाने प्रचलतिवलास्फालनादउल्लर्लद्धरधूलीपूरैः पिहितसकलव्योमभिर्मेवाभूर्तधात्रयाः सम्प्राप्तायाः परमूतनुतां चक्रवालं फणानाम् मग्नोन्मीलन्मणि फणिपतेरर्लाघवादुल्ललास॥ 8॥

विरुद्धविषयक्षोभादयस्यकोपग्निरऔर्ववत्। अनिर्वृति प्रज्ज्वाल चतुरंम्भोधि-वारितः॥9॥

येभुवनपृथुरामराघवनलप्रायाधरित्री भुजस्तानेकत्र दिदृक्षुणेव निचितान सर्वान् सममवेधसा। ध्वस्तआशेषनरेन्द्रमानमहिमा श्रीधर्म्मपालः कलौ लोलश्रीकरिणीनिवन्धनमहास्तम्भः समुत्तम्भितः॥ 10॥

यासाम् नासरिधूलीधवलदशदिशामृद्रागृपश्यन्नियंत्ताम् धत्ते मानधात्रिसैन्यव्यतिकरचकितो ध्यानतन्द्रीम्महेन्द्रः।

तासामूअप्यआहवेच्छापुलकितवपुषाम्वाहिनीनाम्विधातुं साहाय्यं यस्य वाह्वोर्निखिलरिपुकुल ध्वंसिनोरर्नावकाशः ।। 11 ।।

भोजैर्मस्त्यैः समेद्रैः कुरुयदुयवनअवन्तिगान्धारकीरैरभूरैरव्योलोलमौलि प्रणतिपरिणतैः साधु संगीर्यमाणः।

हृष्यत्पञ्चालवद्धोद्धृतकनकमयस्वाभिषेकोदकुम्भो, दत्तः श्रीकन्यकुब्जस्सललितचलितभ्रूलता लक्ष्म येन ।। 12 ।।

गोपैः सीम्नि वनेचरैरवन भुवि ग्रामऽआपकठे जनैः कीडद्भिः प्रतिचत्वरम् शिशुःगणैः प्रत्यापण मानपैः। लीलावेश्मनिपञ्जरोदरशुकैरउद्गीतमूआत्मस्तवम् यस्यआकर्ण्णयतस्त्रापाविवलित आनम्रंसदैव-आनन्।। 13 ।।

स खलु भागीरथीपथप्रवर्त्तमाननानाविधनौवाटकसमपादितसेतुबन्धुनिहितशैलशिखरश्रेणि-विभ्रमात् निरतिशय घनघनाघनघटाश्यामायमानवासरंलक्ष्मीसमारब्धसन्ततजलदसमयसन्देहात् उदीचीन्अनेकनरपति प्राभृतीकृत्आप्रमेययवाहिनीखरखुरओत्खातधूलीधूसरितदिगन्तरालात् परमेश्वरसेवासमायातसमस्तजम्बूद्वीपभूलपालआनन्तपादातभरनमदअवनेः पाटलिपुत्र-समा-वासित-श्रीमज्-जयस्कन्धावारात् परमसौगतो महाराजाधिराज गोपालदेवपादानुध्यातः परमेश्वरः परमभट्टारको महाराजाधिराज श्रीमान् धर्म्मपालदेवः कुशली।

श्री पुण्ड्रवर्द्धनभुक्त्यअन्तःपातिव्याघ्रतटीमण्डलसम्बद्धमहन्ताप्रकाशविशयेक्रौञ्चश्वभ्रनामग्रामोस्य च सीमा पश्चिमेन गंगिनिका। उत्तरेण कादम्बरी देवकुलिका खर्जूरवृक्षश्च। पूर्व्वोत्तेरण राजपुत्रदेवटकृतआलिः। वीजपूरकं गत्वा प्रविष्टा। पूर्व्वेण विटकालिः खाटकयानिकां गत्वा प्रविष्टा। जम्बूयानिकाम्आक्रम्य जम्बू-यानक

गता। ततो निसृत्य पुण्याराम विल्वआर्धश्रोतिका (पा) ततोपिनिसृत्य नलचर्म्म (टो) त्तरान्तं गता नलचर्म्मटात् दक्षिणेन नामुण्डिकापि (हे)(सदूम्मि) कायाः। खण्डमुण्डमुखम् खण्डमुखा वेदसविल्विका वेदविल्विकातो रोहितवाटिः पिण्डारविटिजोटिकासीमा उत्कारजोटस्य दक्षिणान्तः ग्रामविल्वस्य च दक्षिणान्तः। देविकासीमा विटि। धर्म्मायोजीटिका। एवमूमाढ़ाशाम्मली नाम ग्रामः। अस्य चोतरेण गंगिनिका सीमा ततः पूर्व्वेणार्धश्रोतिकया आम्रयानकोलर्द्धयानिकङ्गतः ततोपि दक्षिणेन कालिकाश्वभ्रः। अतोपि निसृत्य श्रीफल भिषुकम् यावत्पश्चिमेन ततौपि विल्वं-गोर्द्ध श्रोतिकया गंगिनिकाम प्रविष्टा।। पालितके सीमा दक्षिणेन काणा द्वीपिका। पूर्व्वेण कीन्ठिया स्रोतः। उत्तरेण गंगिनिका। पश्चिमेन जेनन्दायिका। एतद्-ग्राम संपारीण परकर्म्मकृद्वीपः। स्थालीक्कटविषय सम्बद्ध आम्रषण्डिका मण्डलान्तः पाति गोपिप्पली ग्रामस्य सीमाः। पूर्व्वेण उदग्राममण्डल पश्चिम सीमा। दक्षिणेन जोलकः पश्चिमेन वेसानिकाख्या खाटिका। उत्तरेणोद्र ग्राममण्डलसीमा व्यवस्थितो गोमार्गः। द् एषु चतुरुषु ग्रामेषु समुपगताने सर्व्वानिव राज-राजनकराजपुत्र-राजामात्य-सेनापतिविषयपतिभोगपतिषष्ठाधिकृतदण्डशक्तिदाण्डपाशिकचौरोदरणिक दोस्साधसाधनिक दूतखोलगमागमिकआभित्वरमाणहस्त्यश्वगोमहिष्यजाविकाध्यक्षनौकाध्यक्षबलाध्यक्षतरिकशौल्किगौल्मिक तदायुक्तकविनियुक्तआदिराजापादोपजीविनोन्यांशचकीर्त्तितान चाटभट जातीयान् यथा कालाध्यासिनो जेष्ठ कायस्थ महामहत्तरदाशग्रामिक आदि विषय व्यवहारिणः सकरणान् प्रतिवासिनः क्षेत्रक्रराश-च ब्राह्मणमाननापूर्व्वकं यथार्हम्मानयति बोधयति समाज्ञापयति च। मतमअस्तु भवताम्। महासामन्ताधिपति श्री नारायणवर्म्मणा दूतक-युवराजश्री त्रिभुवनपालमुखेन वयम् एवम् विज्ञापिताः यथा

अस्माभिर्म्मातापित्रोरात्मनश्चपुण्यआभिवृद्धये शुभस्थल्यान् देवकुङकारितत-तत्र प्रतिष्ठापित भगवन-न्नुन्नारायण भट्टारकाय ततप्रति-पालक-लाटद्विजदेवार्च्चकादि-पादमूल-समेताय पूजओपस्थानआदि कर्म्मणे चुतारो ग्रामान् अत्रत्यदंट्टिकातलपाटक समेतान्ददातु देव इति। ततोऽस्मास्तदीयविज्ञप्त्या एते उपरि लिखितकाश्चत्वारो ग्रामास्तलपाटकहट्टिकासमेताः स्वसीमापर्यन्ता सोदेशाः सदशापचाराः अकिञ्चित्प्र-ग्राह्याः, परिहृतसर्व्वपीड़ाः भूमिच्छिद्रन्यायेन चन्द्रार्क क्षितिसमकालं तथैव प्रतिष्ठापिताः। यतो भवद्भिस्सर्व्वैरव भूमेदोनफल-गौरवाद्पहरणे च महानरकपतादिभयाद्दानं इदम् अनुमोदय परिवालनीयाम्। प्रतिवासिभिः क्षेत्रकरैश-च आज्ञा श्रवणविधेयैरभूत्वा समुचित करपिण्ड्कआदि सर्व्व प्रत्यागओपनयःकार्य इति।। बहुभिर्व्वसुधा दत्ता राजाभिसूसगरआदिभिः।। यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तदा फलम्।। षष्टिम् वर्षसहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिदः। आक्षेप्ता चअनुमन्ता च तान्येव नरके वसेत्।। 16।।

स्वदत्ताम परदत्ताम्वा यो हरेत वसुन्धराम सविष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते।। इति कमल दलाम्बु बिन्दुलोलां श्रियम्अनुचित्य मनुष्यजीवतञ्च सकलदमुदाहृतञ्च बुध्वा न हि पुरुषैः परकीर्त्तयो विलोप्याः।। तडित-तुल्या लक्ष्मी स्तनुरूपि च दीपानलसमा। भवो दुःखैकान्तः परकृतिमकीर्तिः क्षपयताम्। यशान्स्यचन्द्रार्क नियतम्वताम्त्र च नृपाः करिष्यन्ते बुध्वा यदूम्भिरुचितम् किम्प्रवचनैः।। अभिवर्द्धमानविजयराज्ये सम्बत् 32 मार्गदिनानि।। 12।।

श्री भोगतस्य पौत्रेण श्रीमत्सुमटासूनुना। श्रीमताततटेन् इदम् उत्कीर्ण गुणशालिना।।

ऐतिहासिक महत्त्व

बंगाल के पालवंशीय शासक धर्मपाल ने जो स्वयं बौद्धधर्मानुयायी था अपने राजत्व के 32वें वर्ष में नरनारायण के वैष्णव मन्दिर को एक ग्राम दान में दिया था। यह ग्रामदान इसकी धार्मिक सहिष्णुता का द्योतक है। इसी दान का वर्णन इस ताम्र-पत्र में हुआ है।

इस दानपत्र में धर्मपाल के वंशजों का वर्णन है। इसमें इसके पितामह तथा प्रपितामह का नाम क्रमशः वैयट और दइत विष्णु बताया गया है। पर इसमें इनके कार्यों का कोई उल्लेख नहीं है।

इसका पिता गोपाल था। इसके विषय में विभिन्न स्रोतों से ज्ञान प्राप्त होता है। इसने बंगाल से मत्स्यन्याय को समाप्त किया था तथा वहाँ की जनता के लिए राजा चुना गया था। पालवंशीय अनेक दानपत्र गोपाल को इस वंश का पहला राजा बताते हैं जिसका उत्तराधिकारी धर्मपाल था। इस अभिलेख के चौथे श्लोक में गोपाल को सर्वशक्तिमान कहा गया है जो एक विशाल सेना के साथ कन्नौज की ओर गया था। राष्ट्रकूट तथा गुर्जर-प्रतिहार अभिलेखों में धर्मपाल गोविन्द तृतीय तथा नागभट्ट द्वितीय का अधीनस्त बताया गया है। यह अधीनता उसके जीवन के प्रारम्भिक चरण में भी रही होगी।

बारहवें श्लोक में धर्मपाल की राजनीतिक कृतियों का उल्लेख है। इसके समक्ष भोज, मत्स, मद्र, कुरु, यदु, यवन, अवन्ति, गन्धार तथा किर प्रदेश के राजाओं ने अपना मस्तक नत किया था। पंचाल प्रदेश के वृद्धों ने इसकी राजगद्दी के समय जल से पूर्ण घड़ा उठाया था। इसने कान्यकुब्ज के राजा चक्रायुध को गद्दी पर बैठाया था जिसके सिंहासनारोहण की मान्यता सभी शासकों ने दी थी। इस घटना का वर्णन नारायणपाल के भागलपुर दान-पत्र में भी मिलता है। भागलपुर के दान-पत्र से यह भी ज्ञात होता है कि इन्द्रराज की पराजय धर्मपाल के हाथों हुई थी तथा इसके स्थान पर धर्मपाल

सिंहासनारूढ़ हुआ था। धर्मपाल की समता यहाँ खलीमपुर दानपत्र में रघु तथा राम से की गयी थी। इससे यह ज्ञात होता है कि मध्यदेश पर भी धर्मपाल ने विजय किया था। यह घटना सम्भवतः उसके जीवन के उत्तरार्द्ध की है। यह विजय विभिन्न स्रोतों द्वारा प्रमाणित होता है। अभिधान रत्नमाला में कहा गया है कि धर्मपाल ने जम्बूद्वीप को अधिकृत कर लिया था। यहाँ जम्बूद्वीप से अभिप्राय उत्तरी भारत से है।

इससे स्पष्ट है कि अपने प्रशासन के उत्तरार्ध में धर्मपाल ने उत्तरी भारत को अपने अधीन कर लिया था। पर यहीं तक उसका अधिकार सीमित नहीं रहा। इसके बाहर भी उसका अधिकार था। भोज नामक जाति के निवास स्थान पर इसका अधिकार रघुवंश से तथा वाकाटक नरेश प्रवरसेन द्वितीय के चमक अभिलेख से ज्ञात होता है। मत्स्य प्रदेश भी इसके अधीन स्थान था। यह आधुनिक भरपुर, धौलपुर तथा ग्वालियर आदि के भू-खण्डों को अपने में सम्मिलित किए था। इसके अतिरिक्त मद्र (मध्य पंजाब), कुरु (कुरुक्षेत्र), यदु (पूर्वी पंजाब की एक जाति) पर भी इसका अधिकार था। इस यदु का नाम हमें यदुवंश के अभिलेख 'लेखामण्डल प्रशस्ति' से भी प्राप्त होता है। फिर कांगड़ा घाटी, गांधार (पंजाब), अवन्ति (पश्चिमी मालवा); यवन (मुसलमान तथा विदेशी यूनानी) आदि भी इसके अधीन थे। तारानाथ से ज्ञात होता है कि इसके राज्य में कामरूप, तिरहुत, गौड़ आदि प्रदेश भी सम्मिलत थे।

पूरब में समुद्र तक इसका साम्राज्य फैला था। मुंगेर के देवपाल के दानपत्र से पता चलता है कि धर्मपाल ने गंगासागर तक यात्रा की थी। आज भी प्रायः प्रत्येक हिन्दू यहाँ तीर्थ यात्रा के लिए जाता है। यह घटना सम्भवतः इसके जीवन के अन्तिम चरण की थी।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि धर्मपाल यद्यपि बंगाल का शासक था पर सम्पूर्ण उत्तरी भारत और मध्य देश का अधिकारी बन गया था। यह उसके दिग्विजय के क्रम का द्योतक है। यह दिग्विजय मुंगेर दानपत्र से भी ज्ञात होता है जिसमें यह लिखा है कि—

'दिगजयाम प्रवृर्त्ते'। अर्थात् दिग्विजय में सदा रत रहता था।

पुनः इसके समबन्ध में देवपाल ने लिखा है कि—

'मर्यादा परियालनैक निरतः'। अर्थात् मर्यादा के पालन में सदा सचेष्ट था।

खलीमपुर अभिलेख से ज्ञात होता है कि यह शासक यद्यपि व्यक्तिगत जीवन में बौद्ध धर्मानुयायी था परन्तु सामान्यतया अत्यधिक सहिष्णु था। सम्भवतः इसी सहिष्णुता के कारण इसने नरनारायण के वैष्णव मन्दिर के लिए ग्राम दान दिया था।

तिथि

यहाँ धर्मपाल की तिथि नहीं दी गई है पर इसके उत्कीर्ण करने के समय का मात्र संकेत दिया गया है। इससे ज्ञात होता है कि यह दानपत्र धर्मपाल के शासन के 32वें वर्ष में उत्कीर्ण किया गया था। इसलिए यह समस्या बनी है कि धर्मपाल किस समय शासन करता था ? इस समस्या के समाधान के लिए हम कह सकते हैं कि—

1. धर्मपाल का अभिलेख उसके प्रशासन के 32वें वर्ष में लिखा गया है। उसके बाद के शासक देवपाल के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उसने 39 वर्षों तक शासन किया था। इनके बाद के शासक क्रमशः सुरपाल 3 वर्ष तक, नारायणपाल 54 वर्षों तक, राज्यपाल 24 वर्षों तक, गोयाल द्वितीय 17

वर्षों तक, विग्रहपाल द्वितीय 26 वर्षों तक तथा महिपाल प्रथम ने 48 वर्षों तक शासन किया। इस प्रकार इन तिथियों के आधार पर ज्ञात होता है कि पालवंश के कुल शासकों ने 243 वर्षों तक राज्य किया था।

2. महिपाल प्रथम इस गणना में अन्तिम शासक प्रतीत होता है। सारनाथ से एक मूर्ति प्राप्त हुई है जिस पर महिपाल का एक लेख उत्कीर्ण है। इस लेख की तिथि 1083 विक्रम संवत् है। इससे ज्ञात होता है कि महिपाल (1083-57) 1026 ई० में शासन करता था। इसके 243 वर्ष पहले धर्मपाल का शासन काल ऊपर के काल गणना से निश्चित होता है। इससे ज्ञात होता है कि धर्मपाल (1026-243) 783 ई० में शासक था।

3. भोज राजा के ग्वालियर लेख से पता चलता है कि नागभट्ट प्रथम (807 ई०) का सम्बन्ध चक्रायुध तथा धर्मपाल से था। यह तिथि धर्मपाल के शासन काल के उपर्युक्त निर्णय का समर्थन करती है। इसके अनुसार धर्मपाल ने 783 ई० में शासन प्रारम्भ किया था। खलीमपुर लेख से यह भी पता चलता है कि 32 वर्षों तक उसका शासन काल था। अतएव वह 783 से (783 + 32) 815 ई० तक वह अवश्य शासक रहा होगा। ग्वालियर अभिलेख भी 807 ई० की घटना में इसका उल्लेख है।

4. पुनः खलीमपुर लेख से ज्ञात होता है कि धर्मपाल ने इन्द्रराज को हराकर चक्रायुद्ध को कन्नौज के सिंहासन पर बैठाया। यदि हम इन्द्रराज की तिथि ज्ञात कर सके तो धर्मपाल की भी तिथि ज्ञात हो जायेगी। इस इन्द्रराज की समता विभिन्न विद्वानों ने इस नाम के विभिन्न राजाओं से की है—

(क) डॉ० रमेशचन्द्र मजुमदार ने इन्द्रराज की समता गुजरात के लाट प्रदेश के राजा गोविन्द तृतीय के छोटे भाई इन्द्रराज से की है। पर यह विचार मान्य नहीं है क्योंकि यह कन्नौज का शासक था और वह गुजरात का।

(ख) डॉ० भण्डारकर ने इपिग्राफिका इण्डिका खण्ड 3, पृ० 32 में सिद्ध करने का प्रयास किया है कि खलीमपुर दान-पत्र का इन्द्रराज राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय है। इसका कारण यह है कि अमोघवर्ष से संजन पत्र के अनुसार धर्मपाल ने गोविन्द तृतीय को जीत लिया था जो 793 से 814 ई० तक शासन कर रहा था। इससे स्पष्ट है कि 814 और 793 के बीच धर्मपाल अवश्य ही शासक था जैसा कि ऊपर के तीसरे तर्क से भी ज्ञात होता है। पर यह समता ठीक नहीं बैठती क्योंकि कन्नौज के शासक इन्द्रराज को इसने कन्नौज में पराजित किया था जबकि राष्ट्रकूट शासक दक्षिणी भारत में शासन करते थे।

(ग) जैन हरिवंश पुराण के अनुसार शक संवत् 705 में कनौज का शासक इन्द्रायुध था। साधारणतया विद्वान इन्द्रराज तथा इन्द्रायुध के बीच समता स्थापित करते हैं। यह समता कुछ ठीक प्रतीत होती है क्योंकि इस पुराण के अनुसार इन्द्रायुध की तिथि (705 + 78) 783 ई० ज्ञात होती है। यह इन्द्रायुध कनौज का शासक था। खलीमपुर दान-पत्र का इन्द्रराजा भी इसी समय का शासक है जो कनौज पर शासन करता था।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जिस इन्द्रराज को धर्मपाल ने पराजित किया था वह भी 783 में शासक था। अतएव धर्मपाल के राजत्व के सम्बन्ध में यही तिथि उचित प्रतीत होती है।

5. बौद्ध विद्वान शान्तिरक्षित 749 ई० में तिब्बत गया था। वहाँ वह 49 वर्षों तक रहा। लामा तारानाथ के अनुसार वह यहाँ धर्मपाल के शासन काल में आया था। इसके आधार पर भी धर्मपाल की तिथि (749 + 49) = 798 ई० बैठती है।

इन तर्कों के आधार पर धर्मपाल के शासन की तिथि 783 ई० ही मानी जा सकती है।

बौद्धधर्म सम्बन्धी लेख

इस अभिलेख में चार गाँवों के दान का उल्लेख है। इसके ऊपर एक चक्र की आकृति की मुहर बनी है। यह चक्र बौद्ध धर्म के 'धर्म चक्र परिवर्तन' का द्योतक है। इसका पहला श्लोक सिद्ध करता है कि बुद्ध अभी वज्रासन में स्थित हैं। राजा की उपाधि इस दान पत्र में 'परम सौगत' अंकित है जिससे ज्ञात होता है कि यह पाल शासक तत्कालीन बौद्ध धर्म की वज्रयान, मन्त्रयान अथवा तन्त्रयान शाखा का कट्टर समर्थक था।

यह आश्चर्य की बात है कि इस बौद्ध अभिलेख में एक वैष्णव मन्दिर के दान का वर्णन है। अक्षरों के बनावट के आधार पर इसे 9वीं शताब्दी के लगभग रखा जा सकता है। इसकी लिपि मगध प्रकार की नागरी लिपि है इसकी तिथि जीवित गुप्त के अभिलेख तथा नारायण पाल के बदल स्तम्भ लेख के बीच निर्धारित की जा सकती है।

प्रशासकीय महत्त्व

ऊपर के विवरण से यह दानपत्र जहाँ राजनीतिक तथा धार्मिक महत्त्व का है वहीं प्रशासकीय दृष्टि से भी इससे तत्कालीन शासन व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है।

इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि उस समय राजतन्त्रीय शासन प्रणाली थी। यद्यपि खलीमपुर दान-पत्र में यह उल्लेख है कि गोपाल राज्य पद के लिए जनता द्वारा चुना गया था। यह चुनाव गणतंत्रीय शासन के लिए महत्त्व नहीं रखता। राजा के बाद उसका पुत्र और प्रपौत्र क्रमशः गद्दी का उत्तराधिकारी हो सकता था।

इस समय प्रशासन के क्षेत्र में किसी वैधानिक नियमावली का ज्ञान नहीं प्राप्त होता। न तो संविधान की एक स्पष्ट रूप रेखा ही ज्ञात होती है और न वैधानिक व्यवस्था से ही हम परिचित होते हैं। बदल स्तम्भलेख प्रशस्ति के पाल शासकों के शासन काल में मन्त्रियों के वंशानुगत पद और महत्त्व के विषय में प्रकाश पड़ता है। खलीमपुर दान-पत्र से ज्ञात होता है कि इस शासक ने अपने शासन काल में बंगाल से मत्स्यन्याय समाप्त कर दिया था।

इस अभिलेख से स्पष्ट है कि पालकालीन शासक बड़ी-बड़ी उपाधियाँ धारण करते थे यथा— परम भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर आदि। इन उपाधियों से तत्कालीन परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त होता है कि राजा प्रायः अपने अधिकार को स्थापित तथा अपने महत्त्व के लिए इन उपाधियों को धारण करते थे। शासक को अपने कार्य में विभिन्न अधिकारियों द्वारा सहायता मिलती रहती थी। यदि खलीमपुर दान-पत्र को नालन्दा दान-पत्र के साथ पढ़ा जाय, जो इसी राजा का सम्पूर्ण दृश्य स्पष्ट रूप से उभर पड़ता है। इसमें अधिकारियों की तालिका मिलती है जो शासन में भाग लेते थे तथा एक विशिष्ट विभाग का दायित्व वहन करते थे। इस तालिका में निम्नांकित अधिकारियों के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है—

1. राजरानक—सम्भवतः यह प्रान्तपति होता था। इसी को मुंगेर दानपत्र में रणक तथा नारायण पाल के बनगढ़ दानपत्र में राजराजन्यक कहा गया है। सम्भवतः यह राजपुत्र होते थे।

2. शष्टाधिकृत—इस पद का सृजन कब हुआ कहना बड़ा कठिन है। सम्भवतः यह राज्य के लिए 1/6 भाग वसूल करता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इसे समाहर्ता नाम से सम्बोधित किया गया है।

3. दण्डपाशिक—यह पुलिस अधिकारी होता था।

4. दौस्साधसाधनिक—इसका शाब्दिक अर्थ है—वह व्यक्ति जो कठिन कार्य करता हो। इसके विषय में विचारों में विभेद है। डॉ० बसाक के अनुसार यह ग्राम का संरक्षक था। आपातकाल में यह ग्राम की रक्षा का उत्तरदायी होता था। पार्जिटर के अनुसार यह कथन न स्पष्ट है और न पूर्ण क्योंकि 'दौससाध' शब्द की व्याख्या तो इससे हो जाती है पर 'साधनिक' शब्द स्पष्ट नहीं होता है। बंगाल के अभिलेखों में 'साधनिक' शब्द का प्रयोग बहुतायत से हुआ है। यह सम्भवतः राजनियुक्त एजेन्ट होते थे जो राजा के स्थान पर कार्य करते थे। फरीदपुर दान पत्र में यह शब्द नौ-अधिकारी के लिए प्रयोग किया गया है। इन परिस्थितियों में इन शब्द की व्याख्या बहुत ही कठिन है क्योंकि इसके प्रयोग में बहुरूपता मिलती है यथाः महादौहसाधनिक, साधनिक आदि।

5. गमनागमिक—यातायात का अधिकारी।

6. अभित्वभाण—शीघ्र काम करने वाला अधिकारी।

7. तारिक—नदी पर कर वसूलने वाला अधिकारी।

8. गौल्मिक—जंगल का अधिकारी।

इनका उल्लेख गुप्त कालीन अभिलेख में भी मिलता है। इस प्रकार यह दानपत्र पाल कालीन शासन के अध्ययन के लिए व्यापक सामग्री प्रदान करता है।

तत्कालीन राजनीतिक स्थिति

तत्कालीन भारत की राजनीतिक स्थिति का इससे ज्ञान मिलता है। इसमें निम्नांकित राज्यों और उनकी परिस्थितियों का बोध होता है। ऊपर ही हमने संक्षेप में राज्यों से सम्बन्धित परिस्थितियों का विवरण प्रस्तुत किया है। यहाँ केवल क्रमबद्धता के लिए राज्यों का नाम गिना देना मात्र ही पर्याप्त है—

1. कन्नौज
2. महोदय
3. अन्य विभिन्न जातियाँ

साथ ही ज्ञात होता है कि उस समय राज्य में मत्स्यन्याय फैला था जिसे इस वंश के शासक ने समाप्त कर राज्य प्रारम्भ किया था।

10. देवपाल का नालन्दा ताम्रपत्र लेख

(Nalanda Copper Inscription of Deopal)

स्थान : नालन्दा, बिहार

भाषा : संस्कृत

लिपि : उत्तरी ब्राह्मी, मगध प्रकार

काल : 7वीं शताब्दी

विषय : देवपाल का विवरण

मूल-पाठ

1. ओं स्वस्ति। सिद्धार्थस्य परार्थ सुस्थित मतेस्सन्मार्गक (भ्य)-स्यत-
2. स्सिद्धिस्सिद्धिमनुतरां भगवतस्तस्य-प्रज्ञासु क्रियान्त् (।)
3. यस्त्रैधातुकसत्वसिद्धिपदवीरत्युग्रवीर्योदयाज्जित्वा
4. निर्वृतिमाससाद सुगतस्सर्वार्थभूमीश्वरः॥ 1॥ सौभाग्यन्दधतुलं
5. श्रियस्य-पत्न्या
   गोपालः पतिरभवद्वन्धरायाः (।)
6. षटान्ते सति कृतिनां सुणि यस्मिन् श्रद्धेयाः पृथुसगरादयोदृप्यभूवन् ॥ 2॥
   विजित्य येना जदधेर्व्वसुन्धराम्बिमोचिता
7. मोधपरिग्रहो इति।
   सवाष्पमुद्वाष्पविलोचनान्पुनर्व्वेषु व (ब) न्धून्ददृशुर्म्मतंगजाः॥ 3॥
8. यानिचितं रजोभिः॥
   पादप्रचारक्षममन्तरिक्षम्बिहंगमानां सुरिचस्ब (भ्ब) भूव॥ 4॥
   शास्त्रार्थ भाजा चलतोनुशास्य व्वर्ण्णान्प्रतिष्ठापय—
9. ता स्वधर्म्मे (।)
   श्रीधर्मपालेन सुतेन सोभूत्स्वर्गस्थितानामनृणः पितृणाम्॥ 5॥
   अचलैरिव जेगमैर्यदीयै विचलद्भिर्द्विरदैः कदर्थ्यमाना।
10. निरूपप्लवमम्ब (म्ब) रंप्रपेदे शरण रेणुनिभेन भूतधात्रो॥ 6॥
    केदारे बिधिनोपयुक्तपयसां गंगा समेतेम्बु (म्बु) धौ। गोकर्ण्णादिषु चाप्यनुष्ठि॥—
11. तवतात्तीर्थेषु धर्म्माः क्रिया (।)
    भृत्यानां सुखमेव यस्य सकलानुदृत्य दुष्टानिमान्लोकान्साधयतो
    (ऽ) नुषंगजनिता सिद्धिः परत्रा—
12. प्यभूत्॥ 7॥
    तैस्तर्दिग्विजयावसानसमये संप्रेषितानं परैः। सत्कारैरपनीय
    खेदमखिलं स्वां स्वां गतानां भुवम् (।) कृत्यं भावयतां
13. यदीयमुचितुं प्रीत्या नृपाणामभूत्। सोत्कठं हृदयं दिवश्च्युतवतां
    जाति स्मराण्णामिव॥ 8॥ श्रीपख (ब) तस्य दुहितुः क्षितिपतिना रा
14. ष्ट्रकूटतिलकस्य
    रण्णदेव्या पाण्जिगृहे गृहमेधिना तेन॥ 9॥ घृततनुरियं लक्ष्मीः साक्षक्षितिर्नु शरीरिणी।
    किमववनिपतेः कीर्त्तिम्—
15. र्त्तथवा गृहदैवता (।)
    इति विदधतो शुच्याचा (रा) वितर्कवतीः प्रजाः प्रकृतिगुरुभिर्या शुद्धान्तङ्गणैरकरोदधः॥
    10॥ श्लाध्या प्र (प) तिब्रतासौ मु—

16. त्कारत्नं समुद्रशक्तिरिव
श्री देवपालदेवम्प्रसन्न वक्रं सतमसूत ।। 11 ।। निर्म्मलोमनसि वाचि संयतः कायकर्म्मनि (णि) च यः स्थितः शुचौ (।)
17. राज्यमापनिरूपप्लवम्पितुर्वो (र्बो)धिसत्व इप सोगतं पदम् ।। 12 ।।
भ्राम्यद्भि विंजयक्रमेण। करिभिस्तामेव विन्ध्याटवी मुद्दामप्लवमानवा (बा) ष्पपय
18. (सो) दृष्टाः तुनर्व (ब) न्धवः (।)
कमबो (बो) जेषु च यस्य वाजिषु (व) भिध्वेस्तान्यराजौजसो हेषामिश्रित-हारि-हेषित्वाः कान्ताश्चिरप्रीणिताः ।। 13 ।। यः पूर्व व (ब) लि—
19. ना कृतः कृतयुगे येनागमद्भर्गव—
स्त्रेतायां प्रहतः प्रियप्रणयिना कर्ण्णेन यो द्वापरे। विछिन्नः कलिना शकद्विषि गते कालेन लोकान्तरम्
20. येन त्यागपथस्पृ एव हि पुनर्विस्पष्टमुन्मीलितः ।। 14 ।। आ गङ्गागम-महितात्स पन्तशन्यामासेतु (तोः) प्रथितदशास्यकेतुकीर्त्तेः (।) उर्वीमा वरूण
21. निकेतनाच्च सिन्धो—
रा लक्ष्मीकुलभवनाच्च यो वु (बु) भोज ।। 15 ।।
स खलु भागीरथी पथ प्रवर्त्तमाननानाविधनौवाटकसंपादित-सेतुष (ब) न्धनिहित(शै)—
22. लशिखरश्रेणीविभ्रमात् निरतिशयघनघनाघनघट्टा (टा) श्यामायमानवासरलक्ष्सीसमारब्ध (ब्ध) संततजलदसमयसंदेहात् उदीचीनानेक—
23. नरपतिप्राभृतीकृताप्रमेयहयवाहिती—
खरखुरोत्खातधूलीधूसरतिदिगन्तरालत् परमेश्वरसेवासमायाता-शेषजंवू (ब) द्वी—
24. पभूपाल—
पादात भरनमदतवनेः श्रीमुद्गिरिसमावासिश्रीमज्जयस्कन्धावारात् परमसौगात-परेश्वरपरमभ-(ट्टा) रकम—
25. हाराजाधिराजश्रीधर्मपालदेवपादानुध्यातः
परमसौगतः परमेश्वरः परमभट्टा (ट्टा) रको महाराजाधिराजः श्रीमान्देवपालदेवः
26. कुशली। श्रीनगरभूक्तौ राजगृहविषयान्तःपाति अजपुरनयप्रतिव (ब) द्धस्वसम्ब (म्ब) द्धाविच्छिन्नतलोपेत। नन्दिवनाक। मणि—
27. वाटक। पिलिपिराकानयप्रतिय (ब) नाटिका)। अचलानयप्रतिव (ब) द्ध हस्ति ग्राम। गयाविषयान्तः पातिकुमुदसू त्रवीथीप्रतिव (ब) द्ध पालाम—
28. कग्रामेषु। समुपगताम् (न्) सर्व्वानव राजराणक। राजपुत्र। राजामात्य। महाकर्त्ताकृतिक। महादण्डनायक। महाप्रतिहार महा—
29. सामन्त
महादौः साधसाधनिक। महाकुमारा (मा) त्य (।) प्रमातृ। शरभङ्ग (।) राजस्थानी (योपरिक) विषयपति (।) दाशापराधिक। चौरोद्धर-

30\. णिक। दाण्डि—

क (।) दण्डपाशिक (।) शौल्किक (।) (गौ) ल्मिक। क्षेत्रपाल (।) कोटपाल। खण्डरक्ष (।) तदायुक्तक। विनियुक्तक। हस्त्यश्वोष्ट्रनौव (ब) लव्यापृ—

31\. तक (।)

किशोरवडवागोमहिष्यविकृत। दूत प्रै (ष) णिक।

गमागमिक। अभित्वरमाणक। तरिक। तरपतिक

ओद्र [ड्र] मालवखशकुलिक। कर्णा

32\. ट (हू) ण।

चाट्भ (ट) सेवकादीनन्यांश्चाकीर्त्तिमान् स्वपादपद्मो—पजीविनः प्रतिवासिनश्च ब्राम्ह (ब्राह्म) णेत्तरान् महत्तमकुटुम्वि (म्बि) पुरोगमेद्रान्ध्र-

33\. क। चण्डाल—

पर्यन्तान् समाज्ञापयति विदितमस्तु भवताम् यथोपरिलिखितस्वसम्व (म्ब) द्धाविच्छिन्नतलोपेत नन्दि वनाक ग्राम। मणिवाट—

34\. कग्राम।

नटिकाग्राम। हस्तिग्राम। पलामकग्रामाः। स्वसोमातृणयूंतिगोचरपर्यन्ताः सतलाः सोद्देशाः साम्रमधूकाः सजलस्थलः

35\. सोपरिकराः सदशापराधाः सच्चौरीद्धरणाः परिहृतसर्व्व [पीड़ाः] अचाट–भटप्रवेशा अकिंचित्प्रग्रा (ह्य) राजकुलीय

36\. समस्तप्रत्यायसमेता भूमिच्छ्

द्रन्यायेनाचन्द्रार्क्कक्षितिसमकालम् पूर्व्वदत्तमुक्तभूज्यमानदेव-व्र (ब) ह्मदेयवर्जिताः मया

37\. मातापित्रौरत्मन (श्य) पुण्ययशोभिवृद्धये॥

सुव (र्ण्ण) द्विपाधिपम (हा) राजश्रीवा (बा) लपुत्रदेवेन दूतकमुखे व्यम्विज्ञापिता यथा मया

38\. श्रीनालन्दायाम्बिहारः कारितस्तत्र

भगवतो (बु) द्ध भट्टारकस्य प्रज्ञापारमितादिसकलधर्म्मने त्रीस्थान स्थायार्थे तांत्र (त्रि)—

39\. कवो (बो) धिसत्वगणस्याष्टमहापुरुषपुद्गलस्य चातुर्द्दिशायभिक्षुसङ्घस्य व (ब) लिचरूसत्रचीवरिपिण्डपातशयनासनग्लान प्रत्तयभे—

40\. षज्याद्यर्थ धर्मरत्नस्य लेखनाद्यर्थ बिहारस्य च खण्डस्फुटितसमाधानार्थ शासनीकृत्य प्रतिपादित (।) यतो भवद्भिः सर्वैरेव

41\. भूमेद्दर्मिपाल (नं) गोरवादपहरणे च महानरकपातादिभयाद्दानमिददभ्यनुमोप पालनीयं प्रतिवासिभिरण्याज्ञाश्र—

42\. वणविधेयै—

भूत्वा यथाकालं समुचितभागभोगकरहिरण्यादिप्रत्यायोपनयः कार्य इति॥

सम्वत् 39 क (का) र्तिक दिने 21

43. तथाच धर्मानुशासनश्लोकाः
व (ब) हुभिर्वसुधा दत्ता राजभिः
44. सगरादिभिः (।)
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम्॥ 16॥
45. स्वदत्ताम्परदत्तान्वा (यो) ह (रे) त वसुन्धरां
स विष्टयां कृमिर्भूत्वा पितृः भिः
46. सह पच्यते॥ 17॥
षष्ठिम्वर्षसह (स्त्रा) णि स्वर्गे मोदति भूमिदः। आंक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव
47. नरके वसेत्॥ 18॥
अन्यदत्तां द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर। महीं कहीसृतां श्रेष्ठ
48. दानाच्छ्रेयोनु पालनम्॥ 19॥
अस्मत्कुलक्रममुदारमुद्रा (ह) रद्भिरन्यैश्च दानमिदमभ्यनुमोदनीयां। लक्ष्क-पास्तडित्सलिलवुद्बु 'बुद्वु' द (चं)—
49. चलायां
दानं फलं परयशः परिपालनं च॥ 20॥ इति कमल दलाम्बु (म्बु)
वि (बि) न्दुलोलां श्रियमनुचिन्त्यमनुष्यजीवितं च (।) सकलमि—
50. दमुदाहृतं च वु (बु) ध्वा नहि पुरुषैः
परकीर्त्तयाः विलोल्यां॥ 21॥ दक्षिण भुज इव राज्ञः परव (ब)
लदने सहायनिरपेक्षः (।)
51. दूत्यं श्रीब (ब) लवर्म्मा विदधे धर्माधिकारेऽस्मिन्॥ 22॥
अस्मिन् धर्मारम्भे इत्यं श्रीदेवपालदेवस्य। विदधे श्रीव (ब) लवर्म्मा व्याघ्रतटी-मण्डलाधिपतिः॥ 23॥
52. आसीदशेनरपालविलोलमौलिमालामणिद्युतिविवो (बो) धितपाद पद्मः। शैलेन्द्र वंश तिलको यवभूमिपालः श्रीवीरवैरिमधनानुगताभिधानः॥ 24॥
53. हर्म्यस्णलेषु कुमुदेवु मृणालिनीषु शङ्खेन्दुकुन्दतुहिनेषु पदन्दधाना।
निःशेषदिङ्मुखनिरन्तरलव्ध (ब्ध) गीतिः
54. मूर्त्तेव यस्य भुवनानि जगाम कीर्तिः॥ 25॥
भ्रूभङ्गोभवति नृपास्य यस्य कोपान्नि (र्भि)न्नाः सह हदथयैर्द्विषां श्रियोपि। वक्रमणि—
55. ह हि परोपघातदक्षा जायन्ते जगति भृषङ्गतिप्रकाराः॥ 26॥ तस्याभवन्नयपराक्रमशीलशाली राजेन्द्रमौलिशतर्लोलताङ्घ्र—
56. यग्मः।
सूनूर्युधिष्ठिरपराशरभीमसेनकर्ण्णार्ज्जुनार्ज्जितयशाः समराग्रवीरः॥ 27॥
उद्भूतमम्व (म्ब) रतलाघ (द्यु) धि सञ्चरन्त्या
यत्सेनयावनिरजः प—

57. टसं पदोत्थम्।
कण्णानिलेन शनकम्वितीराणर्गणडस्थलीमदजलै; शमयाम्व (म्ब)-भूव ।। 28 ।।
अकृष्णपक्षमेवेदम — भूङ्गवनमण्डलं
58. कुलन्दैत्याधिपस्येव यद्यशोभिरनारतम् ।। 29 ।। पौलोमीव सुराधिपस्य विदिता सङ्कल्वयोनेखि (प्रीतिः;) शैलसुतेव मनन्मथरि —
59. पोर्ल्लक्ष्मीमुरिखि।
राज्ञः सोम कुलान्वयस्य महतः श्रीधर्मसेतोः सुता तस्याभूदवनिधुजोऽग्र महिषी तारेव ताराह्वया ।। 30 ।। माया —
60. यामिव कामदेवविजयी शुद्धोदनस्यात्मजः स्कन्दो नन्दितदेववृन्दहृदयः शम्भोरूमायामिव। तस्यान्तस्यं नरेन्द्रवृन्दविनमत्पादारवि —
61. न्दासनः
सर्ध्व्वोर्व्वोपतिगर्व्वणचणः श्री वा (बा) लपुत्रोऽभवत् ।। 31 ।। नांलन्दागुणवृन्दलुव्ध (ब्ध) मनसा भक्त्या च शौद्रोदनेर्वु (र्बु) शैलसरित्तरंगतरलां
62. लक्ष्मीमियां शोभनाम्।
यस्तेनोन्नतसौधधामधवलः संघार्थमित्रश्रिया नानासद्गुणभिक्षुसंधवसतिस्त-स्याम्बिहारः कृतः ।। 32 ।। भक्तया
63. तत्र समस्तशत्रुवनितावैधव्यदीक्षागुरूं कृत्वा शासन माहितादरतया यम्प्रार्थ्य दूतैरसौ। ग्रामन् पञ्च विपञ्चितोपरियथोद्देशा —
64. निमानात्मनः
पित्रो (ल्लो) कहितोदयाय च ददौ श्रीदेवपालं नृपं ।। 33 ।।
यावत्सिन्धोः प्रव (ब) न्धः पृथुलहरजटाशोभिताङ्गा च गंगा गुर्व्वी
65. धत्ते फणीन्द्र प्रतिदिनमचले हेलया यावदुर्व्वी
यावच्चास्तोदयाद्री रवितुरगखुरोद्धृष्टचूड़ामणीस्तस्त — वत्सत्कीर्ति — रेषा प्रभव —
66. तु जगताम्भ्सत्क्रिया रोपयंती ।। 34 ।।

ऐतिहासिक महत्त्व

बिहार राज्य के नालन्दा जिले में बने प्राचीन नालन्दा विश्वविद्यालय के विहारों में से बिहार सं० 1 से पाल राजाओं के समय की विभिन्न प्राप्त पुरातात्विक सामग्रियों के साथ एक ताम्रपत्र भी प्राप्त हुआ है। जो पालवंशीय शासक देवपाल के समय का है जो बंगाल के सिंहासन पर धर्मपाल के बाद आसीन हुआ था। यद्यपि इस अभिलेख से पालवंशीय शासकों के व्यक्तिगत जीवन पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय विषयों से सम्बन्धित होने के कारण इसका विशेष महत्त्व है।

जावा के शासक बालिपुत्रदेव द्वारा नालन्दा के इस मठ के निर्माण के लिए देवपाल द्वारा प्रदत्त पाँच ग्रामों के दान का विवरण इस अभिलेख से प्राप्त होता है। जावा के एक दूत के आग्रह पर यह ग्रामदान इस उद्देश्य से किया गया था कि इस मठ में रहने वाले भिक्षुओं के भोजन, वस्त्र और औषधि की व्यवस्था उसकी आय से की जा सके। यह दानपत्र पाल नरेश द्वारा उसके मुंगेर के जयस्कन्धावार (सैनिक शिविर) से भेजा गया था।

यह शुद्ध संस्कृत में लिखा है इसके अक्षरों की बनावट देवनागरी लिपि के अक्षरों के सदृश है। यह सम्पूर्ण गद्य में है, कहीं-कहीं पद्य का भी प्रयोग मिलता है। इसके ऊपरी भाग में धर्मचक्र की आकृति बनी है तथा उसके ठीक नीचे 'देवपालदेवस्य' खुदा है। इसका पूर्वार्द्ध इस राजा के मुंगेर दानपत्र के समान है क्योंकि उसी की तरह यहाँ भी 'परमसौगत, परमेश्वर, परमभट्टारक, महाराजाधिराज श्री देवपालदेव' अंकित है।

इस अभिलेख से बौद्ध धर्म के विषय में सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। इस पर अंकित राजचिह्न तथा वर्णित विषय-वस्तु देखने के बाद कोई संशय नहीं रह जाता कि यह बौद्धधर्म से सम्बन्धित नहीं है। इसमें वर्णित दान भिक्षुओं की सुविधा के लिए दिया गया था। बौद्ध धर्म-ग्रन्थों की उपासना के लिए तथा नालन्दा के बौद्ध विहार की सुमिचत व्यवस्था के लिए इसे सुरक्षित रखा गया था। इस प्रकार ज्ञात होता है कि देवपाल एक कट्टर बौद्ध धर्मानुयायी था। उसमें सहिष्णुता की भावना का पूर्ण अभाव था। यह दान देवपाल के बौद्ध धर्मानुयायी होने के कारण ही जावा के राजा ने स्वीकार किया था।

यह अभिलेख इसके शासन काल के 39वें वर्ष में उत्कीर्ण किया गया था।

विषय वस्तु के आधार पर इस अभिलेख को तीन उप-खण्डों में विभक्त किया जा सकता है—

1. देवपाल और उसका कृतित्व

2. दान का विवरण; इस दान में एक दूत का योगजदान है जिसे व्याघ्र तटी मण्डल का नायक कहा गया है।

3. बालिपुत्रदेव का वर्णन जो सुवर्णद्वीप के शैलेन्द्र वंश का था। यह विहार उसी की इच्छा के अनुसार नालन्दा में बना था। बालिपुत्रदेव स्वर्ण द्वीप का स्वामी तथा जवभूमि का शासक कहा गया है। उसके पूर्वजों के लिए इसमें लम्बी-चौड़ी प्रशंसा की गई है। इसके लिए यह पंक्ति उल्लेखनीय है—

'राज्येप्रवर्धमानराज्ञ शैलेन्द्र वंश तिलक'।

संस्कृत साहित्य में जावा को 'यव-भूमि' तथा सुमात्रा को सुवर्ण-द्वीप कहा गया है। पर इस अभिलेख से ज्ञात होता है कि जावा और सुमात्रा एक ही शासक के अधीन हो चुके थे। इसलिए यह शासक दक्षिण पूर्वी द्वीपों का स्वामी कहा जा सकता है। चिर अतीत से भारत का सम्बन्ध जावा तथा सुमात्रा से था। भारतीयों ने इस द्वीपों में अपना उपनिवेश बना लिया था। सांस्कृतिक विषयों में इन दोनों देशों से भारत का परस्पर सम्पर्क रहा है। इसका स्पष्ट प्रमाण है नालन्दा का बालिपुत्रदेव द्वारा निर्मित बौद्ध मठ। शैलेन्द्र राजाओं ने दक्षिणी भारत में भी बहुत से मठों का निर्माण किया था। इन ग्रामों का दान देवपाल ने अपनी सुरुचि से नहीं पर विदेशी राजा के आग्रह पर दिया था। ताम्रलिप्ति इसी प्रकार का एक समुद्री तट था जहाँ से दोनों देशों में व्यापारिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक सम्बन्ध बना था। बाली तथा बोर्नियो में जो अभिलेख मिले हैं उनसे ज्ञात होता है कि वहाँ ब्राह्मण उपनिवेश थे। यद्यपि इनमें राजा बालिपुत्र देव का वर्णन नहीं मिलता पर वह यहाँ के शैलेन्द्र वंश का महान् शासक माना गया है तथा इसे यवभूमि का भी शासक कहा गया है। अतएव यह शासक अवश्य ही बालिपुत्र देव ही रहा होगा।

इसमें नालन्दा मठ के विषय में वर्णन मिलता हैं। उसकी ख्याति सर्वव्याप्त थी। इससे यह भी ज्ञात होता है कि देवपाल के एक अधिकारी का नाम बलवर्मा था जो पाटलिपुत्र के समीप शासन करता था। यह पुण्ड्रवर्धन भुक्ति के प्रान्तपति के अधीन था। यह राजा देवपाल का दाहिना हाथ कहा

गया है। इसी ने प्रेरित कर नालन्दा के समीप के ग्रामों का दान करवाया था। ये ग्राम आज के राजगृह तथा गया जिले में थे जो तब श्रीनगर भुक्ति में आते थे।

खलीमपुर दान-पत्र तथा नालन्दा के देवपाल देव के दान-पत्र से ज्ञात होता है कि पाल राजाओं का सम्बन्ध पाटलीपुत्र से था।

इस दानपत्र के 32वें श्लोक में नालन्दा विहार और वहाँ बौद्धिक कृतियों का बड़ा ही उच्च स्वरों में वर्णन किया गया है यथा—

नालन्दागुणवृन्दलुब्धमनसा भक्तया च शौद्धोदेन।

नानासद्गुणभिक्षुसंघवसतिस्तस्यां विहारः कृतः।।

सुवर्णद्वीपाधिपमहाराजश्रीबलपुत्रदेवेन वयं विज्ञापिताः।

यथा मया श्रीनालन्दायां विहारः कृतः।................।।

अभिलेख से इस पाल राजा के व्यक्तिगत तथा राजनीतिक जीवन के निम्नांकित पक्षों पर प्रकाश पड़ता है—

1. यह राजा व्यक्तिगत जीवन में कट्टर बौद्ध धर्मावलम्बी था।

2. पाल सेना का विवरण भी इससे प्राप्त होता है। पाल शासकों की सेना मे केवल बंगाल के लोग ही सम्मिलित नहीं थे वरन् इनके साथ विदेशी जातियाँ भी थीं यथा—हूण, करनाट, मालव, खस आदि।

3. इस अभिलेख में प्रशासनिक अधिकारियों की तालिका मिलती है। ये अधिकारी भी वे ही हैं जिनका उल्लेख खलीमपुर के दान-पत्र में आया है।

4. इसमें चाण्डाल का उल्लेख है।

5. गायों तथा दूसरे पशुओं के लिए चरागाह की स्वतन्त्र भूमि की व्यवस्था थी।

6. यहाँ ग्रामदान के साथ बगीचे, खान आदि के भी दान का वर्णन है। दान दी गयी भूमि पर सैनिकों तथा पुलिसों का प्रवेश निषेध कर दिया जाता था। इन्हे 'अचाटभट प्रवेश्य' नाम से सम्बोधित किया गया है।

इन विवरणों से स्पष्ट है कि देवपाल ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित किया था।

11. नारायणपालदेव का भागलपुर दानपत्र
(Bhagalpur Inscription of Narayan Pal Deo)

स्थान : भागलपुर, बिहार

भाषा : संस्कृत

लिपि : देवनागरी के समान

तिथि : 9वीं सदी

विषय : नारायण पाल के शासन का वर्णन

संदर्भ : वा॰ उपा॰, प्रा॰ भा॰ अभि॰ प्रथम, पृ॰ 386

मूल-पाठ

ओं स्वस्ति

1. मैत्री कारुण्यरत्न प्रमुदित हृदयः प्रेयसीं सन्दधानः
2. सम्यक् सम्बोधिविद्यासरिदमलजल-ज्ञालिताज्ञानपङ्क
3. जित्वा यः काम कारि-प्रभव मभिभवं शाश्वतीं प्रापशान्तिं
4. स श्रीमान् लोकनाथो जय ति दशबलोऽन्यश्च गोपालदेवः ।। (1)
   लक्ष्मी-जन्मनिकेतनं समंकरो वोढु क्षमः क्ष्मा-रं
5. पक्षच्छेदभमादु परिस्थतवता मेकाश्रयो भूभतां।
6. मर्य्यादा-परिपालनैकनिरतः शोर्य्यालयोऽस्मादभूद्दुग्धाम्भोधिविलास—
7. हासि-महिमा श्रीधर्म्मपालो नृपः ।। (2)
8. जित्वेन्द्रराज-प्रभृति-नराती नुपार्जिता यन महोदय-श्रीः।
   दत्ता पुनः
9. सा बलिनार्थ यित्रे
   चाक्रायुधायानति-वामनाय ।। (3)
   रामस्येव गृहीत-सत्यतपसस्तस्यानुरु पो गुणैः
   सौमित्रे रुदपा—
10. दि तुल्य-महिमा वाक्पालनामाजुः।
    यः श्री मान्नयविक्रमैकवसति भ्रार्तुः स्थितः शासने
    शून्याः शत्रु पताकिनी
11. भिरकरो देकातपया दिशः ।। (4)
    तस्मादुपेन्द्रचरितै र्ज्जगतीं पुनानः
    पुत्रौ बभूव विजयी जयपालनामा।
    धर्म्महि
12. षां शमयिता युधि देवपाल
    यः पूर्व्वजे भुवनराज्य सुखान्यनैषीत् ।। (5)
    यस्मिन् भ्रातुर्न्निदेशाद्बलवति परितः प्रस्थिते
13. जेतु माशा :
    सीदन्नाम्नैव दूरान्निजपुर मजटादुत्कालानामधीशः।
    आसञ्चक्रे चिराय प्रणयि-परिवृतो विभ्रदु
14. च्चेन मूर्ह्ना
    राजा प्रागज्योतिषाणामुपशमित-समित् संकथां यस्य चाज्ञां ।। (6)
    श्रीमान् विग्रहपालस्तत्सूनुरजातशत्रुरि—
    व जातः।

15. शत्रुवनिता-प्रसाधन-विलोपि-विमलासि, जलधारः ।। (7)
रिपवो येन गुर्व्वीणां विपदा मास्पदीक्वताः ।
पुरुषायु
16. षदीर्घाणां सुहृदः सम्पदामपि ।। (8)
लज्जेति तस्य जलेध रिव जहु-कन्या
पत्नी बभूव कृत-हैहय-वंशभूषा ।
यस्याः शुची
17. नि चरितानी पितुश्च वंशे
पत्युश्च पावन-विधिः परमो बभूव ।। (9)
दिकपालैः क्षितिपालनाय श्रियः दधतंदेहेविभक्ताः
18. श्री नारायणपालदेवसमृजत्तस्मां स पुण्योत्तरं
यः श्रोणीपतिभिः शिरोमणिरूचा शिलष्टाङ्घ्रि-पीठोपलं
न्यायोपा—
19. त्तमलञ्चकारः चरितैः स्वैरेव धर्म्मासनं ।। (10)
चेतः पुराण-लेख्यानि चतुव्वर्ग्ग-निधीनि च
आरिप्सन्ते चतस्त्यानि चरितानि महीभृतः ।। (11)
20. स्वीक्वत-सुजन-मनोभिः सत्यापित-सातिवाहनः सूक्तैः ।
त्यागेन यो व्यधत्त श्रद्धेया मङ्गराज कथां ।। (12)
भयादरातिभिर्यस्य रण—
21. मूर्द्धनि विस्फूरन् ।
असिरिन्दीवर-श्यामो ददृशे पीत लोहितः ।। (13)
यः प्रज्ञया च धनुषा च जगहिनीय
नित्यं न्यवीविशद—
22. नाकुलमात्म-धर्म्मे
यस्यार्थिनो सविध मेत्म भृशं कृतार्था
नैवार्थितां प्रति पुनर्व्विदधुर्म्मणीषां ।। (14)
श्रीपतिरकृष्ठा-कर्म्मा विद्या—
23. धरनायको महाभोगी ।
अनल सदृशोपि धाम्ना य निश्चलन्नलसम श्चरितेः ।। (15)
व्याप्ते यस्य त्रिजगति शरच्चंद्र-गौरे र्यशो भि—
24. र्म्मन्ये शोभान्न खलु विभरामास रूद्राट्टहासः ।
सिहस्मीणा मपि शिरसिजेष्वर्प्पिताः केतकीनां ।
पत्रापीड़ाः सुचिर म

25. भवत् भृङ्ग-शब्दानुमेयाः ॥ (16)
तपोममास्तु राज्यं ते द्वाभ्यामुक्तामिदं द्वयोः।
यस्मिन् विग्रहपालेन सगरेण भगीरथे॥ (17)
स खलु-भा
26. गीरथीवथ-प्रवर्त्तमान-नानाविध-नौवाट-सम्पादित-—
सेतुबन्ध निहित-शैलशिखरश्रेणी विभ्रमात्, निरतिशय-धन-घनाघट-घटा
27. श्यामायमान-वासरलक्ष्मी-समारब्ध-सन्तत-जलदसमय-सन्देहात्
उदीचीनानेकनरपति-प्राभृतीक्वता-प्रमेय-हयवाहिनी-खर—
28. खुरोत्तूखात धूलीधूसरित दिगन्त रालात्, परमेश्वर-सेवा-समायाता
शेष जम्बूद्वीप-भूपालानन्त-पादात-भरनमदवेनः॥
श्रीमु—
29. दुगगिरि-समावासित-स्त्रीमज्जयस्कन्धावारात्, परमसौगतौ महाराजाधिराज श्री विग्रहपालदेव
पादानुध्यातः परमेश्वरः पर—
30. मभट्टारको महाराजाधिराजः सीमन्नारायणपालदेवः कुशली।
तीरभुक्तौ। कक्षवैषयिक-स्वसम्बद्धाविच्छिन्न-तलो-
31. पेत-मकुतिका-ग्रामे। समुपगताशेष-राजपुरूषान। राज—
32. राजनक। राजपुत्र। राजामात्य। महासान्धिविग्रहिक महाक्षपटलिक। म
33. हासामन्त। महासेनापति। महाप्रतिहार। महाकार्त्ताक्वतिक। महा—
34. दौः साधसाधनिक। महादण्डनायक। महाकुमारामात्य।
राजस्थानीयोपरिक। दशापराधिक। चौरोहरणिक।
35. दाण्डिक। दाण्डपाशिक। शोल्किक। गौल्मिक। क्षेत्रप।
प्रान्तपाल। कोट्टपाल। खण्डरक्ष। तदायुक्तक। विनियुक्तक। हस्त्य—
36. श्वोष्ट्रनौबल-व्यापृतक। किशोर। वड़वा। गोमहिषाजाविकाध्यक्ष। दूत प्रेषणिक। गमागमिक। अभित्व (र) माण। विषयपति ग्राम पति। तरिक। गौड। मालव। खश। हूण. कुलिक।
37. कर्णाट ला (ट)। चाट। भट। सेवकादीन्। अन्यांश्चकीर्त्तितान।
38. राजपदोपजीविनः प्रतिवासिनी ब्राह्मणोत्तरान। महत्तमोतम पुरोगमेदान्ध (घ्र) चण्डालपर्य्यन्तान्। यथार्ह मानयति।
39. बोधयति। समादिशति च। मतमस्तु भवतां। कैलाशपति।
महाराजाधिराज श्रीनारायणपालदेवेन स्वयं-कारित-सहस्रा-
40. यलस्य। तत्र प्रतिष्ठापितस्य। भगवतः शिवभट्टारकस्य।
पाशुपत आचार्य्य परिषदश्च। यथार्ह-पूजा-बलि-चरू-सत्र-नव-क
41. र्म्माद्यर्थ। शयनासन-ग्लान-प्रत्यय-भैषज्य-परिष्काराद्यर्थ।
अन्येषामापि स्वाभिमतानां। स्वपरिकल्पित विभागेन। अनवद्य-भो

42. गार्थञ्च। यथोपरिलिखित-मकुतिकाग्रामः। स्वसीमा-तृणथूति-गोचर-पर्य्यन्तः। मतलः। सोद्देशः। साम्रमधूकः। सजल
43. स्थलः। सगर्त्तोषरः। सोपरिकरः। सदशापचारः। सचौरोड्वरणा। परिहृत-सर्व्वपीडः। अचाटभट-प्रवेशः। अकिञ्चि—
44. त्-प्रगाह्यः। समस्त-भाग-भोग-कर-हिरण्यादि-प्रत्याय-समेतः। भमिच्छिद्रन्यायेनाचन्द्रार्क्क-क्षिति-समकालं यावत् माता-पित्रो
45. रात्मनश्च पुण्ययशेऽभिवृद्धये। भगवन्तं शिवभट्टारक मुद्दिश्य शासनीकृत्य प्रदत्तः। ततो भवद्भिः सर्व्वैरेवानु
46. मन्तव्यं भाविभिरपि भूपतिभिर्भूमेर्दानफल-गौरवदप हरणे च महानरकपात-भयाद्दानमिदमनुमोद्य पालनीयं प्र
47. तिवासिभिः क्षेत्रकरैश्चाज्ञा-श्रवण-विधेयीभूय यथाकालं समुचित-भाग-भोग-कर-हिरण्यादि-सर्ब्बप्रतपायोपनयः का
48. र्य्य इति। सम्वत् 17 वैशाखदिने 9 (।।) तथा च धर्म्मा—
नुशङ्सिनः श्लोकाः।
वहुभिर्व्वसुधा दत्ता राजाभि सागरादिभिः।
49. यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं।।
षष्टिं वर्षसहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिदः।
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव न—
50. रके वसेत्।।
स्वदत्ताम्परदत्ताम्वा यो रहेत वसुन्धरां।
स विष्ठायां क्रमिर्भूत्वापितृभिः सह पध्यते।।
सर्व्वानेतान् भाविनः
51. पार्थिवेन्द्रान्
भूयोभूयः प्राथमतेपष रामः।
सामान्योऽयन्धर्म्म सेतुर्नृपाणां
काले काले पालनीयः क्रमेण।
इति क—
52. मल दलाम्धु-विन्दुलोलां
श्चिय मनुचिन्त्य मनुष्य-जीविनश्च।
सकलमिदमुद्राह्तश्च बुद्ध्या
नहि पुरुषैः परकीर्त्तयो विलो प्याः।।
53. वेदान्तैरप्यसुगमतमं वेदिता ब्रह्मत (ता) र्थ
यः सर्व्वासु श्रुतिषु परमः साईबमङ्गैरधीती।
यो यज्ञानां समुदित महाद—

54. क्षिणानां प्रणेता
भट्टः श्रीमानिह स गुरवो दूतकः पुण्यकीर्तिः ।।
श्रीमता मंधदासेन शू (शु) भदासस्य श (सू) नुना।
हदं सा (शा)
55. शा (स) न मुत्कीर्ण सत्-समतट जन्मना।

12. गुर्जर-प्रतिहार मिहिर भोज की ग्वालियर प्रशस्ति

(Gwaliar Inscription of Mihir Bhoj of Gurjar Pratihar King)

स्थान : सागर ताल, ग्वालियर, म॰ प्र॰

भाषा : संस्कृत

काल : उत्तरी ब्राह्मी

लिपि : 880 ई॰

मूल-पाठ

1. ओं नमो विष्णवे
शेषाहि-तल्प-धवलाधार-भाग-भासि-वक्षः-स्थल-वील्लसित कौस्तुभकान्तिशोणं।
श्याशं वपु (:) शशि-विरोचनविम्ब (बिम्ब) चुम्बि (म्बि)
व्योम-प्रकाशम-व्रतान् नरक-द्विषो वः ।। 1 ।।
आत्म-आराम-फलद् उपार्ज्य विजरं देवेन दैत्य-द्विषां
ज्योतिर-व्विजम्-अकृत्रिमे
2. गुरावन्त (f) क्षेत्रे यद्-उपां-पुरा।
श्रेयः-कन्ड-वपुस्=ततस्=समभवद्=भास्वान्=अतश=चा
परे मन्व्-इक्ष्वाकु-ककुस्थ-मूल-पृथवः ।।
क्ष्मापाल-कल्प-द्दर्माः ।। 2 ।।
तेषां वंशे सुजन्मा क्रम-निहित-पदे धाम्नि वज्रेषु-घोरं
रामः पौलस्त्यू-हिन्तूरं क्षत-विहति-समित-कर्म्म चक्रे पलाशैः
श्लाघ्य—
3. स—तस्यानुजो-सौमघव—मद-मुषो मेघनादस्य संख्ये
सौमित्रिस तीव्र-दण्डः प्रतिहरण-विधेरयः प्रतिहार आसीत् ।। 3 ।।
तद वन्शे प्रतिहार-केतन-भृति त्रैलोक्य-रक्षास्पदे
देवो नागभटः पुरातन-मुनेर मूत्तिर=व्व (ब्ब) भूवूआद्भुतं।
येनासौ सुकृत-प्रमाथि-ब (व) लबन म्लेच्छ् आ—
4. धिय्-आक्षौहिणीः
क्षुन्दान स्फुरद-उग्र-हेति-रुचिरे (रै) र्-द्दोर्भिश्-चतुरभिर-व्वभौ ।। 4 ।।
भ्रातुस-तस्य-आत्मजी-भूत-कलित-कुल-यशाः ख्यातकाकुस्थ-नामा
लोके गीतः प्रतीक-पृय-वचनतया कक्कुकः क्षमाभृद-ईशः

श्री मान्-अस्यानुजण्मा कुलिश-धर-धुराम=उद्वहन-देवराजो
यञ्जेच्छिन्-वोरू-पक्ष-क्षपित-ग —

5. ति कुलं भूभृतां सन्नियन्ता ।। 5 ।।
तत् सुनुः प्राप्ये राज्यं निजम् उदयगिरि-स्पर्द्धिभास्वत्-प्रतापः
क्ष्मा-पालः प्रादुरासीन नत-सकल-जगव-वत्सलो वत्सराजः
पद्माक्षीर-आक्षिपन्त्य प्रणयि-जन-परिष्वङ्ग-कान्ता विरेजुः ।। 6 ।।
(ख्याताद् भण्डि) —

6. कूलान-मद-वोत्कट करि-प्राकार-दुर्ल्लङ्गतो
यः साम्राज्यअधिज्य-कार्म्मुक-सखा संख्ये हठाद्-अग्रहीत
एकः क्षत्रिय-पुङ्गावेषु च यशो-गुर्व्वीन, धुरं प्रोद्वहन्
ए क्ष्वाक (ो) : कुलम् उन्नतं सुरचितैश चक्रे स्व-नाम्-आङ्कितं ।। 7 ।।
आद्यः पुमान्-पुनरपि स्फुट-कीर्तिर् अस्मांज् —
जाटस्-स स्व किल नागभट्स-तदाख्यः ।।
अत्र आ —

7. न्ध्र-सैन्धव-विदर्भ-कलिंग-भूपैः
कौमार-धामनि-पतंग-समैर-पाति ।। 8 ।।
त्र (त्र) य्य-आस्पदस्य सुकृत्य समृद्धिम्-इच्छुर
यः क्षत्र-धाम-विधि-वद्ध-वलि-प्रबन्धः ।
जित्वा पराश्रय-कृत-स्फुट-नीच-भावं
चक्रायुधं विनय-नम्र-वपुरव्यराजत ।। 9 ।।
दुर्व्वार-वैरि-वर-वारण-वाजि-वार

8. याण औधसंघटन-घोर-घन-अन्धकारं ।
निर्ज्जित्य वङ्गपतिम्-आभिरभूद् विबस्वान्
उद्यन्न-इव त्रिजगद्-स्क विकासकौ-यः ।। 10 ।।
आनर्त्त-मालव-किरात-तुरुष्क-वत्स
मत्स्यादि-राज-गिरि-दुर्ग्ग-हठापहारैः
यस्स-आत्म-वैभवम्-अतीन्द्रियम्-आ-कुमारम्
आविर्व्वभूव भुवि विश्वजनीन-वृत्तेः ।। 11 ।।
तजूजन्माराम —

9. नामा प्रवर-हरि-वल-न्थस्त-भूभृ त-प्रबन्धैर्
आवध्तन-वाहिनीनां-प्रसभम् अधिपतीन्-उद्धत्-क्रूर-सत्वान्
पाप-आचार-अन्तराय-प्रथमन-रुचिरः संगत कीर्ति-दारै;
त्राता धर्म्मस्य तैस-समुचित-चरितैः पूर्व्वन निर्व्वभासे ।। 12 ।।
अनन्य-साधन-आधीन-प्रताप-अक्रान्त-दि

10. रामुखः ।
उपायैस् सम्पदां स्वामी यः सव्रीडमुपास्यत ।। 13 ।।

अर्थिभिर्व्विनियुक्तानां सम्पदां जन्म केवलं।
यस्ताभूतकृतिनः प्रोत्यैनुआत्म-एच्छाविनियोगतः ।। 14।।
जगद्-वितृष्णुः स विशुद्धःसत्वः
प्रजापतित्व विनियोक्तुकामः।
सुतं रहस्य-व्रत-सुप्रसन्नात्=
सूर्यादअवा—

11. —पन-मिहिराभिधानं।। 15।।
उपरोधएक-संरुद्ध-विन्ध्य-वृद्धेरगस्त्यतः
आक्रम्य-भूभृतां भोक्ता यः प्रभुर्-भोज इत्य-अमात्।। 16।।
यशस्वी शान्त-आत्मा जगद् अहित-विच्छेद-निपुणः
परिष्वक्तो लक्षभ्या न च मद कलङ्केन कलितः।
वभूव प्रेम-आर्द्रो गृणिषु सुनृत—

12. गिराम्
असौ रामो वाग्रे स्व-कृति-गणनायाम् इह विधेः।। 17।।
यस्य आभुत् कुल भूमि-भृत्-प्रमथन—
व्यस्त-आन्य-सैन्य-आम्बुधेर—
व्यूढां च स्फुटित-आत्रि-लाज-निवहान्-हुत्वा प्रताप-आनले।
गुप्ता वृद्ध-गुरी आनन्य गतिभिः शान्तैस्-सुध-ओद्धासिभिर—
द-धर्म्म, आपात्य-यशःप्रभूतिर्-अपरा लक्ष्मीः पुनर्भू—

13. र्न्नया।। 18।।
प्रीतै पीलनया तपोधन-कुलैः स्नेहाद्-गुरुणां गगौर
भक्तया भत्य-जनेन नीति-निपुणैर-बृन्दैर-अरीणां पुनः।
विश्वेनआपि-यदीयम्-आयुरमितं कर्टुं स्व-जिव-एषिणा
तन-निघ्ना विदधे विधातरि यथा सम्पत्-परार्द्धयाश्रय।। 19।।
अवितथम्-इदं यावद्-विश्वं श्रुतेर—

14. अनुशासनाद्—
भवति फल-भाक कर्त्तान्-तैशः क्षितिन्द्र-शतेष्व्-अपि।
अधरित-कालेः कीर्त्ते भर्त्तुस-सतां सुकृतैर्-अभूद्—
विधुरित-धियां सम्पद-वृद्धिर-यद्-अस्य तद् अद्भुतं।। 20।।
यस्य वैरि-वृहद्-वड़शान्-दहतः कोप-वह्नि।।
प्रतापाद् अर्व्णसां राशित-पाटुर-व्वैतृष्णाम् आवभौ।। 21।।
कुमारैव विद्यानां

15. वृन्देन्-अद्भूतुए-कर्मणा।
यःशशास-आसुरान्-धीराम्-स्त्रीणेन,-आस्त्र ऐक-वृत्तिना।। 22।।
यस्य आक्ष-पटेल राज्ञः प्रभुत्वाद्-विश्व-सम्पदः।
लिलेख मुखम्-आलोक्य प्रातिलेख्य-करो विधिः।। 23।।

उद्दाम-तेजःप्रसर-प्रसूता शिख-एव कीर्तिर् द्युमणिं विजित्य।
जाया जगद्भर्तु—

16. र्-इयाय यस्य चित्रम् त्व-इदम् यज-जलधीन-स्तातार॥ 24॥
राज्ञा तेस स्व-देवीनां यशः—पुण्य-आभिवृद्धये।
अन्तः पुर-पुर नाम्नां व्यधायि नरक द्विषः॥ 25॥
यावन-नभः-सुर-सरित-प (प्र) सर-वीत्तरीयं
यावत् सु-दुश्चर-तपः प्रभवः प्रभावः।
प्तत्पञ्-च यावद् उपरिस्थ (स्ठ) म्-अवल्य अशेषं
तावता पु—

17. नातु जगतीम्-इयम् आर्य कीर्तिण्॥ 26॥
पातुर-व्विश्वस्य सम्यक-परम-मुनि-मट-श्रेयसम सम्बिधानाद—
अन्तर-वृत्तिर-व्विवेकः स्थितैव पुरतो भोजदेवस्य रागः।
विद्वद्-वृन्द-आज्जितानां फलम् इव तपसां भद्दृघनेक सूनुर—
ब्बालादित्यः प्रसस्तेः कविर्-इह जगता साकम्-आ-कल्प बृत्तेः॥ 27॥

हिन्दी अर्थान्तर

1. ओऽम् विष्णु को नमस्कार है। जो शेषनाग पर शयन करने वाले हैं तथा शेषनाग के निम्न एवं श्वेत भाग से प्रकाशित है। जिनका वक्ष कौस्तुभ मणि की आभा से दीप्त है। जो श्याम शरीर वाले हैं। जिनका शरीर उस आकाश की भाँति प्रतिभासित है जिसका चुम्बन सूर्य और चन्द्रमा करते हैं।

2. जिस प्रकार उद्यान के फल के बीजारोपण से श्रेष्ठ कल्पवृक्ष उगते हैं; उसी प्रकार दैत्यों के शत्रु ने आत्मानन्द से ज्योतिबीज द्वारा सूर्य की रचना की जिससे सूर्य वंशी नरेश मनु, इक्ष्वाकु, ककुस्थ और प्रथम पृथु हुए।

3. विष्णु द्वारा स्थापित इस वंश के सुजन्मा राम ने घोर युद्ध में वज्रों से रावण का वध कर दिया। उसी राम के प्रशंसनीय अनुज लक्ष्मण ने जो तीव्र दंडधर (प्रचणड सेनानयक) हैं मेघनाद के द्वारा फेंके गये शस्त्रों का प्रतिहरण किया जिससे उन्हें प्रतिहार भी कहा गया। लक्ष्मण से ही प्रतिहार वंश की उत्पत्ति की कल्पना की गयी है।

4. उस प्रतिहार वंश में जो तीनों लोकों का रक्षक था नागभट्ट प्रथम नारायण की प्रीतिकीर्ति के रूप में उत्पन्न हुआ जिसने सुकृतियों का नाश करने वाले म्लेच्छ नरेशों की अक्षौहिणी सेना का विनाश कर दिया। भयंकर अस्त्र-शस्त्रों से वह चार भुजाओं से शोभित प्रतीत होता था।

5. उसके भाई का पुत्र जिसने वंश के यश में वृद्धि की ककुस्थ (ककुतस्थ) के नाम से प्रख्यात हुआ। प्रिय भाषी होने के कारण वह लोक में कक्कुक (हंसने वाला) नाम से जाना गया।

उसके पराक्रमी अनुज देवराज ने कुल-यश की वृद्धि की तथा पृथ्वी के राजाओं की प्रभुता का विनाश करके उन्हें उसी प्रकार प्रभुत्व विहीन कर दिया, जिस प्रकार इन्द्र ने पर्वतों के पंखों को काटकर गतिहीन बना दिया था।

6. उसका पुत्र वत्सराज हुआ जो विश्व को अधीन करने के बाद सहिष्णु था। उसका प्रताप सूर्य के तुल्य था तथा उसने उदयगिरि के तुल्य उन्नत राज्य को शीघ्र प्राप्त कर लिया। उसकी सम्पत्ति

हाथियों के मदगन्ध और कामिनियों से सुवासित थी। कमल नेत्रों वाली ये कामिनियाँ सुरा का आस्वादन करके प्रियजनों का आलिंगन करके अत्यन्त प्रसन्न होती थीं।

7. अपने धनुष के पराक्रम रूपी बन्धु की सहायता से उसने संघर्ष में उस भण्डिकुल से साम्राज्य प्राप्त किया जो अपने भयंकर हाथियों से निर्मित दीवार के कारण अविजित था। क्षत्रियों में श्रेष्ठ उसने अपने यश में वृद्धि करके निष्कलंक सुरचित और उन्नत कार्यों से उचित रूप से स्वयं अपने को इक्ष्वाकु वंशी प्रमाणित किया।

8. नागभट्ट प्रथम के बाद वत्सराज से नागभट्ट द्वितीय उत्पन्न हुआ जिसकी कीर्ति अत्यन्त प्रख्यात थी। उसने आन्ध्र, सिन्ध, कलिंग, विदर्भ के राजाओं को उसी प्रकार पराजित कर दिया जिस प्रकार शलभ (पतंगे) अग्निशिखा पर जल कर नष्ट हो जाते हैं।

9. तीनों वेदों में वर्णित सुरचित की वृद्धि की इच्छा रखने वाले नागभट्ट द्वितीय ने धार्मिक कृत्यों का सम्पादन क्षत्रिय विधि से किया। उसने चक्रायुध को पराजित किया जिसने पराश्रय लेकर (दुश्मन पर विश्वास करके) अपनी व्यक्तित्वहीनता (नीचता) प्रकट कर दी थी। नागभट्ट द्वितीय स्वभाव से विनयी और नम्र होने के कारण सुशोभित हुआ।

10. नागभट्ट ने अपने शत्रु बंग-नरेश को पराजित किया जो घोर अन्धकार की भाँति प्रतीत होता था। शत्रु के विशाल हाथी और रथों के संगठन से अन्धकार हो गया था। उसने तीनों जगत को प्रकाशित करने वाले सूर्य की भाँति शत्रु रूपी गहन और भयंकर अन्धकार का नाश कर दिया।

11. इस पृथ्वी पर वह विश्वजनीन कार्यों के सम्पादन के लिए हुआ। जगत में प्रारम्भ से ही वह अतीन्द्रिय, आत्मवान अथवा राजकीय गुणों से युक्त था। उसने आनर्त, मालव, किरात, तुरुष्क, वत्स, मत्स्य आदि राजाओं के गिरि दुर्गों का अपहरण कर लिया।

12. तब गुणी और चरित्रवान्, धर्मरक्षक राम (नागभट्ट का पुत्र रामभद्र) भगवान राम की भाँति हुआ जिन्होंने श्रेष्ठ बन्दरों की सहायता से निर्मित सेतुबन्ध द्वारा शक्तिशाली उद्धृत और क्रूर जन्तुओं से भरे हुए समुद्र को पार किया तथा राक्षस रूपी विघ्न का हनन करके अपनी पत्नी और कीर्ति को प्राप्त कर लिया तथा धर्म की रक्षा करने के कारण प्रकाशमय हुआ।

13. उसने जो कि ऐश्वर्यवान था केवल पराक्रम की सहायता से अपने शत्रुओं को आक्रान्त किया। इसके अतिरिक्त वह अन्य शक्तियों से (साम, दाम, भेद) समन्वित था।

14. उसने धनोपार्जन केवल अपने प्रियजनों के लिए किया किन्तु उससे अपनी इच्छाओं की कदापि पूर्ति नहीं करता था।

15. वह विशुद्ध आत्मा वाला एवं जगत से अनासक्त था। उसने प्रजा पर शासन करने हेतु भगवान सूर्य की कृपा से रहस्य व्रत के द्वारा मिहिर नामक पुत्र को प्राप्त किया।

16. मिहिरभोज ने इस पृथ्वी के अनेक राजाओं को पराजित करके उन पर शासन किया। उसकी शोभा अगस्त मुनि से भी अधिक थी जिन्होंने विंध्याचल को बढ़ने से रोक दिया था।

17. वह यशस्वी, शान्त चित्तवाला एवं जगत के अनिष्टों का उन्मूलन करने में निपुण था। लक्ष्मी उसका आलिंगन करती थी किन्तु वह मद रूपी कालिमा से कलंकित था। वह मद रूपी गुणियों के प्रति स्नेही था। ब्रह्मा द्वारा विरचित प्राणियों में वह सर्वोत्कृष्ट था।

18. भोज ने धर्मपाल के पुत्र देवपाल के सेना रूपी समुद्र का मर्दन करके उसकी लक्ष्मी का

जो ख्याति की स्रोत थी अपहरण करके पुनर्विवाद किया। उसे नैवेद्य के रूप में ऐसे छत्र शत्रुओं द्वारा समर्पित किया गया जो कि प्रताप रूपी अग्नि में विनष्ट हो गये थे। उसने अलौकिक-गुणों एवं अमृत तुल्य शान्त गुणों से लक्ष्मी की रक्षा की।

19. लोक का कल्याण करने के लिए ब्रह्मा ने उसकी रचना की। तपस्वियों ने प्रीतिपूर्वक और शत्रुओं ने नीतिपूर्वक उसके दीर्घजीवन की कामना की थी।

20. श्रुति के अनुसार जब तक यह विश्व है यह सत्य है कि किसी कार्य को करने वाला भी उसके फल का भागी होता है, भले ही वह सौ नरेशों का अधिपति हो। किन्तु यह आश्चर्य है कि शुद्ध बुद्धि वाले व्यक्तियों के सतकार्यों से उसके यश और समृद्धि में वृद्धि हुई।

21. उसने शक्तिशाली शत्रुओं को क्रोध की अग्नि में प्रज्वलित कर दिया। उसने अपने प्रताप से समुद्र की रक्षा की और तृष्णा के अभाव में ऐसा प्रतीत होता था जैसे उसने अत्यधिक जल पी लिया हो।

वह कुमार की भाँति था जिसने शस्त्रास्त्रधारिणी मातृकाओं की सहायता से भयंकर असुरों को पराजित कर दिया था।

23. विध ने उसकी मुखाकृति को देखकर उसका भाग्य लेख लिखा क्योंकि वह प्रभुता के कारण जगत का सम्राट था।

24. जगदाधिपति भोज की शक्ति से उत्पन्न राजमहिषी की भाँति हो गयी। वह उद्दाम तेज वाली किरण की भाँति थी जो सूर्य को विजित करके लौट आयी और यह अत्यन्त आश्चर्य है कि उसने समुद्र को भी पार कर लिया।

25. अपनी राजरानियों की धार्मिक सतकार्यों में वृद्धि करने के लिए उसने अपने अन्तःपुर में नरकासुर का वध करने वाले विष्णु के मन्दिर का निर्माण कराया।

26. जब तक आकाश गंगा उत्तरीय से सुशोभित है, जब तक तप और धार्मिक सतकार्यों का प्रभाव वर्तमान है, जब तक सर्वोपरि सत्य रक्षक है तब तक पद श्रेष्ठ कृति इस विश्व को पवित्र करें।

27. बालादित्य इस प्रशस्ति का रचयिता है। यह प्रशस्ति इस कल्प के अन्त तक स्थित रहेगी। बालादित्य भट्ट धन्नेक का पुत्र एवं तपस्या तथा विवेक का फल था। जगत के सम्राट भोज देव के काल में वह मुनियों द्वारा प्रतिपादित नियमों का पालन करने वाला था।

ऐतिहासिक महत्त्व

मिहिर भोज की ग्वालियर प्रशस्ति इस शासक के इतिहास की संरचना में सर्वाधिक सहायक है। इसकी भाषा संस्कृत है। इस प्रशस्ति का प्रारम्भ 'ओऽम् नमो विष्णो' मंगलाचरण से होता है। केवल यही पंक्ति गद्य में है जबकि पूरा लेख पद्य में है। इसकी शैली अत्यन्त क्लिष्ट है तथा भाषा प्रांजल। इसमें बड़े-बड़े छन्दों का प्रयोग किया गया है। इस अभिलेख का रचयिता तत्कालिक काव्यगत गुणों और साहित्यशास्त्र का पण्डित प्रतीत होता है। इसकी शैली पूर्ण अलंकृत है। इसमें ध्वनि की विशिष्टता भरपूर निखरी है। श्लेष अलंकारों के प्रयोग द्वारा काव्य में प्राण भर दिया गया है। वर्णविन्यास के सम्बन्ध में इसमें अनुस्वार के स्थान पंचमाक्षरों का प्रयोग विशेष रूप से मिलता है। शब्दों के वैशिष्ट्य का प्रयोग हुआ है, यथा कर्म के स्थान कर्म्मा उल्लेखनीय है।

प्रतिहार शब्द में वर्तनी का प्रयोग दो प्रकार से अभिलेखों में प्राप्त होता है—(1) प्रतिहार, (2) प्रतिहार। इस अभिलेख की लिपि के सम्बन्ध में इतिहासकारों का मत है यह नवीं-दसवीं शताब्दी में प्रचलित प्राक्-क्षेत्रीय लिपि है।

ग्वालियर अभिलेख का प्रयोजन प्रतिहार वंश के नरेश मिहिरभोज द्वारा अपने अन्तःपुर में निर्मित एक विष्णु मन्दिर का उल्लेख करना है। यह अभिलेख प्रतिहार वंश एवं समकालीन वंशों के राजनीतिक इतिहास के लिए महत्त्वपूर्ण है। इस अभिलेख की प्राप्ति के पूर्व प्रतिहार वंश का इतिहास सीमित एवं त्रुटिपूर्ण था। इसमें मिहिरभोज तक प्रतिहार वंश की वंशावली का विवरण प्राप्त होता है। इसके आधार पर मिहिरभोज के काल तक गुर्जर-प्रतिहार वंश के गौरवपूर्ण एवं विस्तृत इतिहास का ज्ञान मिलता है।

इस अभिलेख का रचयिता बालादित्य हैं। इसमें समकालीन राजनीतिक घटनाओं एवं संघर्ष का विवरण है। इसमें नागभट्ट द्वितीय एवं चक्रायुध के राजनीतिक सम्बन्धों एवं संघर्ष का भी ज्ञान मिलता है। इसके अनुसार प्रतिहार लक्ष्मण के आधार पर प्रतिहार वंश का नामकरण हुआ बताया गया है। इसमें पौराणिक पद्धति से सृष्टि के विकास क्रम का उल्लेख किया गया है तथा प्रथम श्लोक में विष्णु की स्तुति की गई है।

प्रतिहार वंश—हर्षोत्तर कालीन उत्तरी भारत की राजनीतिक शक्तियों में गुर्जर-प्रतिहार वंश का राज्य प्रमुख था। डॉ० राजबली पाण्डेय का विचार है 'इस वंश का उदय पहले पहल गुर्जरत्रा (प्राचीन गुजरात = द० प० राजस्थान) में हुआ था। छठीं शती के मध्य में एक रणकुशल महत्त्वाकांक्षी ब्राह्मण हरिश्चन्द्र ने प्रतिहार वंश (लक्ष्मण को अपना पूर्वज मानने वाले) की क्षत्रिय कन्या भद्रा से विवाह किया था। उस समय धर्मशास्त्रों के अनुसार भद्रा के पुत्रों द्वारा मातृवर्ण से क्षत्रिय प्रतिहार राजवंश की परम्परा चली।' डॉ० भण्डारकर का मत है कि प्रतिहार मूलतः विदेशी थे जो गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद हूणों के साथ मध्येशिया से भारत आए। वे गुर्जरों की ही एक शाखा थे जैसा कि राजोर (अलवर) लेख मे गुर्जर प्रतिहारान्वयः से मालूम होता है। इसके समर्थन में चन्दरबरदायी के रासों में आए हुए उस उल्लेख का भी सहारा लिया है जिसमें प्रतिहारों की गणना अग्निकुल के राजपूतों में की गई है, जो अपनी उत्पत्ति अग्निकुण्ड से मानते हैं। इसका अर्थ यह है कि विदेशी जातियों को यज्ञ द्वारा शुद्धीकरण करके हिन्दू धर्म में मिला लिया गया था। किन्तु, प्रतिहारों को निम्न आधारों पर विदेशी नहीं माना जा सकता—

1. 'गुर्जर' शब्द का अर्थ गुर्जर जाति न होकर 'गुर्जरत्रा प्रदेश का निवासी' है क्योंकि प्रदेशों के नाम पर अकसर निवासियों के नाम रखे जाते थे, जैसे—गौड़, लाट, वस्त्र। 2. प्रतिहारों के अभिलेख अपनी उत्पत्ति रामायण के प्रसिद्ध पुरुष लक्ष्मण से मानते हैं जिसने वन में राम के प्रतिहार का काम किया था। 3. प्रसिद्ध कवि राजशेखर ने उन्हें रघुकुल तिलक अथवा रघुशिरोमणी (रघुकुल का नेता) कहा है। अतएव गुर्जर प्रतिहार वंश विदेशी नहीं प्रतीत होता बल्कि यह मिहिरभोज के ग्वालियर अभिलेख के अनुसार सूर्यवंशीय क्षत्रिय राजवंश का था।

डॉ० स्मिथ, स्टेनकोनो आदि का मत है कि प्रतिहार वंश का मूल स्थान दक्षिण राजपूताना था। किन्तु इसे विद्वानों ने अस्वीकार किया है। अधिकांश इतिहासकारों का मत है कि प्रतिहार वंश का उदय कान्यकुब्ज (कन्नौज) में हुआ होगा।

प्रतिहार वंश ने सिन्ध में अरबों के विस्तार को रोका और उनको सिन्ध प्रदेश के भीतर ही घेर

रखा। इस समय उन्होंने वास्तव में प्रतिहार ड्योढ़ी (द्वार रक्षक) का काम किया। इसका समर्थन डॉ० रमेशचन्द्र मजुमदार ने भी किया है। गुर्जर-प्रतिहार वंश की संस्थापना नागभट्ट ने की थी। ग्वालियर अभिलेख के अनुसार उसने म्लेच्छ राज की लम्बी सेनाओं को परास्त किया। उसके बाद के दो राजाओं कक्कुर या ककुस्थ और देवराज ने कोई महत्त्व का कार्य नहीं किया। देवराज की मृत्यु के बाद वत्सराज गद्दी पर बैठा। इसका सर्वप्रथम युद्ध मण्डी जाति से हुआ। ग्वालियर अभिलेख के अनुसार अपनी उत्कृष्ट हाथियों की सेना के कारण मण्डी जाति जो दुर्जेय समझी जाती थी, उसे युद्ध में पराजित करके वत्सराज ने बलात् उससे साम्राज्य छीन लिया। राष्ट्रकूट लेखों से ज्ञात होता है कि वत्सराज ने धर्मपाल को हराया था। पर राष्ट्रकूट राजा ध्रुव ने उसे हराकर राजस्थान की ओर भगा दिया।

वत्सराज का उत्तराधिकारी नागभट्ट द्वितीय प्रतिहार वंश का एक प्रतापी सम्राट था। उसने बंगाल के पाल राजा एवं चक्रायुध के संरक्षक धर्मपाल को पराजित किया और कन्नौज के शासक चक्रायुध को पराजित कर उसे वहाँ से निकाल बाहर किया। इसकी इस विजय से भयभीत होकर आन्ध्र, सिन्धु, विदर्भ और कलिंग के शासकों ने उससे मैत्री के लिए प्रार्थना की। यह भी ज्ञात होता है कि नागभट्ट द्वितीय ने आनर्त, मालवा, मत्स्य, किरात, तुरुष्क और वत्स पर विजय प्राप्त की।

नागभट्ट द्वितीय का पुत्र राजभद्र दुर्बल था। उसके प्रान्तीय शासकों ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। राजभद्र के उत्तराधिकारी मिहिरभोज ने शीघ्र ही सम्पूर्ण मध्य प्रदेश पर अपना अधिकार जमा लिया। इसी समय बंगाल के राजा देवपाल की शक्ति दृढ़ होने के कारण पूर्व में मिहिरभोज के राज्य का विस्तार न हो सका। परन्तु दक्षिण-पश्चिम में नर्मदा और सुराष्ट्र तक उसका आधिपत्य फैल गया। पश्चिम में पूर्वी पंजाब उसके राज्य में सम्मिलित था। इसके बाद उसने अपने वंश के पुराने शत्रु राष्ट्रकूटों के साथ युद्ध जारी रखा और उन्हें दक्षिण से आगे नहीं बढ़ने दिया। मिहिरभोज विष्णु और शिव का उपासक था। उसके वैष्णव धर्मावलम्बी होने की पुष्टि ग्वालियर अभिलेख से भी होती है। इस अभिलेख के अनुसार उसने अपने अन्तःपुर में विष्णु मन्दिर का निर्माण कराया था।

मिहिरभोज के पुत्र महेन्द्र पाल के समय में भी प्रतिहारों की शक्ति प्रबल बनी रही। उसने पूर्व में मगध, उत्तरी बिहार और उत्तरी बंगाल को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। उसके सभा में प्रसिद्ध कवि और भट्टारक भाट राजशेखर थे। महेन्द्रपाल का उत्तराधिकारी महीपाल हुआ। इसी के काल में प्रतिहार राज्य का ह्रास प्रारम्भ हो गया। महीपाल की मृत्यु के बाद महेन्द्रपाल द्वितीय राजा हुआ। उसके बाद देवपाल प्रतिहार वंश का उत्तराधिकारी बना। उसके बाद विजयपाल और राज्यपाल प्रतिहार वंश के सिंहासन पर बैठे। महीपाल के उत्तराधिकारी नरेश प्रतिहार वंश के गौरव की रक्षा करने में असफल रहे। फिर 11वीं शताब्दी ई० में प्रतिहार वंश समाप्त हो गया और कन्नौज में एक नये राजवंश गायकवाड़ वंश का उदय हुआ।

13. चन्देल राजा यशोवर्मन का खजुराहो लेख
(Khajuraho Stone Inscription of Chandel Yashovarman)

स्थान : खजुराहो, मध्य प्रदेश
भाषा : संस्कृत
लिपि : कुटिल देवनागरी
काल : वि० सं० 1011 (=953 – 54 ई०)
संदर्भ : पाण्डेय, उपरोक्त, पृ० 189।

मूल-पाठ

1. ओं नमो भगवते वासुदेवाय।
दधानानेकां यः किरि पुरुष सिंहोभयजुषं
तदाकारोच्छेद्यां तनुमसुर मुख्यानजवरात्।
जघान त्रीनुग्रान्जगीत कपिलादीनवतुवः
सवैकुण्ठः कण्ठध्वनि चकित निःशेष भुवन॥—(1)
पायासु र्व्वलिवञ्चनव्यतिकरे देवस्यविक्रान्तयः
सद्यो विस्मित देवदानवनुतास्तिस्त्रस्त्रिलोकीं

2. हरेः।
यासु ब्रह्म वितीर्ण्णभर्धसलिलंपादार विन्दयच्युतं
धत्तेद्यापि जगत्त्रैयक जनकः पुण्येसमद्र्द्ध हरः॥
देवः पातुस वः पयः कणभृति वयोम्नीव ताराचित (2)
दैत्यासिव्रणलाच्छने दिविसदः संत्यज्य सर्वानपि।

3. तस्मिन्नउज्जन शैल भित्ति विपुले वक्षः (:) स्थले यस्य ताः
येतुर्मन्दरसङ्ग संभ्रम वलल्लक्ष्मीं फटाक्षच्छटाः॥ (3)
गंभीरो—

4. म्बुधयः शशांक रूचिमान्भास्व त्पतापो ज्ज्वलो
धीरो धात्रिमहान्मही धरवराः कल्पद्रमास्त्यागवान्
आकल्पादविकल्प निर्म्मल गुण ग्रामाभिरामः प्रभुः
सत्यं ब्रूतयदि क्वचित्पुनरभूत्तुल्योयशो वर्मणः॥ (4)
प्रधानादव्यक्तादभवदविकारादिह महान—
हैक्यरस्तस्मादजनि जनितोपग्रहगणः
ततस्तन्मात्राणि प्रसव

4. मलभन्त क्रमवशादथैतेभ्यो भूतान्यनुभुवनेमम्या प्रवृत्ते॥ (5)
इहाद्यो विद्यानां कविरखिल कल्प व्युपरतौ—
परसाक्षीदेवस्त्रिभुवन विनिर्माण निपुणः।
स विश्वेषामीशः (:) स्मितकमल लिउजल्क वसति—
र्महिम्नास्वेनैव प्रथममथ वेधाः पुनुरभूत्॥ (6)
तस्माद्विश्वसृजः पुराणपुरुषादाम्नाय धाम्नः कवे र्ये भूवम्मु—

5. नयः पवित्र चरिताः पूर्व्वे मरीच्यादायः।
तत्रापिः सुषुवे निरन्तर तपस्तीव्र प्रभावं सुतं—
चन्मात्रेयमकृत्रिमोज्वलतर ज्ञानप्रदीपंमुनिं॥ (7)
अस्तिस्वस्ति विधायिनः स जगतां निःशेष विद्याविद
स्तस्यात्मोपनता खिल श्रुति निधे र्व्वन्शः प्रशंसास्पदं।
यत्राभून्नपराक्रमेण लघुता नो चाटुकारोद्धति
र्नाल्पाप्यंतरसा—

6. रतानच फल प्राप्तिः (:) क्षयायात्मनः॥ (8)
त्रस्तत्राण प्र (व) गुण मनसां सर्व्व संपत्पदाना
मुद्युक्तानां कृतकृतयुगाचार पुण्यस्थितीनां
तत्रत्यानाममलयशसां भू भुजां का प्रशंसा—
येषां शक्तिः सकल धरणी ध्वंसने पालने वा॥ (9)
तत्रक्षत्र सुवर्न सारनिकषग्रावायश्चन्दन
क्रीडालंकृत दिक्पु—

7. रन्ध्रि वदनः श्री नन्नुको भून्नृपः।
यस्यापूर्व्वपराक्रम क्रमनमन्निः शेष विद्वेषिणः
संभ्रान्ताशिरसा वहन्नृपतयः शेषामिवाज्ञां भयात्॥
यस्यानंदित वंदि बंद रचितस्तोत्रक्रिया पक्रमा—(10)
त्सक्रान्तम्वहुवैरि वर्ग जियनः कंदर्पकल्पाकृतेः
नामक्षाम तनूभृतां मृगदृशां सद्यो विधत्ते पदं स्वान्तेषु—

8. द्विषतां चराशिषु बलाद्वैल्कव्यमव्याहतां॥ (11)
तस्मादभूदाजिपरातारे श्रीबाक्यपतिर्वाक्पतितुल्यवाचः
यस्यामला भ्राम्पतिभ्राननुनाभिः सहैव लोकत्रितयेपिकीर्ति। (12)
यस्यामलोत्पन्ननिषण्ण किरात योषि
दुद्गीत तद्गुण कलध्वनिरम्यसानुः।
क्रीडा गिरिः शिखर निर्ज्झरं वारि पात झात्का

9. र ताण्डवितकेकिगणः सविन्ध्यः॥ (13)
तस्याद्विस्मय धाम्नः धीराब्धेः चन्द्रकौस्तुभौ यद्वत्।
द्वावात्म जावभूतां जयशक्ति विंजयशक्तिश्च॥ (14)
तेयोर्द्वयोरम्यमित प्रतापदावाग्निं दग्धाहितकाननामि।
कर्माणि रोमांच जुषः समेताः समुर्द्धकम्पंक्षितिपास्तुवत्ति॥ (15)
तत्रानुजन्मातनयं राहिलाख्यमजीजनत्। निद्राद—

10. दरिद्रतां यान्ति यम्बिचिन्त्य निशिद्विशः॥ (16)
भीम भ्राम्य दसि (स्तु) चिस्व्रववस्टक्समुदिताज्यक्रिये
ज्यानिर्घोषवषटपदे क्रमचरत्संरव्धयोधीर्त्वजि।
अश्रान्तः समारध्वरे प्रतिहत क्रोधानलोद्दीपिते।
वैरोदर्चिषियः पशूनिवकृती मन्त्रैर्जुहावद्विषः॥ (17)
श्रीहर्षभूप मथ भूमि भृताम्वरिष्ठः
सासूत कल्पतरूकल्प मन—

11. त्पसत्त्वः।
अद्यापियस्य सुविकासियशः प्रसून
गन्धाधिवास सूरभीणि दिगन्तराणि॥ (18)
यत्र श्री श्चसरस्वती च सहिते नीति क्रमो विक्रम—

स्तेजा सत्त्वगुणोज्ज्वलं परिणता क्षान्तिश्चसनैर्गिको
सन्तोषोवि जिगीषुता च विनयो मानश्चपुण्यात्मन—
स्तस्यान्त गुणस्य विस्मय निधेः किन्नाम वस्तुस्तुमः ।। (19)
भीरूर्द्धर्मापराधेमधुरिपु—

12. चरणाराधेन यः सतृष्णः
पापालापेनभिज्ञो निजगुणगणनाप्रक्रमेटवप्रगल्भः ।
शून्यः पेशुन्य वादेऽनृतवचन समुच्चारणे जातिमूकः
सर्व्वत्रैवं स्वभाव प्रथित गुणनया नाम (कस्तू) यतेसौ ।। (20)
सोनुरूपां गुरूपाङ्ग कञ्चुकाख्यामकुण्ठधीः ।
सवर्ण्णीम्बिधिनोवाह चाहमानकुलोद्भवां ।। (21)
यस्यापतिव्रत तुलामधिरोढु मीशा—

13. नारून्धती गुरुतरामभि मानिनीति ।
पत्युः समीहिति विधान परापिसाध्वी—
कार्श्यन्तथा परमगादति लज्जितेव ।। (22)
गौडक्रीडा लतासिस्तुलित खसवलऽकोशलः कोशलानां
नश्यत्कस्मीर वीरः शिथिर्लित मिथिलः कालवन्मालवानाः ।
सीदत्सावद्यचेदिः कुरूतरुषु मरुत्संज्वरो गुर्जराणां
तस्मातस्यां स जज्ञे नृपकल

14. तिलकः श्रीयशोधर्म राजः ।। (23)
स दाता राधेयः स च शुचि वचाऽपांडुतनयः
स शूरः पार्थोपि प्रथित महिमानः किमपिते
व्यतीता किं ब्रमो यदि पुनरिहस्युः स्वचरिते
हियानम्री कुर्युर्वदनमवलोक्यैनमधुना ।। (24)
त्रस्त त्रातरित तत्रभूमृति नृणां क्लेशाय शस्वंग्रहः
कामं दातरि सिद्धकेलि सुमनस्तल्पाय कल्पद्रुमाः ।
वित्तेशः पर—

15. मार्थवृद्धि विधुरस्वान्तो विलासी स चे—
दास्ये तस्य सतीन्दुरुत्पलवन प्रीत्यैदृशामुत्सके ।। (25)
यस्योद्योगे बलानां प्रसरित रजसि व्याप्त भेदोन्तराले
स्वः सिंधुर्व्वद्धराघाः पिहितरुचिरभूद्भानुरादर्शरम्पः
सम्यग्देवेन्द्रदन्ती मुदमधितवियत्साभ्रमालोच्यहन्साः
सोत्कण्ठास्तस्थुरासीन्नयन दश शती कूणित वृत्तशत्रोः ।। (26)
अन्योन्या

16. वद्धकोप द्विपकलह मिलद्दन्त दंडाभिघात—
प्रोद्यज्ज्वालाकलाप पसृतहुत भुजि ज्याघन ध्वानभीमे ।
पीतासृक्षीवरक्षः प्रमदकलकल लह्लादरौद्रप्रहासे

धीरं भीतेव लक्ष्मीः समर शिरसि यं संभ्रमादालिलिङ्ग ।। (27)
क्रुध्यद्दुर्द्धर धन्वि मार्ग्गण गण प्रारब्धरक्षाक्रियं।
उत्तुङ्गाञ्जनशैल सन्निभ चलन्मत्ताद्विपेन्द्रिस्थित—
विख्यात क्षितिपालमौ

17. लि रचना विन्यस्तपादाम्बुजं
संख्ये संख्यबलं व्यजेष्टगतभीर्यश्चेदिराज हठात् ।। (28)
लक्ष्मच्छायाकलुषवपुषः कान्तिमद्दूरमिन्दो
रन्यायत्त स्फुरित विधुरात्सुन्दरं चार विन्दत्
यस्यां.....................(चार्हवृत्ते)
संभ्रान्ताभिः कथमपि मुखं वीक्ष्य वैरि प्रियाभिः ।। (29)
गङ्गा निर्ज्झर घर्घर ध्वनिभय भ्राम्यत्तुरङ्गव्रजाः
सद्यः सुप्त विवृद्ध केस—

18. रि रवत्रस्यत्करीन्द्राकुलाः।
यत्सैन्यः प्रतिकल्पपादपमुमालूनप्रसून्नोच्चयाः
प्रालेयाचलमेखलाः कथमति क्रान्ताः शनैर्द्दिग्जये ।। (30)
उच्चप्राकार भित्ति स्थितसमद (शिखि खूर 1) .... (निना) द
....श्लथ (रथ) तुरग प्राप्तवेगान्तरायः।
यस्मिन्मध्यन्दिनेस्पात्तराणि सुदिनं नीलकण्ठाधिवासं
जग्राह क्रीडया यस्तिलकमिव भुवः—

19. किञ्च कालंजराद्रिं ।। (31)
आशस्त्रग्रहणादखण्डित महावीर ब्रत प्रक्रियै—
रा वाल्याद लिलुप्त सप्यसमयैरापाणि पीड़ाविधेः।
अश्रान्तार्थिवीतीर्ण्ण पूर्ण्ण विभवैस्त (थेप्सिता) कांक्षिभि—
दूरोत्कर्ष कथा कृतोच्च पुलकैर्यः साधुभि (:) स्तूयते ।। (32)
निन्दामुपैमि पुरुषान्तर सङ्गमेन शान्तिन्नजातु सकतत भ्रमणक्रमेण
यस्यातिपौरुष निरस्त मनुष्य भावे लोके समु—

20. द्रगत कीर्त्तिरनिन्दितैवाः ।। (33)
एकैवोवाह लोकेस्मिन्पुत्रजन्मोन्नतंशिरः।
कञ्छुका येन धीरेण देवकीव मधु द्विषा ।। (34)
शौर्यो दार्य नयादिनिर्मल गुण ग्रामाभिरामं यशो
यस्या शेष विशुद्ध नाथतिलकङ्गायन्तिसिद्धस्त्रियः।
तस्यस्तोत्रममित्र मदर्दनरवेऽ स्यष्टप्रकाशीकृतः—
त्रैलोक्यस्यसहस्रसंस्य महसो दीप प्रदानोपमं ।। (35)
क्रोधोद्वृत्तान्तक भ्रू कुटिल—

21. पटुरत्न (1 ण) च्चण्डको दण्ड यष्टि—
ज्या घात स्फार घोर ध्वनि चकित मनः सम्भ्रमभ्रान्त दृक्षु।

स्पष्टं नष्टेषु दूरं क्वचिदपि रिपुषु क्षत्रतेजोम्बुराशे
—(र्यस्यौज) (न व्य रंसीद्भुवन) विजयिनश्चण्डदोर्द्दण्ड-कण्डूः ।। (36)
यो लक्षवर्म नृपते शरदिन्दुकान्त,
माख्यातुमिच्छति यशः प्रसरं वचोभिः ।
दीपप्रभापरिचयेन विमुग्धबुद्धि
मध्यन्दिने दिवसनाथमुदीक्षतेसौ ।। (37)

22. यन्नाक्राम दवक्रमानसबलिव्याजप्रयोगापत—
त्पृथ्वीलंघनलब्ध लाघवकचच्छेदि पदं वामनः ।
लोकालोकशिरःशतप्रतिहतज्योतिर्विवस्वान्न य—
त्तस्य क्रामति तन्निशाकर महा श्रीस्पर्द्धिशुभ्रं यशः ।। (38)
धीरो दिग्विजयेषु केलिसरसीन्ती ब्रप्रताः पंदध—
न्निशेष द्विषदव्यथोभयतटीविन्यस्तसेनाभरः ।
सज्जन्भत्तकरीन्द्रपंकिलजलां श्रीलक्षवर्मा—

23. मिधे—
श्चक्रे शत्रसमः कलिन्दतनयां जह्नोः सुतां च क्रमात् ।। (39)
आस्थानेषु महीभुजा मुनिजनस्थाने सतां संगमे
ग्रामे पामरमण्डलीषु वणिजां वीथीपथे चत्वरे ।
अध्वन्यध्वगसं कथासु निलये रण्यौ कर्सौ विस्मया—
न्नित्यं तद्गुणकीर्तनैकमुखराः सर्व्वत्र सर्व्वेजनाः ।। (40)
यस्यानने शरदखण्डशशि प्रसन्ने
कोपं व्यनक्ति हृदयस्थमरिप्रिया

24. णां
सिंदूर भूषण विवर्जित मास्य पदम्—
मुत्सृष्ट हार वलयं कुचमण्डलं च (41)
तनै तच्चारू चामीकर कलसलसद्योम धाम व्यधायि
भ्राजिष्णु प्रांशुवंशध्वजगट पटलां दोलितां भोज वृन्दं ।
दैत्यारातेस्तुषारक्षितिधरशिखरस्पृर्द्धि वर्द्धिष्णुरागा
दृष्टे यात्रासु यत्र तृदिववसततयो विस्मयन्ते समेताः ।। (42)
कैलाशा (सा) द्भोटनाथः सुहृदिति ततः की—

25. रराजः प्रपेदे—
साहिस्तस्मादवाप द्विपतुरगवलेनानु हेरम्ब पालः ।
तत्सूनोर्देवपालात्तमय हयपतेः प्राप्त निन्ये प्रतिष्ठां—
वैकुण्ठं कुण्ठितारिः क्षितिधर तिलकः श्रीयशोवर्मराजः ।। (43)
श्रीधङ्ग स्वभुज प्रसाधित मही निर्व्याज राज्यस्थिति—
स्तस्मादास महोदधेरि व विधुः सुनूर्जनान्दकृत
युद्धे नश्यदरातिवर्ग्ग सुभट प्रस्तूयमानस्तुतिर्नि—

26. त्यं नम्ब्रमहीपमौलि गलित स्रक्पूजितांघ्रिद्वयः ।। (44)
आकालञ्जरमा च मालवनदीतीरस्थिते भास्वतः
कालिन्दीसरितस्तटादित इतोप्या चेदिदेशावधेः।
आ तस्मादपि विस्मयैकनिलयाद् गोपा भिदानाद्गिरे
र्येः शास्ति क्षितिमायतोर्जितभुजव्यापारलीलार्जितां ।। (45)
यस्त्यागविक्रमविवेकललाविलासं
प्रज्ञा प्रताप बिभव प्रभवश्चरिज्ञात्।
चक्रेकृती
27. सुमनसां मनसामकस्मा—
दस्मादकाल कलिकाल विरामशंका ।। (46)
शब्दानु शासनविदा पितृमान्व्यधत्त द्देहे माधवकविः
स इमां प्रशस्तिं
यस्यामलं कवियशः कृतिनः कथासु रोमाञ्चकञ्चुक—
जुषः परिकीर्त्तयन्ति ।। (47)
संस्कृतभाषाविदुषा जय गुण पुत्रेण कौतुकाल्लिखिता।
रुचिराक्षरा प्रशस्तिः करणिकजद्धेन गौडेन ।। (48)
28. मिपतिः पृथ्वीं त्रयीधर्म्मः प्रवर्द्धतां।
नन्दन्तु गोद्विजन्मान प्रजा प्राप्नोतु निर्वृतिम् ।। (49)
सम्वत्सरदशशतेषु एकादशाधिकेषु सम्वत् 1011 उत्कीर्ण्णा चेयं रु
पकार......श्रीविनायक—
पालदेव पालयति वसुधां वसुधानधिगता
निर्द्दग्ध वैरिभिः नमो भगवते वासुदेवाय।
नमः सवित्रे।

14. अमोघवर्ष का संजन ताम्रपत्र लेख (वर्ष 1)
(Sanjan Copper Plate Inscription of Amoghavarsh 1)

स्थान : संजन, जिला – थाना, बम्बई

भाषा : संस्कृत

लिपि : ब्राह्मी

काल : श० सं० 793 (=871 ई०)

संदर्भ : पाण्डेय, उपर्यंकित, पृ० 245

मूल पाठ

1. ओं (।।) स वोव्याद्वेधसा धाम यन्नाभिकमलं कृतं
हरश्च यस्य कान्तेणन्दुकलया कमलं कृतं ।। 1 ।।
अनन्तभागेस्थितिपरत्र पातु वः प्रतापशीलप्रभवोदयाचलः (।)

2. शुराष्ट्र कुटोच्छ्रितवंशपूर्व्वजः स वीरनारायण एव यो विभुः। (2)
   तदीय वीर्य्यायतयादपान्वये क्रमेण वर्द्धाविव रत्नसंचयः (।)
   बभूव गोविन्दमहीप्रतिर्भुवः
3. प्रसाधनो पृच्छकेराजनः ॥ 3 ॥ वभार यः कौस्तुभरत्नविस्फुरद्भस्त्विस्तीर्ण्णमुरस्थलं ततः (।) प्रभातभानुप्रभवप्रभाततं हिरण्मयं मेरुरिवाभि तस्तटं ॥ 4 ॥ मनांसि
4. यत्रासमयानि सन्ततं वचांसि यत्कीर्तिविकीर्त्तनान्यपि। शिरांसि यत्पाददनतानि वैरिणां यशांसि यत्तेजसि नेशुरन्यतः ॥ 5 ॥ धनुस्समुत्सारितभूभृता मही प्रसारिता
5. येन पृथुप्रभाविना। महौजसा वैरितमो निराकृतं प्रतापशीलेन स कर्क्कराट् प्रभुः ॥ 6 ॥ इन्द्रराजस्ततोगृह्वात् यश्चालुक्यनृपात्मजां (।) राक्षसेनविवाहेन रणे स्वे—
6. टकमण्डपे ॥ 7 ॥ ततोभवद्दन्तिघटाभिमर्द्दनो हिमाचलदास्थिसेतुसीमतः (।) खलीकृतो-वृत्तमहीपमराडलः कुलाग्रणीर्यो भुवि दन्तिदुर्ग्गराट् ॥ 8 ॥ हिरण्य—
7. गर्भ राजन्यैरूज्जयन्यां यदासितं (।) प्रतिहारीकृतं येन गुर्जरेशादिराजकम् ॥ 9 ॥ स्वयं— वरीभूतरणांगणे ततस्स निर्व्यपेक्षं शुभतुंगवल्लभः (।) चकर्ष चालुक्यकुल श्री—
8. यं वलाद्विलोलपालि ध्वज माल भारिणां ॥ 10 ॥ अयोध्यासिंघासनचामरोर्जितस्सितात पत्रो प्रतिपक्ष राज्य भाक् (।)
   अकालवर्षो हतभूपराजको वभूव राज—
9. रिषिरशेषपुण्यकृत् ॥ 11 ॥ ततः प्रभूतवर्षो भूद्धारावर्षस्ततश्शरैर्द्धारावर्षायितं येन संग्राम-भुवि भूभुजा ॥ 12 ॥
   युद्धेषु यस्य करवालनिकृत्तशत्रुमूर्ध्नाङ्क्वोष्णरूचिरासपवन—
10. मतः। आकण्ठपूर्ण्णजठरः परितृप्तमृत्युरूद्गारयन्निव स काहलधीरनादः ॥ 13 ॥ गङ्गा-यमुनयोर्मध्ये राज्ञो गौडस्य नश्यतः (।) लक्ष्मीलोलारविन्दानि श्वेतक्षत्राणि यो हरेत ॥ 14 ॥
11. व्याप्ता विश्वम्भरान्तं शशिकरधवाला यस्य कीर्तिः समन्तात्।
    प्रेखंच्छंकालिमुक्ताफलशत्तफरानेकफेनोर्म्भिरूपैः।
    पारावारान्यतीरोत्तरणमविरलं कुर्व्वतीव प्रयाता स्व—
12. र्ग गीर्व्वाणहारद्विरसुरदसरिर्द्धात्त राष्ट्रच्छलेन ॥ 15 ॥
    प्राप्तो राज्यांभिषेक निरूपमतनयो य स्वासामन्तवर्ग्गा
    त्स्वेषां पदेषु प्रकटमनुनयै स्थापयिष्यानश—
13. षाम् ॥ 16 ॥ पित्रा यूय समाना इति गिरमरणीन्मन्त्रिवर्ग्ग त्रिवर्ग्गोयुक्तः कृत्येषु दक्षः क्षितिमवति यदोन्मोक्षयन्वद्धगंग। दृष्टांस्तावत्स्वभृत्यां झटिति विध—
14. टिता स्थापितान्येशपाशां युद्धे युद्धवा स बध्वा विषमतरमहोक्षानिवोग्रान्समग्रां ॥ 17 ॥ मुक्त्वा सार्द्रान्तरात्मा विकृतिपरिणतौ वाडवाग्निं समुद्रः क्षोमो नाभूद्विपक्षान—
15. पि पुनरव तां भूभृतो यो बभार ॥ 18 ॥ उपगतिविकृतिः कृतघ्नगंगो यदुदितदण्डपलायनो-नुबन्धाध्यपगतपदश्रृखला खलो यस्सनिगलबन्ध गलः

16. कृतस्य येन ।। श्री मान्धाता विधातु प्रतिनिधिरपरो राष्ट्रकूटान्वयश्रीसारान्सारामरम्यप्रविततनगरग्रामरामाभिरामामुर्व्वी मुव्वश्वराणां मकु—
17. टमकरिकाश्लिष्टपादारविन्दः पारावारोरूवारिस्फुफुटरवरशनां पातुमुभ्युद्यतो यः ।। 19 ।। नवजलधरवीरध्वानगम्भीरभेरीरववधिरित विश्वशान्तरा
18. लो रिपुणां (।) पटुरवपदढक्काकाहलोत्तालतर्यत्रिभुवन धवलस्योद्योग कालस्य कालः ।। 20 ।। भूभृन्मूर्द्धि सुनीतपादविशरः पुण्योदयस्तेजसा क्रान्ताशे—
19. पदिगन्तर ⌣ प्रतिपदं प्राप्त प्रतापोन्नतिः (।)
भूयो योप्यनुरन्तामण्डलयुतः (:) ⌣ पद्माकरानन्दितो मार्तण्ड स्वयमुतरायणगतस्तेजोनिधिर्दुस्सहः ।। 21 ।। स नाग—
20. भटचन्द गुप्तनृपयोर्यशौर्य रणेस्वहार्यमपहार्य धैर्य विकलानथोन्मीलयत् (।) यशोर्ज्जनपरो नृपान्स्वभुवि शालिसस्यानिव (।) पुन ⌣ पुनरतिष्टि
21. पत्स्वपद स्व चान्यानपि ।। 22 ।। हिमवत्पर्व्वत्तनिर्झराम्बु तुरगैः वीतराच गङ्गजै—
22. र्द्धनितं मज्जजतूर्यकैर्द्विगुणितं भूयोपि तत्कन्दरे (।) स्वयमेवोपनतौ च यस्य महतस्तौ धर्म्मचक्रायुधौ (।) हिमवान्कीर्तिसरूपतामुपगतस्त—
23. त्कीर्त्तिनारायणः ।। 23 ।। ततप्रतिनिवृत्य तत्प्रकृतभृत्यकर्म्मेत्ययः प्रतापमिव नर्म्मदारतटमनुप्रयात ⌣ पुनः (।) सकोशलकलिंवेगिडहलौड्रक (।)-
24. न्माल्वाः विलभ्य निजसेवकै स्वयमवु भुजद्विक्रमः ।। 24 ।। प्रत्यावृत्तः प्राप्तिराज्यं विधेयं कृत्वा रेवामुत्तरं विन्ध्यपादे (।) कुर्व्वन्धर्म्मान्कीर्त्तनैः पुण्य (वृ) न्दैरध्यष्टात्तान्सो—
25. चिता राजधानी ।। 25 ।। मण्डलेशमहाराज-सर्व्वस्वयदभूद्भुवः । महाराजा सर्व्वस्वामी भावी तस्य सुतोजनि ।। 26 ।। यज्जन्मकालेदेवज्ञैरादिष्ठं (ष्टं) विषहो भुवं (।) भोक्तेतिहि हि—
26. मवत्सतु-पर्यान्ताम्बुधिमेखलां ।। 27 ।।
योद्धारो मोघवर्षेण वद्धा यो व युधि द्विंषः (।)
मुक्ता ये विकृतास्तेषां भस्मतश्शृंखलोद्धृतिः ।। 28 ।। तत)(प्रभूत वर्षस्सन्स्व-सम्पूर्णम्—
27. नोरथः (।) जगतुगस्य मेरूर्व्वा भूभृतामुपरिस्थितः ।। 29 ।। उद (ति) ष्ठदवष्टम्भं भंक्तुं द्रविल—
भूभृतां (।) स जागरणचिन्तास्थमन्त्रणभ्रान्तचेतसां ।। 30 ।। प्रस्थानेन हि के—
28. बलं प्रचलित स्वच्छादिताच्छादिता धात्रो विक्रमसाधनैस्सकलुष विद्वेषिणां द्वेषिणां (।) लक्ष्मीरप्पुरसो लतेव पवन प्रायासिता यासिता धूलिर्न्नैव दिशो—
29. गमद्रिपुयशस्सन्तानकं तानकं ।। 31 ।।
त्रस्यत्केरलपाड्यचौलिक नृपस्संपल्लवं पल्लवं प्रम्लानिं गमयन्कलिंगमगधप्रासासको यासकः (।) गर्ज्जद्गुर्ज्जरमौशौ—
30. शौर्यविलयो लंकारयन्नुद्योगस्तदनिन्धशासनमतस्सद्विक्रमो विक्रमः ।। 32 ।।
निकृति विकृतगंगाश्शृंख्लोवद्धनिष्ठा मृतिमयूरनुकूला मण्डेशा स्वभृ—
31. त्या (।) विरजसमहितेनुर्यस्य बाह्यालिभूमिं परिवृति विष्ट्या वेगिनाथा दयोपि ।। 33 ।।
राजामात्यवराविव स्वहित कार्यालस्यनष्टौ हठाद्दण्डेनैव नि-

32. यम्य मूकवधिरावानीय हेलापुरे (।)
लंकातच्छिल तत्प्रभुप्रतिकृती का (ण्ची) (ञ्ची) मुपेतौततः कीर्त्तिस्तम्भनिभौ शिवायतनके येनेह संस्थापितौ ॥ 34 ॥ या—
33. स्या कीर्तिस्तृलोक्यान्निजभुवनभरं भर्तुमासीत्समर्थः। पुत्रश्चास्माकमेकस्सफलमिति कृतं जजन्म धर्म्मैर्नैकैः (।) किं कर्तु स्थेयमस्मिन्निति विम
34. लयश ⌣⌢ पुण्यशोपानमार्ग्गः स्वर्गप्रोत्तुंगसौध प्रतिरदनुपमः कीर्तिम्रे (मे) वानुयात्तः [तः]॥ 35॥
वन्धूनां वन्धुराणामुचितनिजकुले पूर्व्वजानां प्रजानां जाता—
35. नां वल्लभानां भुवनभरितसत्कीर्त्तिमूर्त्तिस्थतौं (।) त्रातुं कीर्त्ति सलोकां कलिकलुशमथो हंतुमन्तो रिपुणां श्रीमान्सिहासनस्थो बुधनुतचरितोमोघव
36. र्ष प्रशस्ति॥ 36॥ त्रातु नम्रान्विजेतुं रणशिरसि परान्प्राथकेभ्य ⌣⌢ प्र (।) दातुं निर्व्वोढुं रूढिसत्यं धरणिपरिवृढो नेद्दशोन्यः (।) इत्थं प्रोत्थाय सार्थ पृथुरवद
37. ढक्कादिमन्द्रप्रघोषो यस्योन्द्रस्येव नित्यं ध्वनति कलिमलध्वन्सिनो मदिराग्रे॥ 37॥ दृष्ट्वा तन्नवराज्जमर्ज्जि (त) वृहद्धर्म्मप्रभावं नृपं भूयषोडशराज्य
38. वत्कृतयुग ⌣⌢ प्रारम्भ इत्याकुलः (।×) नश्यन्नन्तरनुप्रविश्य विषमो मायामयोसौ कलिः सामान्तान्सचिवन्स्ववान्धवजनानक्षोभयत्स्वीकृताम्॥ 38॥
39. शठमत्रं प्रविधायत्कूटशपथैरोशस्वतंत्रा स्वयं विनिहत्योचितयुक्तकारिपुरुषान्सर्व्वे स्वयं ग्राहिणः (।) परयीषिदुहिता स्वसेति न पु—
40. नर्भेद)(पशूनामिव प्रभुरेवं कलिकालमित्यवसतिं सद्वृत्तमुधृतः॥ 39॥ विततमहिमधाम्नि व्योम्नि संहृत्य धाम्ना मितवती महतीन्दोम्मेण्ड—
41. लं ताराकाश्च (।) उदयमहिमभाजोभ्राजितास्सप्रतापे वितरवति विजिह्वाश्चोर्जितास्तावदेव (:)॥ 40॥ गुरुबुधमनुयातस्यार्यपातालमल्ला—
42. दुदयगिरिमहिम्नो रट्टमार्तण्डदेवः। पुनरुदयमुपेत्योधृत्ततेजस्विचक्रं प्रतिहतमथ कृत्वा लोक मेकः पुनाति॥ 41॥ राजात्मा मनएव तस्य
43. सचिवस्सामन्तचक्रं पुनस्तनीत्येन्दियवर्ग्ग एष विधिवद्वागादयस्सेवकाः (।) देहस्थानमधिष्ठित स्वविषयं भेक्तु स्वतन्त्रः क्षमस्त—
44. स्मन्भोक्तरि सन्निपातविवशे सर्व्वे पि नश्यन्ति ते॥ 42॥
दोषानौषधवद्धनानिलवत्शुष्केन्धेनान्यग्निवत् ध्वावन्तं भानुवदात्मपूर्व्वज
45. समाम्नायागतान्द्रोहकान (।) संतापान्विनिहत्य यः कलिमलं धात्र्याद्दि-संप्रान्तत (:) कीर्त्या चन्द्रिक एव चन्द्रघवलच्छत्रश्रिया
46. भ्राजितः॥ 43॥ यण्डाभिहतोत्तरोरिव फलं मुक्ता फलं मण्डलात् (।) यातं शूकरयूथ—वद्गहनतस्तन्मन्दिरं हास्तिकं। यत्कोपोग्र—
47. दवाग्निदग्धतनवः प्राप्ता बिभूतिं पने (।) तत्पादोपनतप्रसादतनवः प्राप्तो विभूतिम्पर॥ 44॥ यस्याज्ञां परिचक्रि स्त्रजमिवाजस्त्रं शि—

48. रोभिर्व्वहन्त्यादिग्दन्तिघटावलीमुखपटः
कीर्तिप्रतानस्ततः (।) यत्रस्थ स्वकरप्रतापमहिमा कस्यापि दूरस्थितः—
तेजक्रांतसमस्त भूभृदि—

49. न एवासौ न कस्योपरि ॥ 45 ॥ यद्वारे परमण्डलाधिपतयो दौवारिकै—
व्वारिकैरास्थानावसरं प्रतीक्ष्यवहिरप्पध्यासिता यासिता। गणिक्यं वरलमौ—

50. क्तिकचितं तद्वास्तिकं हास्तिकं (।) नादास्याम यदीति यत्र निजकं पश्यन्ति नश्यन्ति च ॥
46 ॥ सर्प्पं मातुमसो ददो निजतनुं जोमूत—
केतोस्सुतः (।) श्येनायाथ शिवि

51. कपोत परिक्षार्त्थं दधीचोर्त्थिने। तेप्येकैकमतर्प्पयन्किल महालक्ष्म्यै
स्वावामांगुलिं लोकोपदवशान्तये स्म विशति श्रीवीरनारायणः ॥ 47 ॥
हत्वा भ्रातर—

52. मेव राज्यमहरद्देवीं च दीनस्ततो लक्ष कोटिमलेखयन्किलं कलौ दाता—
स गुप्तान्वयः (।) येनात्याजि तनु स्वराज्यमस कृद्धाह्यार्थकैः का कथा [।] ही—

53. प्तस्योन्तरितराष्ट्रकूटतिलको दातेति कीर्त्यावपि ॥ 48 ॥ स्वभूजभुजसंनिस्त्रिशोग्रदष्टाग्रदष्ट
प्रबल [वल] रिपुसमूहे मोघवर्षे भधीशे ॥ [।] न दध—

54. ति पदमीतिव्याधिदुष्कालकाले [।] हिमशिशिरवसन्तग्रीष्मवर्षाशरत्सु ॥ 48॥ 49 ॥
चतुस्समुद्रपर्यान्तः समुद्र यत्प्रसाधितं [।] भग्ना समस्त भूपालमुद्रा ग—

55. रूडमुद्रया ॥ 50 ॥ राजन्द्रास्ते वन्दनीस्तु पूर्व्वे येषान्धर्म्मा ⋎ पालानीयोस्मदादेः [।] ध्वस्ता
दुष्टा वर्त्तमानास्सधर्म्मं प्रात्थ्यां येते भाविनः पार्थिवेन्द्राः ॥ 51 ॥ भुक्त कं-

56. शिचक्रमेणापरेभ्यो दत्तं चान्यैस्त्यक्तमेवापरैर्य्यत् [।] कस्थानित्ये तत्र राज्यं महद्भिः कीर्त्त्यां धर्मः
केवलं पालनीयं ॥ 52 ॥ तेनेदमनिलविद्युचञ्चलमवलो—

57. क्य जीवितमसारं [।] क्षितिदानपरमपुण्य प्रवर्तितो ब्राह्मदायोयं ॥ 53 ॥
स च परमभट्टारक महाराजाधिराजपरमेश्वर श्रीजगतुंगदेवपादानुध्यात पर—

58. मभट्टारकमहाराजाधिजपरमेश्वर श्रीपृथ्वीवल्लभ—श्रीमदमोघवर्ष—श्रीबल्लभ नरेन्द्रदेवः
कुशली सर्व्वानेव यथासम्बन्ध्यमान कान्नाष्ट्रपति विषयपति

59. ग्रामकूटयुक्तक नियुक्ताधिकारीकमहत्तरादी समादिशत्यस्त् [॥] वस्संविदीतं यथा मान्यखेट
राजधान्यातस्थितेन मया मातापित्रोरात्मन [क] श्चैहिकामु-

60. त्रिकपुण्ययशोभिवृद्धये ॥ 7 ॥ करहडविनिर्ग्गतभरद्धःमाग्निवेश्यानां आंगिरसपारूहस्पत्यानां
भारद्वानाजेसब्रह्मचारिणे साविकूवारक—

61. मइतपौत्राय। मोलसडगमिपुत्राय। नरसिंघदीक्षितः पुनरपि तस्मै विषय—विनिर्गता। तस्मै
गोत्रे न भट्टपौत्राय। गोविन्दभट्ट—

62. पुत्राय। रक्छदित्यक्रमइतः। तस्मि देषे।
वड्डमुखसब्रह्मचारिणे दावडिगहियसहायसपौत्रय। विष्णुभट्टपुत्राय। तिविक्रम—

63. षडंगमिः पुनरपि तस्मिं देषे वच्छगोत्रब्रह्मचारिणे। हरिभट्टपौत्राय।
गोवादित्यभट्टपुत्राय। केसवगहियसाहायः।

64. चतुकाःनां वह्ववृचसखानां। पवं चतुकः ब्राह्मणानां ग्रामो दत्तः संजाणसमीपवर्त्तिनः चतुर्विंशतिग्राममध्ये। रुरिवल्लिकानामग्रामः। तस्य चाघाट
65. नानिः पूर्व्वतः कल्लुवी समुद्रगामिनी नदी। दक्षिणतः उप्पल हत्थकं भट्टग्रामः। पश्चिमतः नन्दग्रामः। उत्तरतः
धन्नवल्लिकंग्रामः अयं ग्रामस्य संज्जाने
66. पत्तने शंकुंन शुष्णयामिग्रामं सवृक्षमालाकुलं भोक्तव्यं। एवमयं
चतुराघटानोपलक्षितः सोद्रगंस्सोपरिकरः सदण्डदपराधः सभूतापात्त प्रत्ययः सोत्प—
67. द्यमानविष्टिकः सधान्यहिरण्यादेयः अचाटभटप्रवेश्यः सर्व्वराजक्रीयानामहस्तप्रक्षेपणीया आचन्द्रार्क्कार्ण्णवक्षितिसरित्पर्व्वतसमकालिनः पुत्रपौत्रान्वयक्रमो—
68. पभोग्यः पूर्व्वप्रत्यब्रह्मदेवदायरहितोभ्यन्तर-सिद्धयाय भूमिच्छिद्रन्याण्न शकनृपकालातीत संवत्सरशतेषु सप्तसु नवतृतयत्यधिकेषु नन्दनसंवत्सरान्तर्ग्गतपुष्य—
69. मास उत्तरायणमहार्व्वणि वलिचरुवैश्वदेवाग्निहोत्रतिथिशं [सं] तर्प्पणार्त्थ अद्योदकादि-सर्ग्गेण प्रतिपादितः अस्तोस्योचितया ब्रह्मदायस्थित्या भंजुतो भोज—
70. यतः कृषयतः प्रविशतो वा न कैश्चिल्यापि परिपन्थना कार्य्या तथागामिभद्रनृपतिभिरस्मद्वंश्नन्यैर्व्वा सामान्यं भूमिदानफलमवेत्य विद्युल्लोला—
71. न्यनित्यैश्वर्य्याणि त्रिणाग्रलग्नजलबिन्दुचंचल च जीवित—माकलहेयवदायनिर्व्विशेषोय-मस्मद्यायानुमन्तव्यः प्रतिपालयितव्यश्च॥ यश्चाज्ञानतिमिरपट—
72. लावृतमतिराच्छिद्यमानकं चानुमोदेत स पंचभिर्म्महापातकैस्सो पपातकैश्च संयुक्त स्यादित्युक्त च भगवता वेदव्यासेन। व्यासेन पष्ठि वर्षसहस्रा-
73. णि स्वर्ग्गे तिष्ठति भूमिदः [।] आच्छेता [त्ता] चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् [॥] विन्ध्याटवीष्वतोयासु शुष्ककोटरवासिनः [।] कृष्णासर्प्पा हि जायन्ते भूमिदानं हरन्ति
74. येत्॥ 55॥ अग्नेरपत्य प्रथमं सुवर्ण्णं भूर्व्वैष्णवौ सूर्य्यसुताश्च गावः [।] लोकत्रंय तेन भवेद्ध दत्तं यः काराचनं गां च महीं च दद्यात्॥ 56॥ वहुभिर्व्वसुधा भुक्ता
75. राजभिस्सगरादिभिः [।] यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं॥ 46॥ स्वदत्ताम्परदतां वा यत्नाद्रक्ष नराधिप [।] मही महिमतां श्रेष्ठं दानान्छेयोनुपालनं॥ 58॥
76. इति कमलदलाम्बुविन्दुलोलां श्रियमनुचिन्त्य मनुष्यजीवितं च [।] अति विमलमनोभिरात्मनीर्न्नहि पुरुष ‿ परिकीर्त्तयो विप्याः॥ 49॥ लिखितं चैत धर्म्माधि
77. करणसेनभोगिकेन वालभकायस्थवंशजातेन। श्रीमदमोघवर्षदेवकमलानुजीविना गुणधवलेन वत्सराजसूनुना॥ महत्तको
78. गोगूण्णक राजास्वमुखादेशेने दूतकमिति॥ मंगल महश्री॥ 9॥

15. सेनवंशी नरेश विजयसेन की देवपारा प्रशस्ति

(Deopara Prasasti of Vijaya Sen of Sen Dynasty)

स्थान : देवपारा, राजशाही जिला, बंगाल

भाषा : संस्कृत

लिपि : नागरी

काल : 11वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध

सन्दर्भ : पाण्डेय, उपर्यंकित, पृ॰ 230

मूल-पाट

1. ओं [।।] ओं नमः शिवाय।
वक्षोंशुकाहरणसाध्वसकृष्टमौलिमाल्यक्छटाहतरतालयदीपभासः।
देव्यास्त्रपामुकुलितं मुखामिन्दुभाभिर्व्वीक्ष्याननानि हसितानि जयन्ति शम्भोः।।[1]
लक्ष्मी वल्लभ—

2. शैलजादयितयोरद्वैतलीलागृहं
पद्युम्नेश्वरशब्द [ब्द]लाञ्छनर्मधिष्ठानं नमस्कुर्म्महे
यत्रालिङ्गनभङ्गकातरत [या] स्थित्वान्तरे कान्तयो—
र्द्देवीभ्यां कथमप्यभिन्नतनुताशिल्पेऽन्तरायः कृतः।। [2]
यत्सिंहासनमीश्वर—स्य कनकप्रायं जटामण्डलं

3. गङ्गाशीकरमञ्जरीपरिकरैर्यच्चामरप्रक्रिया।
श्वेतोत्फुल्लफणञ्चलः शिवशिरः सन्दानदामोरगञ्छत्रं यस्य जयत्यसावचरमो
राजा सुधादीधितः।।3।।
वंशे तस्यामरस्त्रीवि—

4. ततरतकलासाक्षिणो दाक्षिणात्य क्षोणीन्द्रैर्व्वीरसेनप्रभृतिभिरभितः-
कीर्त्तिमद्‌भिर्व्व[र्ब्ब] भूवे।
यच्चारित्रानुचिन्तापरिचयशुचयः सूक्तिमाध्वोकधाराः
पाराशर्ये विश्वश्रवणपरिसरप्रीणनाय प्रणीताः।। 4।।

5. तस्मिन् सेनान्वाये प्रतिसुभटशतोत्सादनव्र [ब्र]ह्मवादी
सव्र [ब्र] ह्मक्षत्रियाणामजनि कुलशिरोदाम सामन्तसेनः।
उद्‌गीयन्ते यदीयाः स्खलदुदधिजलोल्ललशीतेषु सेतोः
कच्छान्तेष्वूप्सरोमिर्द्दशरथतनयस्पर्द्धया युद्ध गाथाः।।5।।

6. यस्मिन् सङ्गरचत्वरे पटुरटत्तूर्योपहूतद्विष—
द्वर्ग्गे येन कृपाणकालभुजगः खेलायितः पाणिना।
द्वैधीभूतविपक्षकुञ्जरघटाविश्लष्टकुम्भस्थली
मुक्तास्थूलवराटिकापरिकरैर्व्वर्या—

7. सं तदद्याप्यभूत्।। [6]
गृहाद्‌गृहमुपागतं ब्रजति पत्तनं पत्तना—
द्वनाद्वनमनुद्रुतं भ्रमित पादपं पादपात्—
गिरेर्ग्गिरिमधिश्रितन्तरति तोयधिन्तोयधे—
यदीयमरिसुन्दरी सरक पृष्ठलग्नं यशः।।7।।
दुर्व्वृत्तानामयमरि—

8. कुलाकीर्ण्णकर्ण्णाटलक्ष्मी—
लुण्टाकानां कदनमदतनोत्तद्गेकाङ्गवीरः।
यस्मादद्याप्यविहतवसामान्समेदः सुभिक्षां
हृष्यत् पौरस्त्यजति न दिशं दक्षिणां प्रे [त] भर्त्ता ॥8॥
उद्गन्धीन्याज्यधूमैर्म्मृगशिशुरसिताखिन्न—
9. वैखानसस्त्री—
स्तन्यक्षीराण कीरप्रक्रकरपरिचितव्र[ब्र] ह्मपारायणानि
येनासेव्यन्त शेषे वयसि भवभयास्कन्दिभिर्म्मस्करीद्रैः
पूर्व्वोत्सङ्गानि गङ्गापुलिनपरिसरारण्यपुण्याश्रमाणि ॥9॥
अचरमपरमात्मज्ञानभी—
10. ष्मादमुष्मान्निजभुजमदमत्तारातिमाराङ्कवीरः।
अभवदनवसानोद्भिन्ननिर्णिक्ततत्तद्गुणा निवहमहिम्नां वेश्महेमन्तसेनः[10]
मूर्द्धन्यर्द्धेन्दुचूणामणिचरणरजः सत्यवाक्कण्ठभितौ
11. शास्त्रंश्रेत्रेरिकेशाः पदभुवि भुजयोः क्रूरमौर्व्वीकिणाङ्कः।
नेपथ्यं यस्य जज्ञे सततमियदिदं रत्नपुष्पाणि हारा—
स्ताडङ्क नूपुरस्त्रक्कनकवलमपस्य भृत्याङ्गनानाम् ॥ 11 ॥
यद्दोर्व्वल्लिविलासलब्ध [ब्ध] गतिभिः शल्यैर्व्वि दीर्ण्णैरसां
12. वीराणां रण [ती] र्थ वैभववशाद्दिव्यंवपुर्व्वि [ब्बि] भ्रताम्।
संसक्तामरकामिनीस्तनतीकाश्मीरपत्राङ्कितम्—
वक्षः प्रागिव मुन्धसिद्धमिथुनैः सातङ्कमालोकितम् ॥ 12 ॥
प्रत्यर्थिव्ययकेलिकर्म्मणि पुरः स्मेरं मुखं वि[ब]भ्रतोरे—
13. तस्यैततदसेश्च कौशलमभूद्दाने द्वयोरभूतम्।
शत्रोः कोपिदधेऽवसादमपरः सख्युः प्रसादं व्यधा—
देको हारमुपाजहार सुहृदामन्यः प्रहारं द्विषाम् ॥13॥
महाराज्ञी यस्य स्वपरनिखिलान्तः पुरवधू—
14. शिरोरत्नश्रेणीकिरणसरणिस्मेरचरणा।
निधिःकान्तेः साध्वीव्रतविततनित्यो ज्जवलयशा
यशोदेवी नाम त्रिभुवनमनोज्ञाकृतिरभूत ॥ 14 ॥
तनस्त्रिजगदींश्वरात्समाजनिष्ट देव्यास्नतोप्यरातिव
15. [व] लशातनोज्ज्वलकुमारकेलिक्रमः।
चुतर्ज्जलधिमेखलावलयसीमविश्वम्भरा
विशिष्टजयसान्वयो विजयसेनपृथ्वीपतिः ॥ [15]
गणयतु गणेशः को भूपतींस्ताननेन प्रतिदिनरणभाजा ये जिता वा हता वा। इह जगति विषे—
16. हे स्वस्य वंशत्व पूर्व्वः पुरुष इति सुश्रांशौ केवलं राज्यशब्दः ॥ 16 ॥
संख्यातीतकपीन्द्रसैन्यविभुना तस्यारिजेनुस्तुलां।

किं रामेण वदाम पाण्डवचमूनाथेन पार्थेन वा।
हेतोः खड़गलतावतंसितभुजामात्रस्य येनार्ज्जितं
17. सप्ताम्भोधितटीपिद्धवसुधाचक्रैकराज्यं फलम्।। [17]
एकैन गुणेन यैः परणितं तेषां विवेकादृते कश्चिद्धन्त्यपरश्च रक्षति सृजत्यन्यश्व कृत्स्नं जगत्।
देवोयं तु गुणः कृतो व[ब] हुतिथैर्द्धीमान् जघान द्विषो वृतस्थानपुषच्चक्कार च
18. रिपूच्छेदेन दिब्याः प्रजाः ।।18।।
दत्त्वा दिव्यमुवः प्रतिक्षितिभृतामुर्व्वीमुरीकुर्व्वता
वीरामृग्लिपिलाञ्छितो ऽसिरमुनां प्रागेव पत्रीकृतः।
नेत्थं चेत् कथमन्याथा वसुमती भोगे विवदोन्मुखी
तत्राकृष्टकृपाणधारिणि गता भ—
19. ङ्ग द्विषां सन्ततिः ।।19।।
त्वं नान्यवीरविजयीति गिरः कवीनां श्रुत्वाऽन्यथामननरूढनिगूढरोषः।
गीडेन्द्रमद्रवदपाकृत कामरूपभूपं कलिङ्कमपि यस्तरसां जिगाय।।20।।
शूरं मन्य इवासि नान्य किमिह स्वं राघव श्लाधसे
20. स्पर्ध वर्द्धन मुञ्ज वीर विरतोनाद्यापि दर्प्पस्तव
इत्यन्योन्यमहर्न्निनषप्रर्णायमिः कोलाहलैः चमाभुजां
यत्कारागृहयामिकैर्न्नियमितो निद्रापनोदक्लमः।। 21।।
पाश्चात्य चक्रजयकेलिषु यस्य यावद्गङ्गाग्रवाहमनुधावति
21. नौवितोन।
भर्ग्गस्य मौलिसरिदम्भसि भस्पपङ्कलग्नोज्झितेव तारीरन्दुकला चकास्ति।।22।।
मुक्ताः कर्प्पासवीजैर्म्मरकतशकलं शाकपत्रैरलावू[व]
पुष्पै रूप्याणि रत्नं परिणतिभिदुरैः कुक्षिभिद्दर्डिमानाम्।
कुष्माण्डीपल्लरीणां वि—
22. कसितकुसुमैः काञ्चमं नागरीभिः
शिक्ष्यन्ते यत्प्रसादाद्ब [ह्र] हुविभवजुषां योषितः श्रोत्रियाणाम्।।23।।
अश्रान्तविश्राणितसज्ञयूपस्तम्भावलीं द्रागवलम्व [म्ब] मानः।
यस्यानुभावाद्भुवि सञ्चचार कालक्रमादेकपदोपि धर्म्मः।।24।।
23. मेरोरा हतवैरिसङ्कलतटादाहूय यज्वामरान्
व्यत्यासं पुरवासिनामकृत यः स्वर्ग्गस्यमर्त्त्यस्य च।
उत्तुङ्गैः सुरसद्मभिश्च विततैस्तल्लैश्च शेषीकृतं
चक्रे येने परस्परस्य च समं द्यावापृथिव्योर्व्वपुः।। 25।।
दिक्शाखावमूलकण्डं गगनतलम-
24. हाम्भोधिमध्यान्तरीयं
भानोः प्राक्प्रत्यगद्रिस्थितिमिलदुदयास्तस्य मध्याह्नशैलम्।
आलम्ब [म्ब] स्तम्भमेकं त्रिभुवनभवनस्यैकशेषं गिरीणां

स प्रद्युम्नेश्वरस्य व्यधित वसुमती वासवः सौधमुच्चैः ।। 26 ।।
प्रासादेन तवामुनैव हीरतामध्वा

25. निरूद्धो मुधा
भानोद्यापि कृतोस्ति दक्षिणदिशःकीणान्त वासी मुनिः ।
अन्यामुच्छपथोयमृच्छतु दिशं विन्ध्योप्यसौ वर्द्धतां
यावच्छक्ति तथापि नास्य पदवी सौधस्य गहिष्यते ।। 27 ।।
स्रष्टा यदि स्रक्ष्यति भूमिचक्रे सुमेरूमृत्पिण्डविर्वत्तनाभिः ।।

26. तटा घटः स्यादुपमानमस्मिन् सुवर्ण्णकुम्भस्य तदर्पितस्य ।। 28 ।।
वि [ब] लेशबिलासिनीमुकुटकोटिरत्नाङ्कुर—
स्फुरत्किरणमञ्जरीच्छुरितवारिपूरं पुरः ।
चखान पुरवैरिणः स जलमग्न—

27. पौरांगना—
स्तनैणमदसौरभोच्चलितचञ्चरीकं सरः ।। 29 ।।
उच्चित्राणि दिगम्ब [म्ब] रस्यवसनान्य र्द्धाङ्नास्वामिनो
रत्नालंकृतिभिर्व्विशेषितवपुःशोभाः शतं भूभ्रुवः ।
पौराढ्याश्च पुरीः रमशानवसेतर्भिक्षाभुन—

28. जोस्याक्षयां
लक्ष्मीं स वयतनीद्दरिद्रभरणे सुज्ञो हि सेनान्ययः ।। 30 ।।
चित्रक्षौमेभचर्म्मा हृदयविनिहितस्थलहारोरगेन्द्रः
श्रीखण्डक्षोदभस्मा करमिलितमहानीलरत्नाक्षमालः
वेषस्तेनास्य तेने गरश्डमणितागोन—

29. सः कान्तमुक्ता—
नेपत्यत्रस्थिरच्छिासमुचितरचनः कल्पकापालिकस्य ।। 31 ।।
वा [बा] होः केलिभिरद्वितीयकनकच्छत्रं धरित्रीतलं
कुर्व्वाणेन न पर्यशेषि किमयि स्वर्नैव तेनेहितम् ।
किन्तस्मै दिशतु प्रशन्नवरदोप्पर्द्धेन्दु मौलिः

30. परं
स्वं सायुज्यमसावपश्चिमदशाशेषे पुनर्दूर्दास्यति ।।32।।
प्रस्तोतुमस्त्र्य परितश्चरितं क्षमः स्यात् प्राचेतसो यदि पराशनन्दनो वा। तता कीर्त्तिपूर —
सुरसिन्धुबिगाहेनेन वाचः पवित्रपितुमत्र तु नः प्रयत्नः ।।33।। यावद्वास्तीस्पति—

31. पुरधुनी भूर्भुवः स्वः पुनीते
यावच्चान्द्री कलपति कलोत्तंसतां भूतभर्तुः ।
यावच्चेतो गमयति सतां श्वेतिमानं त्रिवेदी
तावत्तासां रचयतु सखी तत्तदेवास्य कीर्तिः ।।34 ।।
निर्णिक्तसेन कुलभूपतिमौक्तिकानामग्रीन्यिलग्र—

32. थनपक्ष्मलसूत्रविल्लः

एषा कवेः पदपदार्थविचारशुद्धवु [बु] द्धरुमापतिधरस्य कृतिः प्रशस्तिः ।।35।।

ध[र्म्म]प्रणप्ता मदनदासनप्ता वृ[बृ] हस्पतेः सूनुरिमां प्रशस्तिं [।] चखाना वारेन्द्रकशिल्पि गोष्ठीचूड़ामणी राणकशूलपाणिः ।। (36)

ऐतिहासिक महत्त्व

उत्तरी बंगाल के राजशाही जिले से यह अभिलेख मिला है। इसमें सेनवंशीय शासक विजयसेन की प्रशस्ति है। इसकी भाषा संस्कृत तथा लिपि उत्तर भारत में प्रचलित देवनागरी है।

यह एक लम्बी प्रशस्ति है। इससे तत्कालीन सामाजिक अवस्था पर प्रकाश पड़ता है तथा सेनवंशीय शासकों के विषय में भी जानकारी मिलती है। इस अभिलेख का मूल उद्देश्य है शैव धर्मानुयायी राजा विजयसेन द्वारा निर्मित शिव मन्दिर के निर्माण का विवरण देना। इस देवता का नाम प्रशस्ति में प्रद्युमनेश्वर दिया गया है। इस वंश का इतिहास यहाँ सामन्तसेन से प्रारम्भ होता है। यहाँ दक्षिणी भारत के एक शासक वीरसेन का उल्लेख है। इसका जन्म चन्द्रवंश में हुआ था। ये दक्षिण के शासक बंगाल में आकर बस गये थे। इस वंश-परम्परा का पहला शासक था सामन्तसेन। इसके बाद इसका उत्तराधिकारी हेमन्तसेन हुआ। उसी का लड़का विजयसेन इस अभिलेख का नायक है।

विजयसेन एक सशक्त शासक था। इसने नान्य, बीर, गौड़, कामरूप तथा कलिंग आदि राज्यों के शासकों को परास्त कर दिया था। इस अभिलेख में तिथि का अभाव सर्वदा खटकता है। फिर भी दूसरे स्रोतों से यह ज्ञात होता है कि वह 11वीं शताब्दी में शासन करता था। इसके बाद इस वंश के दो और शासक—बल्लाल सेन तथा लक्ष्मणसेन सिंहासनासीन हुए। लक्ष्मणसेन इस वंश का अन्तिम शासक था। इसी के बाद इस वंश का लोप हो गया क्योंकि खिलजी वंश के दुष्ट शासक बख्तियार खिलजी ने बंगाल का राज्य अपने अधीन कर लिया। लक्ष्मणसेन ने अपने नाम पर एक संवत् चलाया था, ऐसा प्रचलित है। साधारणतया इसके संवत् की तिथि 1119 ई० मान्य है। इस संवत् के आधार पर बल्लालसेन तथा विजयसेन की तिथियों की गणना करने पर ज्ञात होता है कि विजयसेन 11वीं शताब्दी में शासन करता था।

यह अभिलेख विशेष रूप से धार्मिक विवरण के कारण अपनी महत्ता रखता है। इससे ज्ञात होता है कि एक नवीन धार्मिक लहर इस समय बंगाल में फैल चुकी थी। पाल शासक, जिनके अधीन सेन राजाओं के पूर्व बंगाल का शासन था, बौद्ध धर्मानुयायी थे। पर सेन शासकों के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि ये कट्टर शैव धर्मावलम्बी थे। इसके इस अभिलेख में शिव के मन्दिर के निर्माण का विवरण मिलता है तथा इसके प्रारम्भ में ही लिखा है 'ओम् नमः शिवायः'।

इस अभिलेख के प्रारम्भिक तीन पद देव प्रद्युमनेश्वर की प्रार्थना के हैं। चौथे तथा पाँचवें श्लोक में इस वंश के प्रारम्भिक शासक सामन्तसेन का उल्लेख है। इसके प्रमाण में निम्नांकित श्लोक उद्धृत किया जा सकता है—

तस्मिन् सेनान्वाये प्रतिसुभटशतोत्सादन ब्रह्मवादी।

संब्रह्मक्षत्रियाणामजनि कुलशिरोदाम सामन्तसेनः ।।5।।

डॉ० भण्डारकर ने उपर्युक्त श्लोक में प्रयुक्त 'ब्रह्मक्षत्रियाणं' शब्द से यह अभिप्राय लिया है कि यह शासक सामन्तसेन जन्मजात ब्राह्मण था पर कर्म से क्षत्रिय था। डॉ० डेब्रूएल तथा सेन महोदय

की यह धारणा है कि यह जन्मजात क्षत्रिय था जो कर्म से ब्राह्मण धर्म को स्वीकार कर लिया था। इसीसे 'ब्रह्मक्षत्रियाणं' शब्द इसके लिए प्रयुक्त है। इन तर्कों की व्याख्या के लिए यदि सेन वंशीय दूसरे आधारों को देखा जाय तो एक-दूसरे अभिलेख में इस वंश के सम्बन्ध में उल्लेख है 'दक्षिणात्य क्षौणीन्द्र'—। वैरकपुर दान पत्र में इनके लिए लिखा है—अवनितलभूवों राजपुत्र बभूवः। बल्लालसेन के मधायिन दान-पत्र में सेन राजाओं की उपाधि क्षत्रिय मिलती है। इसको करणाटक क्षत्रिय कहा गया है। इस प्रकार ऊपर के विवरणों से यह स्पष्ट ज्ञात है कि अधिकांश अभिलेखों में इन शासकों को क्षत्रिय कहे जाने से ये क्षत्रिय लगते हैं। केवल सामन्तसेन के लिए ही हम ब्राह्मण क्षत्रिय शब्द प्रयुक्त पाते हैं। इसका कारण यह है कि वह क्षत्रिय जाति मे उत्पन्न तो अवश्य ही हुआ था पर ब्रह्मवादिन था।

सेन शासक उस समय बंगाल में बसे थे जब बंगाल पर चालुक्यों तथा राष्ट्रकूटों का आक्रमण हो रहा था। यह घटना 11वीं शताब्दी की है। इसके बाद वे स्वतन्त्र शासक हो गये। यह कहना बड़ा कठिन है कि इन्हें क्यों सेन नाम से सम्बोधित किया गया ? डॉ० रमेश्चन्द्र मजुमदार के अनुसार बम्बई प्रदेश के धारवाड़ नामक स्थान के एक जैन विद्वान् के नाम के अन्त में सेन शब्द जुड़ा था। सम्भव है बंगाल के सेन शासकों का कुछ सम्बन्ध उनसे रहा हो। यह भी विवादग्रस्त धारणा प्रचलित है कि वह सम्भवतः जैन धर्म से हिन्दू धर्म में अपने को परिवर्तित कर लिया हो। पर साहित्यिक तथा पुरातात्विक आधारों पर यह पूर्ण स्पष्ट है कि इस वंश के प्रथम शासक से अन्तिम शासक की उपाधि सेन रही है। ये शासक भी विद्याव्यसनी थे। इसी वंश के एक शासक बल्लालसेन ने बल्लालचरित नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इस वंश के दूसरे शासक लक्ष्मणसेन ने दानसागर नामक पुस्तक लिखा था। बल्लालचरित से भी इनकी शिक्षा सम्बन्धी रुचि का ज्ञान मिलता है।

सामन्तसेन के अभिलेखों के आधार पर ज्ञात होता है कि वह एक लम्बे समय तक इस वंश की ओर से बंगाल पर शासन करता रहा। यह कुशल और चतुर योद्धा भी था। दक्षिणी भारत में इसकी ख्याति रामेश्वरम् तक फैली थी। पर यह कथन विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता क्योंकि इस प्रकार की कोई उद्भट कीर्ति इस राजा के सम्बन्ध में ज्ञात नहीं है। यह अपने जीवन का अन्तिम समय संन्यास आश्रम में व्यतीत करते हुए गंगा के किनारे रहता था। वहीं इसकी मृत्यु हो गई। इसके सम्बन्ध मे दूसरे प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि इसने राढ़ (पश्चिमी बंगाल) को जीत लिया था।

इस प्रकार इस अभिलेख से सेनवंशीय शासकों के विषय में व्यवस्थित जानकारी प्राप्त होती है।

16. ध्रुव का भोर संग्रहालय लेख
(Bhor Museum Plate of Dhruva)

स्थान : अज्ञात

भाषा : संस्कृत

लिपि : नागरी

काल : श० सं० 702 (=780 ई०)

सन्दर्भ : ई० इण्डि० 22, पृ० 1760

मूल-पाठ

1. ओम्
स वोव्याद्वेधसा धायं यं (यन्) नाभि कमलंकृतं (तम्) (।)
हरश्च यस्य का (कां) तेंदुकलया कमलं कृतं तम् ॥1॥
आसिद्विं (द्विं) प
2. ति (त्ति) मिरमुद्यतमण्डलाग्रो ध्वव (ध्व) स्तिं नर्यन (यन्न) भिमुखो रणश्र्व्वरीषु (।)
भूपशु (पश्शु) चिर्विधुरिवास्त (प्त) दिगंतकीर्ति—
3. र्ग्गोविंदराज इति राजसु राजसिंध (हः) ॥2॥
दृष्ट्वा चमून (म) भिमुखी सुभट्टाट (टाट्ट) हासामुना (न्न) मितं सपदियेनरणे—
4. षु नित्यं (।) दष्टाधरेण दधता भ्रुकुटि ललाटे खड्ग कुलश्ञ्च हृदयञ्च निजञ्च श (स) त्वं (त्वम्) ॥3॥
खड्गं कराग्रां (ग्रा) न्मुखत—
5. श्चशोभा मानो मनस्तस (स्स) मवेष यस्य (।) महाहवे नाम निशम्यसद्यस्त्रयं रिपुणां विगलत्यकाण्डे ॥4॥ त—
6. स्यात्मजो जगति विश्रुतदीर्घकीर्तिरार्त्तिहारिहरिविक्रम (धाम्) धारी (।) भूपस्त्रिविष्टपकृता (नृपा) नुकृति (तिः) कृतज्ञः
7. श्रीकर्क्कराज इति गोत्रमणिर्वि (र्व) भूव ॥5॥
तस्यो (स्य) प्राभिंन (प्रभिन्न) ककट (करट) च्य (च्यु) तदानि (न) दंतिदंतप्रहाररुधि—
8. रोलि (ल्ल) खितंश (तांस) पीठ (:।) क्ष्मापः क्षितो क्षपित शत्रुरभूत (त्त) नूजः सद्राष्ट्रकूटकनकाट्ट (द्रि) रिवेंद्रघराज (:) ॥6॥
9. तस्योपार्जितमहसस्तनयश्चतुरुदधि वलय मालिन्या (:।) भोक्ता भुवः शतक्रतु सद्दृशः श्रीद (दं)—
10. तिदुर्ग्गराजोभूत् ॥7॥
काञ्चीशकेरलनराधिपचोर (ल) पाण्ड्य, श्रीहर्षवज्रटविभेदविधानदक्ष (क्षम्) (।)
कर्णाटकंप (व) लमचिंत्य
11. जेयमन्यै (मन्यै) भृ (र्भृ) त्यै (त्यैः) कियद्भिरपि यः सहसा जिगायः (य) ॥8॥ आ (अ) भ्रविभंगमगृहीत निशातशस्त्रं (स्त्र) मश्रांतमप्रतिह—
12. ताज्ञमपेतयत्नं (त्वम्) (।) यो वल (ल्ल) भं श (स) पदि दण्ड (बलेन) जित्वा राजाधिराज प (र) मेश्वरतइामवाप (॥9॥) ता सेतोर्व्विपुलो—
13. पलावलिलस (ल्लो) लोर्म्मिमालाजलादाप्रालेयकलंकिता—
मलशिलाजालुतुषाराचलात् (।) आ पूर्वाप—
14. रवारिराशिपुलिना (न) प्रांतप्रसिधा (द्धा) वधेर्येनेयं जगति (ती) श्व (स्व) विक्रमव (ब) लेनैकातपत्रीकृतं (ता) (॥10॥) तस्मिंदि (स्मिन्दि)—
15. वं प्रयाते वल्लभराजे क्षतप्रजावा (बा) धः (।)
श्रीकर्क्कराजसुनुर्म्महीपतिः कृष्णराजोभूत् (॥11॥)
यस्य—

16. स्वभूज पराक्रमनिशे (श्शे) षोच्छा (त्सा) दितारि दिक्चक्रं (।)
कृष्णस्येवाकृष्णं चरितं शृ (श्री) कृष्णराजस्य ।।12।।
शुभतुंगतुंगतुरगप्र—

17. वृद्धरेणु (णू) र्द्ध (र्ध्व) रुध्य (द्ध) रविकिरधां (णम्)
ग्रीष्मेपि नभो निखिलं प्रावृट्कालायते स्पष्टं (ष्टम्) ।।13।। दीनानाथ प्रणयिषु यथेष्टचेष्टं स—

18. मोहितमजश्र (स्रम्) तत्क्षणमकालवर्ष (र्षे) वर्षति सर्व्वर्तिनिर्व्वपणं (णम्) ।।14।।
राहप्पमात्मभुजजातव (ब) लावलेपभाजौ विजि—

19. त्य निशिताश्रि (सि) लताप्रही (हा) रैः (।) पालिद्धव जावलिशुभामचिरेण यो हि राजाधिराजपरमेश्वरतां तता न ।।15।। क्रौधा दुत्खातख—

20. ड्गप्रशृ (सृ) तरूचिचयैः (यै) र्भासमानं समंतादाजादु (बु) द्वृत (त्त) वैरिप्रकटगजघटाटोपसंक्षो—
(भ) दक्षं (क्षम्) (।) शौर्य त्यक्ता(त्त्वा) रिव—

21. र्ग्गो भय चकित (व) पु(ः) क्वापि दृष्ट्वैव सद्य (द्यो दर्प्पाध्मातारिचक्रक्षयकरमगमद्यस्य दोदुर्दण्डरू (रू) पं (पम्) ।।16।। पातायश्चतु—

22. रं (बु) राशिरशनालंकारभाजो भुवः स्त्रैय (वस्त्रय्या) श्चापिकृता (त) द्विजामरगुरूः (रू) प्राज्याज्यपूजादरो (रः) (।) दातामान-भृतग्रणीर्ग्गुणव-

23. ता योसौ शृ (श्रि) यो वल्लभो भोक्तुं स्वर्ग्गफलानि भूरितपसा स्थानं जागामामरं (रम्) ।।17।। येन श्वेतातपत्रप्रहतरवि—

24. करव्राततापात्सलीलं (ज) ग्मे नाशी (सी) रधूलिधवलितशिरसा वल्लभाख्यः सदाजा (।।) स श्री (गो) विंदराजो जितजग—

25. दहितस्त्रैणवैधव्यहेतुः (तु) स्तस्यासी (त्) सूनुरेकः क्षणरणदलितारातिमा (म) त्तेभकुम्भः ।।18।। तस्यानुजः (ः) श्रीध्रुव—

26. राजनामा महानुभावोप्रहतप्रतापः (ः) प्रसाधिताशेषनरेन्द्रचक्रम् (क्रः) क्रमेण वा (बा) लार्क्कवपू(पु) र्व्व (र्ब) भूव ।।19।। ञ्जा (जा) ते यत्र च राष्ट्रकूटति—

27. लके सदभूपचूणामणौ, गुर्व्वी तुष्टिरथाखिलस्य जगतः सुस्वामिनि प्रत्यहं (हम्) (।) त्स (स) त्यं श (स) त्यमिति प्रसा (शा) सति स—

28. ति क्ष्मामास (स) मुद्रांतिकामासीध (द्ध) र्म्मपरे गुणामृतनिधौ सत्यव्रताधिष्ठि (ष्ठि) ते ।।20।। श्रीकाञ्चीपतिगांगवे (र्वे) गिकयुता

29. ये माल (वे) शादयः प्राज्यानानयति स्म तां (तान्) क्षितिभृतो यः प्रातिराज्यानति (पि) (।) माणिक्याभरणानि हेमनिचयं

30. यस्य प्रपद्योपरि श्वं (स्वं) येन प्रति तं तथापि न कृतं चेतोन्यथा भ्रातरं (रम्) ।।21।। सामाद्यैरपि वल्लभो नहि यदा सं (धिं) व्य—

31. धातं त्तदा (त्तं तदा) चा (भ्रा) तुद्र्दत (त्त) रणे विजित्य तरसा पश्चात (त्त) तो भूपते (तीन्) (।) प्राच्योदीच्यपराच्यपराच्ययाम्यविल्ल (ल) सत्पलिध्वजै—

32. भुंषितं चिह्नैर्यः परमेश्वरत्वमखिलं लेभे महेन्तो (न्द्रो) विभुः ।।22।। शशधरकरनिकरनिभं यस्य यशः सुरन—

33. गाग्रसानुस्थै (:।) परिगीयतेनुरक्तैर्व्विद्याधरसुन्दरी (नि) वहैः ।।23।। हृष्टोन्वहं योर्थिजनाय सर्व्वं सर्व्वस्वमानंदित वं (बं)

34. धुवर्ग्ग (:।) प्रादात्परुष्टो हरित स्म वेग (गात्) प्राणा (न्) यमस्यावि (पि) नितांतविर्य (वीर्यः) ।।24।। तेनेदमनिलविद्युतच (ञ्च) ञ्चलमव—

35. लोक्य जीवितमंसारं (रम्) [।] क्षितिदान-परमपुण्यं प्रवर्त्तितो व्र (ब्र) चदायोयं (यम्) ।।25।। स च परमभट्टारकमहा—

36. राजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकश्रीमद (द्) अकालवर्षदेवपदानुध्यातपरमभट्टारक—

37. महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीधारावर्ष श्रीध्रुवराजनाम (ा) श्रीनिरूपमदेव (:) कुशली सर्वानेयं य—

38. था[सं] व[ब] ध्यमानकं (कान्) राष्ट्रपतिविषयपतिग्रामकूटायुक्तका (क) नियुक्तकाधिकारिकमहत्तरादी (न्) समा—

39. दिशत्यस्तु वः संविदितं यथा श्रीनीरानदीसंगमसमावासितेन मया मातापित्रोरात्मन-श्चैहिका—

40. मुस्मि (ष्मि) कपुण्ययशोभिवृध (द्ध) ये करहाडवास्तव्यतञ्चातुर्व्विद्यसामान्यगार्ग्गसगोत्र व (ब)—

41. हुवृच ह्वृच) सव्र (ब्र) ह्मचारिणो दुग्गा (र्ग) भटपुत्राय सांगोपांगवेदार्थ तत्वविदुषे वासुदेवभट्टा

42. य श्रीमालविषयांतर्ग्गतलधुवि (विं) मनामा ग्रामः तस्य चाद्याट्ट (ट) नानि [।] पूर्व्वतः श्रीमालपतन (त्तनं) द—

43. क्षिणत (तो लमणागिरि(:) पश्चिमतः वृ (बृ) हद्विंगकग्रामः उत्तरतः नीरा नाम नदी (।) एवमयं चतुराधां—

44. तनोपलक्षितो ग्राम (:) सोद्रगं (:) स (सो) परी (रि) करस (स्स) दण्डदशापराधस (स्स) भूतोपा (तवा) तप्रत्यायसो (स्सो) त्पद्यमा—

45. नविष्टिक (:) सधान्यहिरं (र) न्या (ण्या) देयो अ (योऽ) चाटभट्टप्रवेश्यः सर्व्वराजकीयानामहस्तप्रक्षेपणी—

46. य आचंद्राकर्कार्ण्णवक्षितिसरित्पर्व्वतसमकालीन (:) पू (पु) त्रपौत्रान्वयक्रमोपभोग्य (ग्यः) पूर्व्वंप्रत्तदे—

47. वब्रा (ब) ह्मदायरहितोभ्यंतरसिध्या (द्धया) भूमिच्छिद्रन्यायेन शकनृपकालातीतसंवत्सरस (श)—

48. तेषु सप्तसु वर्षद्वयाधिकेषु सिद्धाथ (र्थ) नाम्नि संवत्सरे माघसितरथसप्तम्या म

49. हापर्व्वणि व (ब) लिचरूवैश्देवाग्निहोत्रातिथिपञ्चमहायज्ञकृयोत्सर्पणार्थ (र्थ) स्नात्वाद्योदकातिसर्गेण

50. प्रतिपादितो (तः) (।) यतोस्यो उचितया व्र (ब) ह्मदायस्थित्या भुंजतो भोजयतः कृषतः कर्षयतः प्रतिदिशतो बा न कै—
51. श्चिदल्पापि परिपंथना कार्या (।) तथागामिभद्रनृपतिभिरस्मइंश्यैरं (र) न्यैर्व्वा स्वा (सा) मान्यं भूमिदानफल—
52. मवेत्य विद्युलो (ल्लो) लान्यनित्यैश्वर्याणि तृणाग्रलग्नजलविं (ब) दुचञ्चलञ्च जीवित्तमाकलय (य्य) स्वदायनि—
53. र्व्विशेषोयमस्मदा (द्दा) योनुमंतव्यः प्रतिपालै (लयि)तव्यश्च (।) यश्चाज्ञानातिमिरपट-लावृतमतिराथि (च्छि) द्या—
54. दाच्छिद्यमानकं वानुमोदेत स पञ्चभिर्महापातकैशो(श्चो) पपातकैश्च संयुक्तः (:) स्या (त्) इत्युक्तञ्च भगव—
55. ता वेदव्यासेन (।) षष्टिं वर्षसहश्रा (स्रा) णि स्वर्ग्गे तिष्ठति भूमिदः(।) आच्छेता (त्ता) चानुमंता च तान्यै (न्ये) व नर—
56. रके वसेत् (।।26।।) विंध्याटवीश्व (ष्व) तोयासु शुष्ककोटरवासिन (:।) कृष्णाध्यो हि जायते भूमिदानं ह—
57. रतिये (।।27।।) अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्ण्णं भूर्व्वैस्णवी सूर्य सुताश्च गावः (।) लोकत्रयं तेन भवे—
58. धि (द्ध) तत्तं यः काञ्चनं गाञ्च महि (ही) ञ्च दद्यात् (।।28।।) व (ब) हुभिर्व्वसुधा भुक्ता राजभिः सगरादिभिः (:।) यस्य य—
59. स्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं (लम्) (।।29।।) यानीह दत्ता (त्ता) नि पुरा नरे (रें) द्रैर्द्दा—
नानि धर्मार्थयशस्कराणि (।) निर्म्मा—
60. ल्यवांतप्रति मानि तानि को नाम साधुः (:) पुनराददीत (।।30।।)—
स्वदत्तां (त्ता) परदत्तां वा यत्नाद्रक्षनराधिप (।) (महीं) मही—
61. मता (तां) श्रेष्ठ दानात्स्त्रे (च्छ्रे) योनुपां (पा) लनं (नम्) ।।31।।
इति कमलदलांवु (म्बु) बिं (बिं) दुलोलां शृ (श्र) यमनुचि (चिं) त्य मदुष्यजीवि—
62. तञ्च (।) अतिविमल (म) नोभिरात्मनीनैर्ण्ण (र्न) हि पुरूषै ✕ परकीर्त्तयो विलोप्याः (।।32।।) श्रीनाग—
63. प (राणकदूतकं) लिखितं श्रीगौडसुतेन श्रीसावं (मं) तेन ।।

ऐतिहासिक महत्त्व

राष्ट्रकूट वंशीय शासक ध्रुव का यह दान-पत्र पूना के समीप भोर नामक स्थान में प्राप्त हुआ है। यह तिथि युक्त पत्र है। इस पर शक संवत् 702 अंकित है। यहाँ से तीन पत्र एक ही लेख के क्रम में उत्कीर्ण किए गये हैं। इनमें प्रथम तथा तृतीय पत्र केवल एक ही ओर उत्कीर्ण है जबकि द्वितीय दोनों ओर उत्कीर्ण है। यह एक लम्बा अभिलेख है जो संस्कृत में खुदा है। पर यह विशेषता है कि इसकी भाषा में व्याकरण सम्बन्धी सिद्धान्त नहीं अपनाए गये हैं।

यह एक ऐसा अभिलेख है जिससे राष्ट्रकूट वंश से प्रारम्भिक राजाओं का इतिहास विशेष रूप से प्राप्त होता है। इस वंश का प्रथम शासक इस अभिलेख के अनुसार इन्द्र का पुत्र गोविन्द प्रथम था। इस शासक का पौत्र दन्तिदुर्ग था। पर यह विचित्र बात है कि दन्तिदुर्ग का इस अभिलेख में कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता जब कि इस वंश का यह एक महत्त्वपूर्ण शासक है। विभिन्न प्रमाणों द्वारा यहाँ इसको बड़ा ही गम्भीर और गौरवशाली स्थान दिया गया है। इसके पूर्व के राष्ट्रकूट शासक बड़े ही सामान्य थे। हैदराबाद में स्थित औरंगाबाद के समीप चालुक्य राज्य के अधीन सातवी शताब्दी में सतारा तथा इलिचपुर नामक स्थान विद्यमान थे। इस परिवार का पहला शासक इन्द्र था। इसने चालुक्य राजकुमारी से विवाह किया था। इसके बाद इसका उत्तराधिकारी दन्तिदुर्ग हुआ जो दक्षिण में चालुक्य तथा पल्लव राजाओं को पराजित किया तथा अरब आक्रमणकारियों के विरुद्ध उत्तरी-भारत में युद्ध किया था। इस राज्य को दन्तिदुर्ग ने दक्षिण तथा मध्य प्रदेश में बढ़ाया।

इसके बाद इस वंश का दूसरा शासक कृष्ण प्रथम था जिसने दन्तिदुर्ग के स्वप्न को पूर्ण किया। इसने दन्तिदुर्ग द्वारा किए गये साम्राज्य विस्तार के अधूरे कार्य को पूरा किया तथा दक्षिण से चालुक्यों को पूर्णतया भगा दिया। इसी से कुछ अभिलेख दन्तिदुर्ग को साम्राज्य संस्थापक तथा निर्माता नहीं मानते। यह गौरव कृष्ण प्रथम को देते हैं। प्रारम्भिक काल में चालुक्य राष्ट्रकूटों के स्वामी थे। परन्तु कृष्ण प्रथम का संगठित बल ही इस बात के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है कि इसने चालुक्यों को पराजित कर राष्ट्रकूटों की अलग सत्ता स्थापित कर दी। इसके बाद इसने मैसूर के शासकों को भी पराजित किया। यह एक महान् शासक तथा निर्माता था। इसने एलौरा की प्रमुख गुफाओं का निर्माण कराया था।

इसके बाद इस परिवार का विलासी शासक गोविन्द द्वितीय सिंहासनासीन हुआ। पर इस विलासी शासक का अधिकार सिंहासन पर बहुत दिनों तक नहीं रह सका। इसके छोटे भाई ध्रुव ने इसको राज्य पद से हटाकर स्वयं गद्दी का अधिकारी बन बैठा। यही ध्रुव इस अभिलेख का नायक है। इस प्रकार ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि यद्यपि इस राज्य की स्थापना दन्तिदुर्ग ने की थी पर इसकी शक्ति का संवर्धन ध्रुव के पिता कृष्ण प्रथम ने किया। इस वंश के दूसरे अभिलेखों से भी यह ज्ञात होता है कि दन्तिदुर्ग तथा कृष्ण प्रथम साम्राज्य निर्माता थे। इन्होंने दक्षिणी भारत के विभिन्न शासकों को पराजित कर अपनी शक्ति संगठित किया था। इसलिए राष्ट्रकूट शासक ध्रुव को साम्राज्य निर्माण में कोई विशेष कार्य नहीं करना पड़ा। इन साम्राज्य निर्माताओं के समय उत्तरी भारत की भी राजनीतिक स्थिति बड़ी ही अव्यवस्थित थी। दक्षिण भारत तब छोटी-छोटी अनेक राजनीतिक इकाइयों में बँटा था। ये मुख्य राजनीतिक इकाइयाँ थीं मैसूर, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश आदि। ये सभी चालुक्यों की अधीनता में थीं। इसी परिस्थिति के परिणामस्वरूप सम्भवतः राष्ट्रकूट शासकों की योजना सफल हुई जैसा कि भोर म्युजियम प्लेट से ज्ञात होता है। बेगूमारा तथा दौलताबाद के दान पत्रों के आधार पर ज्ञात होता है कि दन्तिदुर्ग ने कलिंग, कोशल, मालव, लाट, सिन्धु तथा काँची के पल्लव शासकों को पराजित किया था। चालुक्य शासक कीर्तिवर्मन को भी इसने पराजित किया। गोविन्द तृतीय के राघनपुर दान-पत्र तथा कर्क के बड़ौदा दान-पत्र से ज्ञात होता है कि यह शासक राष्ट्रकूट राजाओं के लिए भय का कारण था। पर कुछ दूसरे शासक कीर्तिवर्मन के पराजय का श्रेय ध्रुव प्रथम को देते हैं। फिर भी इतना निश्चित है कि दन्तिदुर्ग काँची से मालवार तक तथा गुजरात से बरार तक का शासक था। इसके बाद इसके अधूरे कार्यों को इसके चाचा कृष्ण प्रथम ने पूरा किया।

कृष्ण प्रथम ने राजपूतना के शासक रहप्पा को पराजित किया। यह शासक कौन था ? कहना बड़ा कठिन है। रहप्पा मालावार के शासकों में से एक था। इसका विवरण इस राष्ट्रकूट अभिलेख से मिलता है। विद्वानों ने इस विवरण की व्याख्या विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार से की है। इस अभिलेख के 11वें श्लोक में एक राजा के पराजय का वर्णन है जो प्रजा को कष्ट देने वाला था—क्षतप्रजाबाधः—

तस्मिनदिवम् प्रयाते बल्लभ राजे क्षतप्रजाबाधः।
श्री कर्क राजसुनुः महीपतिः कृष्णराजो भूतः ॥11॥

यह श्लोक विभिन्न अभिलेखों में उल्लिखित है। पर किन्हीं 'क्षतप्रजाबाधः' शब्द को कुछ अन्तर के साथ लिखा गया है। ध्रुव द्वितीय के बेगूमारा प्लेट में इसके लिए 'कृतप्रजाबाधः' अंकित है। कृष्ण प्रथम के तेलगाँव पत्र में 'क्षलजातः', गोविन्द तृतीय के पैठान पत्र में 'कृतप्रजापालः' तथा दौलताबाद पत्र में 'क्षितप्रजापालः' शब्द का प्रयोग किया गया है। इन विभिन्न शब्दों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कृष्ण प्रथम ने अपने समीपस्थ को बहिष्कृत किया था। यह राजा कौन था ? कुछ लोगों के अनुसार इसे दन्तिदुर्ग स्वीकार किया गया है। डॉ॰ भण्डारकर आदि ने इस बहिष्कृत शासक को कर्कराज कर्क द्वितीय माना है जिसने दन्तिदुर्ग के बाद सिंहासन प्राप्ति का प्रयास किया था। यदि वह दन्तिदुर्ग की हत्या किया होता तो इसका वर्णन कभी भी नहीं दिया होता क्योंकि दन्तिदुर्ग उसका भतीजा था। दूसरा आक्रमण इसने गंगवाड़ी राज्य के श्रीपुरुष नामक स्थान पर तथा पश्चिमी चालुक्यों पर किया। राष्ट्रकूट वंश के तेलगाँव पत्र से इस विजय का स्पष्ट विवरण प्राप्त होता है तथा यह भी ज्ञात होता है कि इस राजा ने इस भू-भाग को जीत कर अपने अधीन कर लिया था। इसके बाद इसने चालुक्यों पर आक्रमण किया। इस अभियान में इसके पुत्र गोविन्द का नाम दिया गया है। इस समय पूर्वी चालुक्य परिवार का शासक विष्णुवर्धन था। इसका राज्य जीत लिया गया था। राष्ट्रकूट अभिलेख भण्ड पत्र से यह ज्ञात होता है। सोणफल्ल कोंकण प्रदेश का स्वामी बनाया गया था। इसने कोंकण, करनाट तथा हैदराबाद के विभिन्न प्रदेशों को जीत लिया था। दूसरा युद्ध काँची के पल्लवों के साथ हुआ था। इस प्रकार कृष्ण सम्पूर्ण दक्षिणापथ का स्वामी बन गया था।

इसकेबाद इसका पुत्र सिंहासनासीन हुआ। इसकी उपाधि प्रभूतिवर्ण थी। पिंपरी पत्र से ज्ञात होता है कि उसने अपने भाइयों को विभिन्न भागों का अधिकारी नियुक्त किया था। भोर म्युजियम प्लेट का नायक ध्रुव नासिक क्षेत्र का स्वामी बना दिया गया। दौलताबाद पत्र से यह ज्ञात होता है कि गोविन्द द्वितीय ने गोवर्धन क्षेत्र को पारिजात से मुक्त करा दिया था। किसी भी दूसरे अभिलेख से अभी तक यह ज्ञात नहीं कि पारिजात किसी शासक की उपाधि थी अथवा इस नाम का कोई शासक था। 21वें तथा 22वें श्लोक में इस राजा की शत्रुता का वर्णन मिलता है। बताया गया है कि गोविन्द विलासी था इसलिए इसका शासन ढीला था। यह अप्रतिष्ठित शासक रहा है। ध्रुव अपने भाई से सम्बन्धित इस विवरण को सुनकर बहुत अधिक दुःखित हुआ तथा उस परिस्थिति को सम्भालने का प्रयास किया। पिपरी दान पत्र से यह भी ज्ञात होता है कि ध्रुव ने एक स्वतन्त्र शासक के रूप में 775 ई॰ में एक भूमि दान दिया था तथा शासन करने वाले अपने भाई गोविन्द द्वितीय की बिल्कुल ही चिन्ता नहीं किया। सम्भवतः विरोध के कारण ही गोविन्द अपने राज्य से ध्रुव को बहिष्कृत करना चाहता था। ध्रुव एक बुद्धिवादी तथा आदर्श शासक था। उसने अपने भाई को बाध्य किया कि वह गद्दी को छोड़कर अलग हो जाय। इस कारण दोनों भाइयों के बीच युद्ध हुआ। इस अनिश्चित परिस्थिति का ज्ञान हमें इस लेख की निम्न पंक्तियों से होता है—

श्री काञ्चीपती गंगवेगीकयुकता ये मालवेशादयः
प्राज्यानानयतिस्म तानक्षितीभृतो यः प्रातिराज्यानपि।
माणिक्या भरणामिहेमनिचयम यस्य प्रपद्योपरि
स्वं येन प्रतितम तथापि न कृतमा चेतोन्यथा भारतम्।।21।।
समाप्यौरपि बल्लभोनहिं यदा, संधी व्यघातं तदा।
भातुः स्तरणे विजत्य सरसां, पश्चात् ततो भूपतीन।।22।।

इन श्लोकों से यह भी स्पष्ट है कि ध्रुव का भाई उसे बहिष्कृत करना चाहता था पर ध्रुव ने उस पर सफलता प्राप्त कर लिया। इसके बाद वह पश्चिम की ओर गया और गुर्जर—प्रतिहार को पराजित किया जो राष्ट्रकूट तथा पाल राजाओं के शत्रु थे। अमोघवर्ष के संजन प्लेट में उल्लिखित है—'राज्ञो गौड़स्य नश्यतः'। इससे ज्ञात होता है कि ध्रुव ने गौड़ राजा को पराजित किया था। इनमें से कौन पहले का है यह अभी भी विवादग्रस्त है। पर यह कहा जा सकता है कि ध्रुव के साथ पाल राजा धर्मपाल ने मैत्री स्थापित कर प्रतिहार वत्सराज को पराजित किया था। इसके बाद राष्ट्रकूट राजा ने पाल राजा की सेना को भी गंगा और यमुना के द्वाब में पराजित किया। यह अभिलेख त्रिवर्गीय युद्ध को स्पष्ट नहीं करता। पर संजन पत्र से इस सम्बन्ध में ज्ञात होता है कि कन्नौज पर पहले वत्सराज का अधिकार था। पीछे ध्रुव ने धर्मराज के साथ उसे पराजित किया। पर यह विजय श्रीविहीन रहा। परन्तु ध्रुव के दिग्विजय का कोई परिणाम न निकला क्योंकि कभी भी स्थायी रूप से राष्ट्रकूट राजाओं का राज्य गंगा-यमुना घाटी में नहीं फैला। इससे ध्रुव का गौरव थोड़ा बढ़ गया था। पर ध्रुव के जीवन का अन्तिम समय बड़ा ही शान्तिमय था। उसके पुत्रों में गोविन्द तृतीय युवराज चुना गया था। इसका उल्लेख सूरत पत्र में किया गया।

गोविन्द तथा ध्रुव के बीच युद्ध कब हुआ ?

दौलताबाद दान-पत्र से ज्ञात होता है कि गोविन्द और उनके मित्रों का पराजय 780 ई० में हुआ था। लगभग 779 ई० के धुलिया पत्र तथा पिपरी दान-पत्र में भी इसका उल्लेख है। 775 ई० में ध्रुव ने स्वतन्त्र शासक के रूप में दान दिया था पर इसके साथ ही वह सम्राट गोविन्द द्वितीय की स्थिति को स्वीकार करता है।

हरिवंश पुराण से ज्ञात होता है कि श्री बल्लभ 783 ई० में शासन करता था। इससे ज्ञात होता है कि गद्दी का अधिकार ध्रुव ने 783 ई० में प्राप्त किया था क्योंकि 775 ई० में गोविन्द द्वितीय की अधीनता ध्रुव ने स्वीकार की थी। सम्भवतः 775 और 783 के बीच ही कभी युद्ध हुआ होगा। पर दौलताबाद दान-पत्र से यह ज्ञात होता है कि ध्रुव 780 में एक स्वतन्त्र शासक बना। इस प्रकार ध्रुव को 783 में राजा मान कर कह सकते हैं कि यह युद्ध इस तिथि के पूर्व ही हुआ होगा।

17. कुमारदेवी का सारनाथ अभिलेख

(Sarnath Inscription of Kumardevi)

स्थान : सारनाथ, जिला वाराणसी, उत्तर प्रदेश

भाषा : संस्कृत

लिपि : नागरी

तिथि : 12वीं शती का मध्य

विषय : गहड़वाल वंशीय राजाओं की कृतियों की वर्णन

मूल-पाट

1. ओं नमो भगवत्यै आर्यवसु[1]धारावै ॥
समवतु वसुधारा धर्मपीयूषधारा—
प्रशमितवहुविश्वोद्दामदुःखोरुधारा।
धनकनकसमृद्धिं भूर्भुवः श्वः किरन्ती
तद—
2. खिलजनदैन्यान्याजयन्ती जगन्ति ॥ [1]
नैत्रैरुत्कणिठतानां क्षरणमुपनयंश्चारु चन्द्रोपलाना—
म्मानग्रन्थिम्बिभिन्दन् सह कुमुदवनीमुद्रया मानिनीनाम्।
दग्धन्दग्धेश्वरेणा (मृ)—
3. तनिकरकरैर्जीवयन् कामदेवं
कान्तोयं कौमुदीनां स जयति जगदालोकदीपप्रदीपः ॥ [2]
वंशे तस्य नमस्यपौरुषजुषि प्रस्फारकीर्त्तित्विषि
द्राक शौचेन सु(राप)—
4. गामदमुषि प्रत्यर्थिलक्ष्मीरूषि।
वीरो वल्लभराजनामविदितो मान्यः स भूमीभुजां
जेतासीत्पृथुपीठिकापतिरतिप्रौढ़प्रतापोदयः [3]
छिक्कोरवंशकुमुदोदयपूर्ण—
5. श्रीदेवरक्षित इति प्रथितः पृथिव्याम्।
पीठीपतिर्गजपतेरपि राज्यलक्ष्मीं
लक्षम्या जिगाय जगदेकमनोहरश्रीः ॥ [4]
तस्मादास पयोनिधेरिव विधु—
6. र्ल्लावण्यलक्ष्मीविधु—
र्न्नेत्रानन्दसमुद्रवर्द्धनविधुः कीर्त्तिद्युतिश्रीविधुः।
सौजन्यैकनिधिः स्फुरद्गुणनिधिर्गाम्भीर्य्य-वारान्निधि
र्हर्म्माद्वैतनिधिः स च(ण्डि) म—
7. निधिः शस्त्रैकविद्यानिधिः ॥ [5]
दीनानामभिवाञ्छितैक फलदः प्रत्यक्षकल्पद्रुमो
दृप्यद्वैरिगिरीन्द्रभेदनविधौ दुर्वारवज्रश्च यः।
कान्तान(ा)म्मद—
8. नज्वरोपशमने सिद्धौषधीपल्लवो
वाहुर्यस्य वभूव भूतलभुजामन्तश्चमत्कारिणः ॥ [6]
गौडेऽद्वैतभटः सकाण्डपटिकः क्षत्रैकचूडामणिः
प्रक्षातो

---

1. एक बौद्ध देवी

9. महणाङ्कपः क्षितिभुजाम्मान्योभवन्मातुलः।
त (तं) जित्वा युधि देवरक्षितमधात् श्रीरामपालस्य यो।
लक्ष्मीं निर्जितवैरिरोधनतया देदीप्यमानोदयाम्।। [7]
कन्या महण—

10. देवस्य तस्य कन्येव भूभृतः।
सा पीठी पतिना तेन तेनेवोढा स्वयम्भू (भु) वा।। [8]
ख्याता शङ्करदेबीत तारेव करुणाशया।
व्यजेष्ट कल्पवृक्षाणां लता दानोद्ययमेन या।। [9]
अ—

11. जनि कुमारदेवी हन्त देवीव ताभ्यां
शरदमलसुधाङ्शोश्चारुलेखेव रम्या।
दुरितजलधिमध्याल्लोकमुद्धर्त्तकामा
स्वयमिह करुणार्त्ता तारिणीवावतीर्णा।। [10]

12. याम्बेधाः प्रविधाय शिल्परचनचातुर्य्यदर्प्प व्यधा—
द्यद्वक्त्रेण जितस्तुषारकिरणो ह्रीणः स स्वस्थोभवत।
रात्रावुदुर्गममातनोति मलिनो जातः कलङ्कीतत—
स्त—

13. स्याः सुद (सुन्द) रिमा स विष्मयकरो वाच्यः मिमष्मादृशैः।। [11]
चित्रञ्चञ्चलदृक्कुरङ्गमवधूवन्धस्फुरद्वागुराम्
विभ्राणा तनुसम्पदम्प्रविलसत्कान्त्याभिकान्तश्रिया।

14. खेलत्क्षीरसमुद्रसान्द्रलहरीलावण्यलक्ष्मीमुषं
मोष शैलसुतामदस्य दधती सौभाग्यगर्वेण सा।। [12]
धर्माद्वैतमतिर्गुणाहितरतिः प्रारब्धपुण्याचिति—

15. र्दानोदारधृतिर्मतङ्गजगतिर्नेत्रा (त्रा) भिरामाकृतिः।
शास्तृन्यस्तनति जनोदितनुतिः कारुण्यकेलिस्थिति—
नित्यश्चीवसतिः कृताधविहतिः स्फायद्गुणाहंकृतिः।। [13]

16. जगति गहडवाले क्षत्रव (वं) शे प्रसिद्धे—
जनि नरपति चन्द्रश्चन्द्र (मा) नामा नरेन्द्र।
यदसहननृपाणाङ्कामिनीवाष्पवाहेः (हैः)
शितितरमिदमासीद्यामुन (नं) तू (नू) नमम्भः।। [14]
नृ—

17. पतिमदनचन्द्रश्चण्डभूपालचूडा—
मणिरजनिसतस्माद्विभ्रदेकातपत्र (म)।
धरणितलमनल्य प्रौढतेडो (जो) नलश्रीः
श्रियमपि च मघोनः स्वश्रियाधो दधानः।। [15]
वाराण—

18. सी भुवन रक्षणदक्ष एको
    दुष्टातुरुष्कसुभसटादवितुं हरेण।
    उक्तो हरिस्स पुनरत्र वभूव तस्माद्
    गोविन्द्रचन्द्र इति प्रथितामिधानः॥ [16]
    वत्स्या कामदुहां कणा—
19. नपि पयःपूरस्य पातु न ते चित्रं
    प्रागलभन्त याचकमनः संतोषनिव्यत्ययात्।
    त्यागैर्यस्य महीभूजः प्रमुदिते तद्याचकानाञ्चये
    स्वच्छन्दाहितनित्यनिर्भरपयः—
20. पानीत्सवैरासते॥ (17)
    यद्विद्वेषिमहीभुजां पुरवरे प्रभ्रष्टहारावली—
    व्याधास्तन्मृगपाशवन्धमनसा गृह्णान्तिनैवभ्रमात्।
    व्याधाः सस्तसुवर्णकुण्डलमहिभ्रान्त्या
    तद्त्यायते
21. र्दण्डैद्रर्गिपसारयन्ति च भयप्रोत्कम्पिहस्तस्त्रजः॥ [18]
    यस्योत्सन्नविरोधिभूपतिपुरप्रासादपृष्ठोपुरिप्रत्यग्रस्फुरदुग्रशष्पकवलव्या—
    लोलवाजि—
22. व्रजः।
    आदित्यसत्वभवत्स मन्थररथश्चन्द्रोपि मन्दोभवत्
    घासग्रासविरूद लोभहरिण रक्षन् पतन्तन्ततः॥ [19]
    अहह कुमारदेवी तेन र(ा)ज्ञा प्रसिद्धा
    त्रि (त्रि) जगति
23. परिणीता श्रीरिवेहाच्युतेन।
    प्रविलिसदवरोधे तस्य राज्ञोङ्गनानां
    नियतममृतरश्मेर्लेखिका तारकासु॥ [20]
    वीहारो नवखण्डमण्डलमहीहारः कृतोयत्तया
24. तरिण्या वसुधारया ननु वपुर्विभ्राणयालंकृतः।
    यं दृष्ट्वा प्रविचित्रशिल्परचनाचातुर्य्य सीमाश्रयं
    गीर्वाणैः सुदृश(ञ्च) विस्मयमगाद्द्राग्विश्वकर्मापि सः। (॥) [21]
    श्रीधर्मचक्रजि—
25. नशासनसन्निवद्धं
    सा जम्बुकी सकलपत्तलिवाग्रभूता।
    तत्ताम्रशासनवर (रं) प्रविधाय तस्यै
    दत्वा तया शशि रवि भुवि यावदास्ताम्॥ [12]
    धर्माशोकनराधिपस्य समये श्रीध—

26. म (र्म) चक्रो जिनो
यादृक् तन्नयरक्षितः पुनरयञ्चक्रे ततोष्यद्भुतम्।
वीहारः स्थविरस्य तस्य च तया यत्रादमाङ्कारित—
स्तस्मिन्नेव समर्प्पितश्च वसतादाचन्द्रचण्डद्युति।। [23]
त्कीर्तिम्प—

27. रिपालयिष्यति जनो यः कश्चिदुर्वीतले
सा तस्थाङ्घ्रियुग प्रणामपरमा यूयं जिनाः साक्षिणः।
तस्या कश्चिदनिश्चितो यदि यर्शाव्यालोपकारी खलः
तं पापीयसमा—

28. शु शासति तुनस्ते लोपालाः क्रुधा।। [24]
एकस्तीर्थिकवादिवारणधटासङ्घट्टकण्ठीरवः
साहित्यो (ज्) ज्वलरत्नरोहणगिरिर्योह्यष्टभाषाकविः।
ख्यातो वंगमहीभजः

29. प्रयणभूः श्रीकुन्दनामाकृती
तस्याः सुन्दरवर्णगुम्फरचनारम्यां प्रशस्तिं व्यधात्।। [25]
एषा प्रशस्तिरुत्कीर्णा वामनेन तु शिल्पिना।
राज्याबर्त्तस्य सापलूयन्दधाने प्रस्तरोत्तमे।। [26]

●